श्री हरिहरोपासना बनाम धर्माद्वैत साधना

लेखक

डॉ० सीएच० रामुलु

प्रवक्ता हिन्दी विभाग

हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय

हैदराबाद



अन्नपूर्णा प्रकाशन

पुस्तक प्रकाशक, विक्रेता एवं सप्लायर

१२७/११०० डब्लू वन, साकेत नगर

कानपुर-२०८०१४

SRI HARI HAROPASANA BANAM

DHARMADWAITA SADHANA

By

Dr. CH. RAMULU

Price : One hundred Twenty one Rupees only

मूल्य : एक सौ इक्कीस रुपये मात्र

पुस्तक : श्री हरिहरोपासना बनाम धर्माद्वैत साधना

लेखक : डा. सीएच. रामुलु

प्रकाशक : अन्नपूर्णा प्रकाशन 127/1100 डब्ल्यू वन साकेतनगर, कानपुर-208014

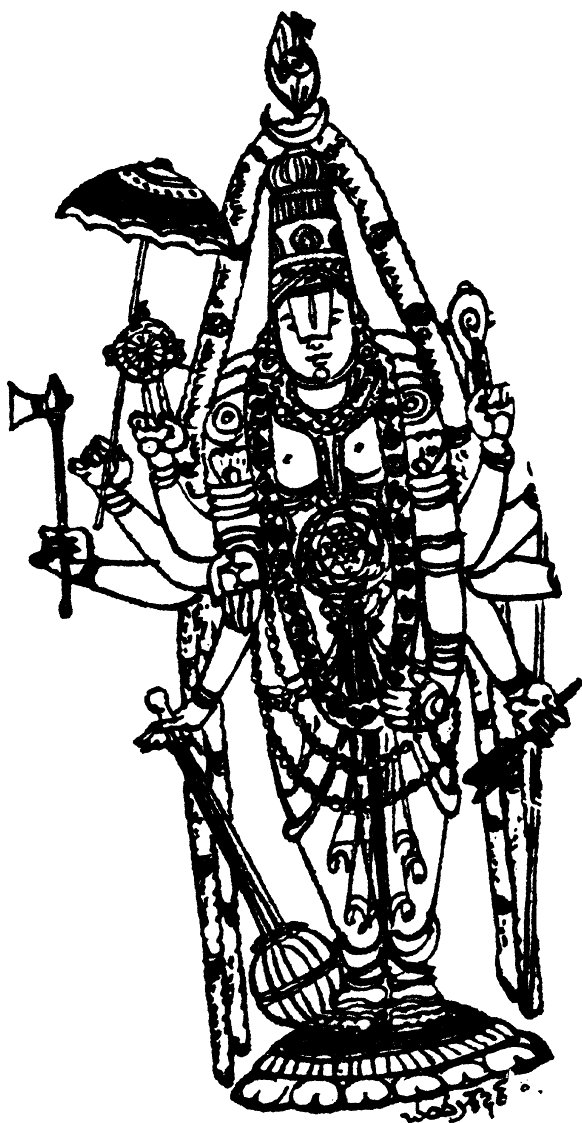
मुद्रक : अन्नपूर्णा प्रेस, साकेतनगर, कानपुर

संस्करण : प्रथम, 1000 प्रतियाँ

प्रकाशन वर्ष : 1993

पृष्ठ संख्या : 164+16=180

PUBLISHED By : Mathura Prasad Tripathi



श्री हरिहरनाथ

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति
तथा
हैदराबाद विश्वविद्यालय के आर्थिक अनुदान
सहयोग से प्रकाशित

This Book is Published with the financial assistance of Tirumala Tirupati Devasthanams under their Scheme-Aid to Publish religious books.

This book is published with the financial assistance of Hyderabad Central University, Hyderabad.

गोलोकवासी माता-पिता
श्रीमती चेक्कला नरसम्मा
श्री चेक्कला राजय्या
को सादर

श्री हरिहरोपासना : एक विहंगम दृष्टि

"शिवश्च परमो विष्णु: विष्णुश्च परम: शिव:"

सृष्टि, स्थिति और लय, जगत की नैसर्गिक प्रकृति है। ब्रह्मा सृष्टि करते हैं। नारायण पालन करके सृष्टि को स्थिर रखते हैं और निरन्तर क्षयधर्मा जगत रुद्र के द्वारा हर क्षण समाप्त किया जाता है। यह क्रम अनादि-अनन्त है, अत: हरि और हर के कार्य भी अनादि-अनन्त हैं तथा उनकी एकता भी अनादि-अनन्त है। ये त्रिदेव अनादि-अनन्त सत्य हैं। हिन्दू-चिन्तन में सृष्टि को उतना महत्त्व नहीं प्राप्त हुआ जितना पालन कर्म और संहार कर्म को प्राप्त हुआ। पालन कर्म न चले तो सृष्टि ही व्याधिग्रस्त हो जाय। संहार कार्य न होता रहे तो इतने प्राणी हो जायँ कि पालन कर्म असम्भव बन जाये। यही कारण है कि भारत ने ब्रह्मा को उतना महत्त्व नहीं दिया, जितना हरि और हर को दिया। ये तीनों एक ही सत्य की त्रिमूर्तियाँ हैं। चिंतन में भेद न उत्पन्न हो जाय, इसीलिए प्रत्येक युग में इनके अभेद को बल प्रदान किया गया।

सौ वर्ष की आयु में सृष्टि कार्य के लिये केवल पच्चीस वर्ष निर्धारित हैं। शेष पछत्तर वर्ष प्रजोत्पादन के लिए नहीं हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या का पालन, वानप्रस्थ आश्रम में ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्या का पोषण और वासना का संहार तथा संन्यासाश्रम में स्वार्थ का नितान्त संहार कार्य होता रहता है। वैसे चारों आश्रमों में ब्रह्मचर्य का पालन एवं ज्ञान का पोषण तथा अज्ञान का संहार चलता रहता है। अत: हिन्दू संस्कृति में प्रजोत्पत्ति अत्यन्त गौण है। अत: ब्रह्मचर्य धर्म, गृहस्थ धर्म, वानप्रस्थ धर्म एवं संन्यास धर्म में ज्ञान का पालन एवं अज्ञान का संहार ही होता रहता है। हरि और हर का धर्म ही सतत् प्रवहमान होता रहता है।

ब्रह्मा की पूजा केवल प्रजोत्पत्ति कार्य के आरम्भ में होती है और किसी कार्य में नहीं होती। चक्रवर्ती दिलीप को सन्तान-प्राप्ति में विलम्ब हो रहा था। राज्य के सब कार्यों में उन्हें अनुपम यश प्राप्त हुआ। केवल सन्तान की कमी रह गयी थी। उन्होंने राज्य का भार सचिवों के कन्धों पर डाल दिया और सन्तति-प्राप्ति का प्रयास करने के लिए महारानी सुदक्षिणा के साथ गुरु वसिष्ठ के आश्रम जाने की योजना आरम्भ कर दी। इसी आरम्भ का वर्णन करते हुए कविकुल गुरु कालिदास ने लिखा है–

अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया ।
तौ दम्पती वसिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम् ।। रघुवंश 1 ।। 35 ।

वह युगल पुत्र की कामना लेकर, ब्रह्मचर्य पूर्वक विधाता की अभ्यर्चना करके गुरु वसिष्ठ के आश्रम गये । यहाँ गृहस्थाश्रम में भी ब्रह्मचर्य का नियम है । विजिगीषु राजा आदर्श पत्नियों के रहते हुए भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता था । हरि और हर ब्रह्मचर्य व्रत के आदर्श हैं । पुत्र कामना-प्रयत्न के आरम्भ में कालिदास ने विधाता की उपासना का नियम संकेतित किया है ।

गोस्वामी तुलसीदास की हरिहरोपासना के सन्दर्भ में हम आगे चर्चा करेंगे । अपने रघुवंश महाकाव्य में रघुवंश और रघुवंशी राम इत्यादि का योगदान करने के पूर्व रघुवंश महाकाव्य के मंगलाचरण में पार्वती-परमेश्वर की वन्दना करके कविकुल गुरु कालिदास ने हरिहरोपासना का समन्वयात्मक आदर्श स्थापित किया है । वे कहते हैं–

वागर्थाविवसम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ।।

वाणी और अर्थ की विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिये, वाणी और अर्थ के समान घुले-मिले, जगत् के माता-पिता पार्वती-परमेश्वर की वन्दना करता हूँ । राम-महाकाव्य का आरम्भ, पार्वती-परमेश्वर की वन्दना से करना, हरि-हरोपासना का ही अत्यन्त स्पष्ट लक्षण है ।

गोस्वामी तुलसीदास जी का रामचरितमानस तो हरिहर-समन्वय का अत्यन्त सफल एवं विरल महाकाव्य है । रामचरितमानस के आदि मंगलाचरण का प्रथम छन्द है–

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी-विनायकौ ।।

शिवपुत्र विनायक राम-महाकाव्य के आरम्भ में प्रस्तुत होकर हरिहरोपासना की भूमिका का सृजन करते हैं । इसके तुरन्त बाद के दूसरे श्लोक में भवानी शंकर की उपासना की गयी है । गोस्वामी जी ने लिखा है–

भवानीशंकरौ वन्दे, श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति, सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम् ।

गोस्वामी जी ने भवानी को श्रद्धा-स्वरूपिणी और शंकर को विश्वास-स्वरूप देखा है । सती के रूप में भवानी को राम के प्रति श्रद्धा नहीं थी । पार्वती अब दक्ष-तनया नहीं हैं, भव-पत्नी भवानी हैं । राम के लिए और पति शंकर के लिए उनके हृदय में श्रद्धा है । भगवान शिव तो पूर्ण विश्वासी रामभक्त हैं ही । भवानी शंकर की यह वन्दना भी हरिहरोपासना की भूमिका है ।

रामचरितमानस का आरम्भिक शब्द 'वर्ण' और अन्तिम शब्द 'मानवाः' है ।

'व' अक्षर 'उ' अक्षर का ही परिवर्तित रूप है। 'उ' अक्षर भगवान शंकर का एकाक्षर नाम है। अतः रामचरितमानस का आरम्भ शिव या हर से तथा अन्त भी शिव से ही है। रामचरितमानस में, इस प्रकार राम शिव के पुट में रखे गये हैं। कितना सुन्दर समन्वय है।

राम का नाम लेकर, रामचरितमानस में सर्वप्रथम जब राम की वन्दना की गयी है, तब उनका 'हरि' नाम ही लिया गया है–वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ अशेष कारणों के अन्तिम स्वरूप हरि की वन्दना करता हूँ, जिनका नाम 'राम' है–रामचरितमानस। 1/6।

'हरि-हर-कथा विराजति बेनी' हरि और हर की कथा ही त्रिवेणी तीर्थ है। यहाँ हरि एवं हर शब्दों को गोस्वामी जी ने जानबूझकर सुरक्षित रखा है।

"विधि हरिहर कवि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी" ।1/3 के पहले साधु-महिमा के प्रसंग में गोस्वामी जी ने पुनः 'हरि' और 'हर' शब्दों का प्रयोग किया है।

"हरि-हर-जस-राकेस-राहु से"–1/3 के बाद।

हरि-हर-यश के पूर्ण चन्द्र के लिए जो खल राहु के समान होते हैं। खल-वन्दना-प्रकरण में 'हरि-हर' शब्दों को गोस्वामी जी ने सम्हाल कर रखा है।

"सो सुधारि हरि-जन जिमि लेहीं।" 1/6 के बाद।

हरि-जन शब्द फिर साभिप्राय है। मानस के आरम्भ में गोस्वामी जी हरि-हरोपासना की स्थापना कर रहे हैं और पूरे मानस में इसका निर्वाह होगा। जो हरि का जन हो जाता है, वह लोगों के दुःख और दोषों को समाप्त कर, उन्हें विमल यश ही प्रदान करते। हरि भी यही करते हैं। वे दुःखहरण और दोष-विनाशक हैं तथा विमल यश प्रदाता हैं। उनका भक्त भी यही काम करता है।

"हरि-हर-पद-रति, मति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की" 1/8 के बाद जिनके हृदय में हरि-हर-पद की प्रीति रहती है और बुद्धि में दुष्ट तर्क नहीं उठते उन्हें ही रघुवर-कथा मधुर लगती है। गोस्वामी जी की हरिहरोपासना का यह स्पष्ट संकेत है।

"मंगल-भवन अमंगल-हारी। उमा-सहित जेहि जपत पुरारी ॥ 1/9 के बाद। रघुपति का नाम परम उदार है। वह मंगल भवन है। अमंगल-हारी है। उमा के साथ, पुर-शत्रु उसका जप करते हैं। सती, शिव के साथ राम-नाम का जप नहीं करती थीं, पर उमा को ज्ञान हो गया है। वे रघुपति के उदार नाम का, पति के साथ जप करती हैं। राम का हरि-नाम अमंगल का हरण करता है और शिव उसका जप करते हैं।

"हरि-जस कलि मल-हारी" 1/10 के बाद। हरि का यश कलि-मल का हरण करता है। हरि और हरण का शाश्वत सम्बन्ध है।

"बुध बरनहिं हरि-जस"—बुद्धिमान लोग हरि-यश का वर्णन करते हैं। 1/13 के पहले। हरि-यश पर गोस्वामी जी का ध्यान लगा रहता है।

"मुनिन्ह प्रथम हरि-कीरति गाई"—पूर्व काल में मुनियों मे हरि-कीर्ति का गान किया। वही "जिन्ह सादर हरि-सुजस बखाना"—व्यास आदि श्रेष्ठ कवियों ने हरि सुजस पर व्याख्यान दिया। सादर हरि-सुयश पर व्याख्यान 1/13 के बाद।

"जे प्राकृत-कवि परम सयाने। भाषाँ जिन्ह हरि-चरित बखाने॥"—जिन परम सज्ञान प्राकृत कवियों ने भाषा में हरि-चरित पर व्याख्यान किया, वही—

"हरि-जस कहउँ"—हरि का यश कहता हूँ। 1/14(ख), तुलसी स्वयं
"सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर, जौं हर-गौरि-पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा-भनिति-प्रभाउ॥"—1/15

सपने में भी यदि मुझ पर सचमुच हर-गौरी प्रसन्न हों, तो इस भाषा-कविता का जो प्रभाव कहा है वह सब सत्य हो गौरी के पूर्व जन्म का अज्ञान हरने के कारण यहाँ शिव को गोस्वामी जी ने हर कहा है। अपनी वाणी के दोष-हरण के लिये भी हर कहा है। इस कथन से भी हरि-हरोपासना को बल मिला है।

रामचरितमानस के अनुसार 'राम' महामन्त्र है और भगवान महेश्वर उसका जप करके सिद्धि प्राप्त करते हैं, महेश्वर बनते हैं। काशी में देह-त्याग करने वाले जीवों को भव-बन्धन से मुक्त करने के लिये इसी मन्त्र का उपदेश देते हैं। हरिहरोपासना का यह महत्तम प्रभाव और उदाहरण है।

राम नाम की महिमा का ज्ञान प्राप्त करके, उसके प्रभाव से गणराज गणपति को सब देवों के मध्य, प्रथम-पूजा प्राप्त होती है।

आदि कवि वाल्मीकि इतने मन्द-बुद्धि थे कि 'राम' का उच्चारण 'मरा' ध्वनि से करते थे, पर राम-नाम के प्रताप का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर परम शुद्ध हो गये।

जब भगवान शिव से भवानी ने सुना कि राम का एक नाम हजारों नामों के बराबर है तब विष्णु-सहस्रनाम का पाठ बीच में ही रोक दिया और राम का एक ही नाम लेकर पति के साथ भोजन करने के लिए तुरन्त आ गयीं। पति के भोजन में सौकर्य उत्पन्न करने का पुण्य भी प्राप्त किया और विष्णु-सहस्रनाम के पाठ का भी पूरा पुण्य प्राप्त कर लिया। शिव के हृदय में राम-नाम का ऐसा रस विद्यमान था।

अपने एवं राम-नाम के प्रति प्रेम देखकर और अपने वचनों पर पार्वती की श्रद्धा और उत्कट विश्वास देखकर भगवान शिव हर्षित हो उठे और पार्वती को सब स्त्रियों में श्रेष्ठ घोषित कर दिया। भगवान शंकर के हृदय में राम नाम के प्रति इस प्रकार अटूट विश्वास था।

नाम-प्रभाव-प्रकरण में अट्ठारहवें और उन्नीसवें दोहे के बीच में दो बार 'हर' शब्द का प्रयोग हुआ है। पहले प्रयोग में तो शिव ताप-हरण चन्द्र के समान हैं। भव-ताप को दूर करके राम नाम का शीतल तत्त्व भक्त के हृदय में उत्पन्न करते हैं और दूसरा प्रयोग पार्वती के हृदय में श्रद्धामय सन्तोष उत्पन्न करने के लिए। विष्णु-सहस्र-नाम और एक राम-नाम की समता पार्वती के हृदय में उत्पन्न कर द्विविधा-हरण करने के लिए भी 'हर' शब्द का प्रयोग हुआ। भगवान शंकर के हृदय में राम-नाम की आस्था व्यक्त करने के लिए भी 'हर' शब्द का दुबारा प्रयोग इस प्रकरण में हुआ है–"हरषे हेतु-हेरि हर ही को" पार्वती के हृदय का राम-नाम प्रेम और उनकी पति-भक्ति के लिये अनुराग देखकर हर हर्षित हो उठे। हरि-हर एकत्व केवल शिव के हृदय में ही नहीं था, अपितु शिव-परिवार के हृदय में था।

समुद्र-मन्थन के समय जो महाविष उत्पन्न हुआ, उससे सम्पूर्ण विश्व जल जाता। वह विष पान करके भगवान शिव विषपायी बन गये। राम-नाम को शिव की इस शक्ति का कारण बताते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है–नाम-प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को।। भगवान शंकर नाम के प्रभाव को भली-भाँति जानते थे, इसीलिए महाविष ने उन्हें अमृत का फल दिया। विषपायी शिव की कीर्ति अमर हो गयी, वे नीलकण्ठ हो गये। विष को हृदय तक नहीं जाने दिया, कण्ठ में ही धारण कर लिया। वह व्यक्ति अमर हो जाता है, जिसके हृदय में काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मत्सर का महाविष उत्पन्न नहीं होता। भगवान शिव का राम-प्रेम ऐसा ही धन्य था।

बहुत से समन्वयों के बीच गोस्वामी जी ने हरि-हर समन्वय अथवा शैव-वैष्णव भक्ति के समन्वय पर बड़ा बल दिया है। भगवान शंकर राम-कथा के आदि आचार्य थे, इस सत्य को गोस्वामी जी ने अपने रामचरितमानस में बहुत बड़ी प्रधानता दी है–

रामचरितमानस मुनि-भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन।।
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ उमा सन भाषा।।
ताते रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर।।

–दोहा 35 के पहले (बालकाण्ड)

भगवान शिव ने सुहावन, पावन, मुनि-भावन रामचरितमानस की विशिष्ट रचना की। पहले उसे अपने मानस में रखा और सुन्दर समय पर उमा के लिये इस कथा का वर्णन किया। इसे नाम देने के लिये हर ने अपने हृदय का मन्थन करके इसे सुन्दर और श्रेष्ठ रामचरितमानस नाम दिया। मानस-सरोवर ने शिव के हृदय को आकर्षित किया, अपने हृदय से निकली हुई राम-कथा को उन्होंने रामचरितमानस नाम दिया और हर्षित हुए। यहाँ भगवान शिव का 'हर' नाम

हरि-हर समन्वय की भावना को संकेतित करता है ।

अब सोइ कहउँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा-वृषकेतु ।। दोहा 35 ।।

मानस के प्रसंगों के आरम्भ में उमा-वृषकेतु को स्मरण करना भी समन्वय का लक्षण है । आरम्भिक मंगलाचरण में भवानी शंकर की वन्दना की चर्चा भी इसी समन्वय का संकेत देती है–

संभु-प्रसाद सुमति हिय हुलसी । रामचरितमानस कवि तुलसी ।। वही, दोहा 35 के बाद । गोस्वामी जी यह स्पष्ट सूचित करते हैं कि भगवान शंकर की ही कृपा से मेरे हृदय में सन्मति उल्लसित हो उठी और मैं रामचरितमानस का कवि हो गया । ऐसा कहना भी हरि-हर समन्वय है ।

मानस के आरम्भ में अपने गुरु के पद कमलों की वन्दना करते हुए गोस्वामी जी ने उन्हें 'कृपासिंधु नर रूप हरि' कहा है । यद्यपि 'हरि' का अर्थ सिंह भी होता है, नृसिंह या नरसिंह इत्यादि नामों में और उनके गुरु नरहरि दास नरसिंह दास का ही पर्यायवाची है, तथापि 'नररूप-हरि' का अर्थ 'नर के रूप में नारायण' भी होता है । नारायण भी कृपा-सिंधु बनकर विश्व-पालन कार्य करते हैं । कृपा-सिन्धु गुरु को गोस्वामी जी ने नर के रूप में नारायण का स्वरूप भी माना है । हरिहर-समन्वय का प्रबन्ध गोस्वामी जी ने रामचरितमानस के आरम्भ से ही स्थापित कर रखा है। यहाँ का 'हरि' शब्द हरिहरोपासना का ही संकेत है ।

अयोध्या काण्ड के आरम्भ में 'श्री शंकरः पातु माम्' कहकर गोस्वामी जी ने भगवान शंकर का स्मरण किया है और उनसे अपनी रक्षा की कामना की है ।

अरण्य काण्ड का प्रथम मंगलाचरण-श्लोक भी भगवान शंकर की ही वन्दना है ।

"श्रीरामभूपप्रियं कलंकशमनं शंकरं वन्दे"–"कलंक का नाश करने वाले, श्रीरामभूपप्रिय शंकर की मैं वन्दना करता हूँ"–में शंकर और राम का नाम लेकर, उनके प्रेम की चर्चा करके हरिहरोपासना ही की गयी है ।

किष्किन्धा काण्ड के मंगलाचरण के दूसरे श्लोक में 'श्रीरामनामामृत' का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है–"वे सुकृती लोग धन्य हैं, जो श्रीराम-नामामृत का पान करते हैं ।" गोस्वामी जी ने, शम्भु के सुन्दर मुखचन्द्र में सर्वदा संशोभित, इस रामनामामृत को देखा है । इस श्लोक के माध्यम से भी हरिहरोपासना व्यक्त होती है ।

श्री रामचरितमानस के सुन्दर काण्ड के प्रथम मंगलाचरण-श्लोक में भूपाल चूड़ामणि रघुवर को गोस्वामी जी ने हरि कहा है और उन्हें ब्रह्मा शम्भु फणीन्द्र के द्वारा निरन्तर सेव्य कहा है । अतः यहाँ भी शम्भु-नामोच्चारण से शिव की स्थापना

कर ली गयी है। तीसरे श्लोक में हनुमान की वन्दना करते हुए, इस रुद्रावतार को रघुपति-प्रिय भक्त कहकर गोस्वामी जी ने हरि-हर ऐक्य ही स्थापित किया है।

श्रीरामचरितमानस के लंका काण्ड के मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में भगवान राम की वन्दना है। यहाँ भी हरि-हरैक्य की स्थापना है—राम को 'कामारि-सेव्य' कहकर। उनको कामारि शिव के द्वारा सेव्य कहकर गोस्वामी जी ने हरि-हरैक्य ही स्थापित किया है।

दूसरे और तीसरे श्लोकों में तो 'गंगाशशांकप्रिय' काशी-पति की ही वन्दना की गयी है। अतः लंकाकाण्ड के मंगलाचरण में भी हरि-हरैक्य ही स्थापित है।

गोस्वामी जी की उपर्युक्त अमर कृति के उत्तर काण्ड के मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में पीत-वस्त्रधारी कमल नयन कपि समूह से घिरे हुए लक्ष्मण-सेवित पुष्पकारूढ़ जानकी पति राम की वन्दना की गयी है।

यहाँ राम 'सुरवरविप्रपादाब्जचिह्नम्' कहे गये हैं। सुरवर श्रेष्ठ देव नारायण हैं। नारायण का वक्षस्थल विप्र-चरण-कमल से सुशोभित है। राम जी भी नारायण हैं। वे सुरश्रेष्ठ और रघुश्रेष्ठ दोनों हैं। उनके हाथ में धनुष-बाण है। वे सदा वन्दनीय हैं। ऐसे नारायण राम की वन्दना इस काण्ड के आरम्भ में गोस्वामी जी ने की है।

अब राम का राज्याभिषेक होगा। इसीलिए काण्ड के आरम्भ में ही गोस्वामी जी ने सर्वप्रथम उनकी वन्दना की है। इस काण्ड के अभिषेक के तुरन्त बाद राम की वन्दना चारों वेद करेंगे। भगवान शम्भु करेंगे। रघुपति के पद कमल की स्वस्थ भक्ति माँगेंगे। इसीलिए गोस्वामी जी ने काण्ड में आरम्भ में सर्वप्रथम रघुवर राम की वन्दना की है और राज्याभिषेक के बाद भगवान शंकर से वन्दना करवाकर, भक्ति का वरदान मँगवाकर, हरिहरैक्य की स्थापना भी कर ली है।

हरि-हरैक्य या हरिहरोपासना की धारणा से गोस्वामी जी जुड़े हुए थे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। केवल बालकाण्ड में ही कम से कम सौ प्रमाण मिलते हैं, जिनमें 'हरि', 'हर' या 'हरि-हर' शब्दों का उच्चारण करके गोस्वामी जी ने हरि-हरैक्य भावना की साधना की है। शिव और विष्णु के अन्य नामों का सहारा लेकर भी गोस्वामी जी ने हरि-हरैक्य की साधना की है। अन्तिम सोपान, उत्तरकाण्ड को सोपानात्मक नाम उन्होंने 'अविरल-हरि-भक्ति-सम्पादनो नाम सप्तमः सोपानः' कह कर दिया है।

बालकाण्ड में सतीमोह प्रकरण में गोस्वामी जी ने हरि-हरैक्य की ही स्थापना की है। सती का जब उमावतार हुआ तब भगवान राम ने ही उस प्रकरण का नेतृत्त्व किया। प्रकट होकर वे शिव के पास गये और गिरिजा के पुनीत व्यक्तित्त्व का वर्णन करके कहा—

अब बिनती मम सुनहु सिव, जौं मो पर निज नेहु ।
जाइ बिवाहहु सैलजहि, यह मोहि माँगे देहु ।। 1/76 ।।

भगवान राम ने भगवान शिव से प्रार्थना की और उमा से विवाह करने का वरदान माँगा । हरि-हरैक्य का कितना सुन्दर उदाहरण है ।

नारद ने नारायण को मनुष्य होने का शाप दिया । नारायण की माया जब उन पर से हट गयी तब बड़े दुःखी हुए और इस पाप से मुक्ति पाने का उपाय पूछा । नारायण ने उन्हें शिव-शत-नाम का जप करने को कहा ।

शिव राम-भक्त हैं और राम शिव-भक्त हैं । राम ने रामेश्वर की स्थापना की और भगवान शंकर तो राम को अपने हृदय में ही धारण करते हैं । वे रामकथा के आदि आचार्य हैं ।

रामचरित रूपी सरोवर के चार घाट हैं । उमा-शम्भु-घाट, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज घाट, काकभुशुण्डि-गरुड़-घाट और तुलसीदास तथा विश्व-घाट । यह कथा शम्भु उमा से, याज्ञवल्क्य भरद्वाज से, काकभुशुण्डि गरुड़ से तथा गोस्वामी तुलसीदास सारे विश्व को सुना रहे हैं । काकभुशुण्डि तो कई जन्मों के बाद रामभक्त हुए । वे शिवभक्त और राम द्रोही थे । उनके गुरु शिवभक्त होने पर भी राम के द्वेषी नहीं थे । शूद्र कुल में जन्म हुआ था काकभुशुण्डि का । गुरु का भीतर-भीतर अपमान करते थे । भगवान शंकर के शाप से अधोगति हुई । एक हजार जन्म लेने पड़े । गुरु की कृपा से शिव प्रसन्न होकर काकभुशुण्डि को अव्याहत गति और ज्ञान की निरन्तरता दी । क्रमशः वे चिरजीवी रामभक्त हुए । बालकराम उनके इष्ट हुए । सगुण के लिए दुराग्रह के कारण लोमश ऋषि के शाप के कारण काक शरीर मिला, पर विनीत स्वभाव के कारण मुनि की कृपा को आकर्षित कर राम-मन्त्र प्राप्त किया और राम के बाल रूप का ध्यान ।

रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने उपर्युक्त पद्धति से हरि-हरैक्य की स्थापना की है । तेलुगु, हिन्दी और संस्कृत साहित्य को आधार बनाकर डॉ. सी-एच. रामुलु ने हरिहरोपासना के विकास पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है । तेलुगु के पुराण-साहित्य में हरिहरोपासना का अत्यन्त सफल प्रदर्शन किया है ।

उपनिषदों के धर्माद्वैत को भी उन्होंने हरिहराद्वैत स्थापित करने का साधन बनाया है । काव्य तथा स्तोत्र-ग्रन्थों को भी उन्होंने अपने मत की पुष्टि का आधार बनाया है । आलवार सन्तों की भक्ति-साधना में भी इस अद्वैत को उन्होंने सफलता-पूर्वक सिद्ध किया है ।

तिरुमलनाथ और हरिहरनाथ को भी उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से समन्वित किया है । हरिहरनाथ की मूर्तियों एवं मन्दिरों के चित्रों के आधार पर भी उन्होंने अपने चिन्तन को अकाट्य सत्यता प्रदान की है ।

तेलुगु तथा हिन्दी के बीसों समन्वय-साधकों के उदाहरण प्रस्तुत करके विद्वानानुसन्धाता ने अपने अनुसन्धान-ग्रन्थ को अत्यन्त उपयोगी एवं अनुशीलनीय बना दिया है ।

हरिहर के व्यापक स्वरूप को निर्धारित करने में उन्होंने तेलुगु एवं हिन्दी भक्ति-साहित्य का बड़ा व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

सन्त काव्य में उपर्युक्त अद्वैतता को, उन्होंने शून्यवाद, परिणामवाद, आनन्दवाद और मायावाद के आधार पर विश्लेषित किया है।

हरि धर्म और हर धर्म की अद्वैतता को प्रदर्शित करने के लिए डॉ. रामुलु ने प्रचुर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। परम्परा से उदाहरण प्रस्तुत करके उन्होंने यह सिद्ध किया है कि हरिहरनाथ ही अद्वैत ब्रह्म है। उनके स्वरूप में हरि और हर दोनों समन्वित हैं। वे ओंकार-स्वरूप हैं। वे अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष एवं आनन्दमय कोष हैं। जगत और ब्रह्म वे ही हैं। स्थूल और सूक्ष्म वे ही हैं। वे काल के प्रभाव से अत्यन्त मुक्त हैं। काल के स्वैर विहार का नाश करते हैं। वे नि.सीम भूमा हैं। वे नाश उत्पत्ति और परिवर्तन से प्रभावित नहीं होते। वे निर्भरानन्द-स्वरूप एवं विज्ञान-स्वरूप हैं। वे चिन्मयानन्द-स्वरूप हैं। उनका प्रकाशमय शरीर सहस्रों सूर्यों के प्रकाश को पराजित कर देता है। वे रसोमय हैं। वे नैसर्गिक मधुरोक्ति के विराट स्वरूप हैं। वे स्वयं भू अमृतमय वाणी के प्रकाशमय चिन्मय सार हैं। वे बन्धु-शत्रु-भाव के विनाशक हैं। तर्क उन्हें अपनी सीमा में बाँध नहीं सकता। वे सर्वदृष्टा एवं करण-कारण-रहित हैं। सद्-असद् उन्हीं की कलाएँ हैं। उनका विलास सुकृतमय है। सृष्टि एवं प्रलय उन्हीं ब्रह्म की लीला है। अगणित स्वरूपों में वे प्रकट होते हैं। वे निर्गुण, निरंजन, निष्फल एवं अतर्क्य हैं। वे यज्ञस्वरूप हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष स्वरूप हैं। सत्त्व, रज, एवं तमोगुण में उन्हीं की शक्ति काम करती है। प्रकृति एवं पुरुष उन्हीं में अवस्थित हैं। विश्व के समग्र क्रम उन्हीं के भीतर स्थान पाते रहते हैं। वे समस्त विश्व के हृदय-कमल में निवास करते हैं। भक्त के हृदय में पड़ी हुई वासना की ग्रन्थि को समाप्त करते हैं। मन्त्र-शक्ति ही उनकी प्रकृति है। नित्य और अनित्य बिवेक-वैभव के वे धनी हैं। मुनि-हृदय-निलय में वास करते हैं। दम-सहित तप ही उनका साक्षात्कार कर सकता है। वे ही देव-पितृ-यज्ञ-प्रवर्तक हैं। ज्ञान के जागरण में ही उनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो सकता है। हंस-हृदय के अनाहत नाद की धारा में उनका ज्ञान प्राप्त होता है। हंस-भाव में ही उनकी अनुभूति हो सकती है। इड़ानाड़ी में वायु रूप बनकर वे ही चन्द्र-तत्त्व स्वरूप हो जाते हैं। भावगम्य बनकर वे कीर्तन-योग्य हो जाते हैं।

डॉ. रामुलु ने अपने सर्वग्राही सूक्ष्म अध्ययन के द्वारा हरि-हराद्वैत धर्म का बड़ा मार्मिक भाव-गम्य एवं बोध-गम्य अध्ययन किया है। हरि-हर ब्रह्म के अद्वैतमय स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने में उनका यह ग्रन्थ अत्यन्त सफल सहायक सिद्ध होगा। उनके इस ज्ञान एवं भक्तिमय अध्ययन के लिए हार्दिक बधाई।

–रामनिरंजन पाण्डेय
आचार्य एवं प्राक्तन अध्यक्ष
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

आशंसा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवऽवशिष्यते ॥

अनेकता में एकता के दर्शन करने की भारतीय मनीषा की जिज्ञासा अति प्राचीन है। जीवन की अनेकरूपी व्यापक सत्ता की एकात्मकता, अण्ड में ब्रह्माण्ड के अस्तित्व की पहचान आदि इस जिज्ञासा का परिणाम है। विराट् विश्व में व्याप्त एक तत्त्व की ओर भारतीय जिज्ञासु का हृदय एवं मस्तिष्क आकर्षित होते रहे। वही जल है, कभी बर्फ बना तो कभी भाप। एक ही अनन्त तत्त्व है जो इस सृष्टि के अनेक रूपों में वितरित अथवा परिव्याप्त है। समस्त सृष्टि में एक अद्वैत तत्त्व की स्थापना करने तक उसे शान्ति प्राप्त नहीं हुई। अनेक में एक को देखने तथा अनुभव करने में ही जीवन की सार्थकता मानी गई है। यही भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

बाह्य जीवन में परिलक्षित होने वाली विभिन्नताओं के सूक्ष्म और तुलनात्मक अध्ययन से यह बात सुस्पष्ट हो जाती है कि ये सब एक ही तत्त्व की अनेक टीकाएँ हैं और अगणित परिभाषाएँ हैं।

सुप्रसिद्ध अमरीकी तत्त्ववेत्ता एमर्सन का कथन अत्यन्त समीचीन है। उन्होंने कहा कि संसार की सभी दार्शनिक विचारधाराएँ सरिताओं के समान हैं तो भारतीय वेदान्त समुद्र के समान है। ठीक है, सर्वदेव नमस्कारम् केशवम् प्रतिगच्छति।

प्राचीन काल से अनेक धर्मों और सम्प्रदायों के होने के बावजूद शैव और वैष्णव सम्प्रदाय प्रबल रहे। इन दोनों सम्प्रदायों के अनुयायियों में यदा-कदा संघर्ष भी होते रहे। आदि शंकर ने सैद्धान्तिक धरातल पर इस वैरुध्य को दूर करने का सफल प्रसास किया, तो विभिन्न भारतीय भाषाओं के कवियों ने हरि और हर में एकत्त्व की स्थापना कर हृदय पक्ष को सुकोमल बनाने का सराहनीय प्रयास किया। चाहे हिन्दी हो, चाहे तेलुगु, चाहे कोई और भाषा – भारतीय कवि मानस ने इस एकत्व की भावना को काव्य के धरातल पर बल देने का प्रयत्न किया, उस एकत्व को संवेद्य बनाया।

डॉ. सीएच. रामुलु स्वभावतः धर्मनिष्ठ व्यक्तित्त्व वाले हैं। यह उस वातावरण का प्रभाव है, जिसमें उनका बाल्यकाल व्यतीत हुआ। यह उनकी शिक्षा-दीक्षा के साथ विकसित हुआ। एम. ए. पढ़ते समय ही उन्होंने "सूर और पोतना की

भक्ति भावना" की तुलना करते हुए लघु शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया। इस अध्ययन ने उन्हें सूर और पोतना के काव्य में अभिव्यक्त धर्म की भावना की ओर आकृष्ट किया। तब उन्होंने लगातार चार वर्ष तक गम्भीर अध्ययन मनन और शोध करके "सूर और पोतना के काव्य में अभिव्यंजित भक्ति भावना" की तुलना करते हुए भारतीय कवि मानस की चिन्तन धारा की एकात्मकता को प्रस्फुटित करने का सफल प्रयास किया।

डॉ. रामुलु शोधकार्य कर उपाधि प्राप्त कर ही संतृप्त नहीं हुए। उनके चिन्तन और मनन का कार्य सक्रिय बना रहा। अनेक शोध पत्रों और अनूदित कृतियों द्वारा उन्होंने हिन्दी और तेलुगु काव्य में अभिव्यंजित एकता की भावना को उजागर करते हुए देश की भावात्मक एकता की साधना का सराहनीय प्रयास किया और कर रहे हैं। इस दिशा में अन्नमाचार्य के संकीर्तन, रामभक्ति साधना आदि उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

प्रस्तुत पुस्तक "श्री हरिहरोपासना बनाम धर्माद्वैत साधना" डॉ. रामुलु के सुदीर्घ शोधपरक चिन्तन का परिणाम है। हिन्दी और तेलुगु के भक्तिकालीन साहित्य का अध्ययन और मनन करके डॉ. रामुलु ने दोनों भाषाओं के साहित्यों में अभि-व्यंजित हरिहराद्वैत की भावना को उजागर करते हुए धर्माद्वैत को विश्वजनीन और विश्व व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया है। 'धर्माद्वैत' की इस भावना के अन्तर्गत मात्र शैव और वैष्णव सम्प्रदाय ही नहीं अन्य अभारतीय धर्मों को भी समाहित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। यह चर्चा विद्वानों के लिए अत्यन्त स्पृहणीय होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

भारतीय जनमानस धर्मप्राण है। इसलिए धर्माद्वैत की स्थापना करना भावात्मक एकता की सिद्धि का सफल साधन है। आशा है, डॉ. रामुलु ऐसे सत्प्रयासों द्वारा भारत की भावात्मक एकता को सुदृढ़ बनाने में सफल होंगे।

आशा है, सुधी विद्वज्जन इस कृति का स्वागत करेंगे।

भीमसेन निर्मल
आचार्य एवं प्राक्तन अध्यक्ष
एमरिटस प्रोफेसर
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

मकर संक्रान्ति–दि० 14-1-1993

1-1-405/711, गाँधीनगर,
हैदराबाद–500380

पूर्वोक्ति

सृष्टि, आत्मा और परमात्मा से संबद्ध समग्र विवेचन, चिंतन और अनुचिंतन के महत्त्वपूर्ण प्रयासों की एक लम्बी परम्परा का केन्द्र भारत उपखण्ड रहा है। यहाँ परब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूपों का एक ओर गम्भीर विवेचन मिलता है तो दूसरी ओर उन रूपों की विविध अवधारणाएँ भी प्राप्त होती हैं। इनके आधार पर परब्रह्म की साधना और उपासना की पद्धतियों, प्रक्रियाओं, परम्पराओं आदि के भी आविष्कार इस पुण्यभूमि पर हुए हैं। भिन्न उपासना पद्धतियों, उपास्य के भिन्न सगुण रूपों की परिकल्पनाओं तथा उनके आधार पर प्रचलित सम्प्रदायों एवं उनके द्वारा प्रतिपादित अनुपालन विधियों तथा अनुसरण करने वाले समुदायों का उभरना भी यहाँ सहज रूप से घटित हुआ। कालक्रम में उन समुदायों के बीच संघर्ष भी उत्पन्न हुआ और साथ-साथ समन्वय के सफल प्रयास भी हुए हैं।

भारत वर्ष में हर, हरि एवं ब्रह्म तत्त्वों को लेकर परिकल्पनाएँ समय-समय पर उभरती रही हैं। हरि-हर अथवा विष्णु-शिव तत्त्वों के सगुणोपासना से सम्बद्ध संघर्षों को कुछ विद्वानों ने आर्य एवं द्राविड़ संघर्षों के रूप में देखने का प्रयत्न किया है। भारतीयों का आदि आदर्श ग्रंथ वाल्मीकि रामायण में राम-रावण युद्ध को इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में स्वीकार किया गया है। किन्तु इस संघर्ष से संबद्ध एक महत्त्वपूर्ण समन्वय के परिणाम को विस्मृत नहीं किया जा सकता। वह है राम के द्वारा दक्षिणी समुद्र तट पर शिव लिंग की प्रतिष्ठा। इस क्षेत्र का उत्तरोत्तर काल में एक महान पवित्र तीर्थ के रूप में विकसित होना भी एक सत्यांश है। यह समन्वय की दिशा में प्रथम उल्लेखनीय उत्कृष्ट उदाहरण है।

चाहे आदि ग्रंथ वाल्मीकि रामायण में समन्वय साधना का समुन्नत प्रयास क्यों न हुआ है, मानव समुदायों के बीच सहज रूप में उत्पन्न होने वाले संघर्षों में उपासना पर आधारित संघर्षों की शृंखला भी बनी रही है। यह प्रधानतः शिव और विष्णु तत्त्वों को लेकर रही है। शैवों और वैष्णवों के बीच के संघर्षों ने दक्षिण में तो लगभग सातवीं-आठवीं शताब्दियों में एक विकराल रूप ही ग्रहण कर लिया था। परिणामतः वीर शैवों और वीर वैष्णवों का एक संघर्षपूर्ण इतिहास भी इस क्षेत्र में घटित हुआ है। आन्ध्र प्रान्त में "पलनाडु युद्ध" के दुष्परिणामों को यहाँ विशेष रूप में देख सकते हैं। महाभारत के समान इसमें भी एक राजवंश के नाम की कहानी है। इस संदर्भ में राजवंश के एक पक्ष ने शैव धर्म का और दूसरे पक्ष ने वैष्णव धर्म का समर्थन किया था। इस ऐतिहासिक घटना के आधार पर

श्रीनाथ कवि ने तेलुगु में "पलनारि वीर चरित्र" नामक एक काव्य का प्रणयन किया है। श्रीनाथ तेलुगु के प्रसिद्ध कवि पोतना के समकालीन हैं। समय 15 वीं शती है।

श्रीनाथ से पहले ही श्रीमद् महाभारत के रचयिता महाकवि तिक्कना सोमयाजी ने हरि-हरनाथ तत्त्व की समग्र प्रतिष्ठा की है। उनके अनुसार हर और हरि में अभेद है। इसलिए उन्होंने हरि और हर को युगल मूर्ति में परिकल्पित करके उसे हरिहरनाथ कहा है। अपने एक काव्य को भी उन्होंने हरिहराय को अर्पित किया है।

अजंता की गुफाओं में हरिहरनाथ की मूर्ति है। इन गुफाओं का निर्माण काल ईसा की दूसरी शताब्दि से सातवीं शताब्दि तक के बीच का रहा है। इनके निर्माण में आन्ध्र शिल्पियों का योगदान रहा है। यह इस ओर संकेत करता है कि सामान्य जन, कलाकार एवं साहित्यकारों में हरिहरनाथ तत्त्व का प्रचार हुआ है और उसको राज्याश्रय भी प्राप्त हुआ है।

आन्ध्र प्रान्त समस्त भारत में समन्वय का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यह सभी सम्प्रदायों, मतों, धर्मों की संगम स्थली एवं समन्वय की भूमि रही है। यहाँ वैदिक और बौद्ध धर्मों के बीच, शैव और वैष्णव धर्मों के बीच, हिन्दू और इस्लाम धर्मों के बीच, यहाँ तक कि हिन्दू तथा ईसाई धर्मों के बीच शान्ति और आदान-प्रदानों की स्थापना हुई है। यह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थिति है।

भारतीयों की उपासना एवं साधना पद्धतियों के केन्द्र में हर और हरि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके सगुण और निर्गुण परिकल्पनाओं के बीच अद्वैत की स्थिति लाने के प्रयास एक महत्त्व की दिशा को सूचित करते हैं। इसके ऐतिहासिक एवं तात्त्विक अंशों का एक समग्र अध्ययन डा. सी-एच. रामुलु ने अपने सुदीर्घ अनुसंधान के आधार पर प्रस्तुत किया है। इसमें हरिहरनाथ तत्त्व को वैदिक वाङमय से लेकर आधुनिकतम साहित्य तक में स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास हुआ है। साहित्यिक अवतरणों को अन्य स्रोतों जैसे मन्दिरों, मूर्तियों, चित्रों आदि का संबल देकर प्रतिपादित करने का भी प्रयास इस ग्रंथ में स्तुत्य रूप से सम्पन्न है।

भक्ति के विभिन्न रूपों और उसकी दार्शनिक भूमिका के गहन अध्ययन में रत डॉ. रामुलु का यह एक प्रयास है जो भारतीय एकात्मकता और साध्य की एकरूपता को स्थापित करने के भारतीय प्रयासों को सप्रमाण निरूपित करता है। यह ग्रंथ अनुसंधाता के सूक्ष्म एवं गम्भीर अध्ययन की छाप लिए है। जिज्ञासु पाठकों एवं शोधार्थियों के लिए यह एक प्रामाणिक ग्रंथ है। प्रस्तुत कृति के लिए दो शब्द लिखने का गौरव मुझे मिला है। तदर्थ मैं अपने आपको धन्य मानता हूँ। प्रिय बन्धु डॉ. रामुलु को साधुवाद देता हूँ और आशा रखता हूँ कि वे ऐसे अनेक ग्रंथ और प्रस्तुत करेंगे।

—वै. वेंकटरमण राव

प्रो० हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

आत्म निवेदन

भारतीय समाज में जब-जब उथल-पुथल हुए, चिंतन में असन्तुलन हुआ, जीवन में समरसता विचलित हुई, जन साधारण का मन कल्लोलित हुआ तब-तब समन्वय चेता भारतीय मनीषी, ऋषि, मुनि, संतों ने अपनी सम्बुद्धि तथा उदार प्रकृति से बिखरे पड़े समन्वयकारी तत्त्वों को एकत्रित कर अशांत मन को शांत कर, असन्तुलित विचार को सन्तुलित कर अस्त-व्यस्त जीवन में समरसता लाकर स्वस्थ चिंतन को सुस्थापित कर देश में एकरसता, एकात्मकता को सुप्रतिष्ठित किया। इसी कारण भारत विदेशी शक्तियों के सम्पर्क में आकर बाहरी चिंतन से आघातित होकर भी अन्यान्य चिंतन धाराओं को संस्कृतियों को अपने में आत्मसात किया और समय की कसौटी पर खरा सिद्ध हुआ। इस समन्वयात्मक चिंतन प्रक्रिया के फल-स्वरूप सभी धर्मों में स्थित एक-सूत्रता व एकात्मता को आविष्कृत करने का लघु प्रयास किया गया जो धर्माद्वैत तत्त्व के रूप में प्रस्तुत किया गया। इसके मूल सूत्र की खोज में श्रीहरि और श्रीहर के एकीकरण का प्रयास मध्य युग में समस्त देश में देखने को मिला। इसी प्रयत्न में 'शबरिमलै' में स्थित श्री अय्यप्प स्वामी हरिहर सुत कहलाये। श्री हरिहर तत्त्व की विशद व्याख्या तथा विश्लेषण हिन्दी तथा तेलुगु काव्य सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया।

श्री हरिहरोपासना के मूल में धर्माद्वैत चिंतन है। धर्माद्वैत शब्द का प्रयोग प्रथम तेलुगु के महाकवि तिक्कना ने किया। पी. एच. डी. उपाधि के लिए मैं शोध कार्य में मग्न था। 'धर्माद्वैत' शब्द को लेकर मेरे निर्देशक श्रद्धेय गुरुवर डॉ. भीमसेन जी निर्मल के साथ मैंने शिष्य की सीमाओं को पार करते हुए लम्बा वाद-विवाद किया था। तब मेरा शोध कार्य 'सूर' और 'पोतना' के भक्ति तत्त्व पर चल रहा था। गुरु जी ने वाद-विवाद को रोकते हुए कहा कि इस विवाद को यहीं छोड़कर आगे बढ़ो। उपाधि के लिए कर्म मग्न शोध कार्य को पूरा करने के पश्चात् उपर्युक्त विषय पर विचार करने की आज्ञा दी। क्योंकि धर्माद्वैत दर्शन गहन विषय है। इस पर पृथक से विचार करना ही समीचीन होगा और गुरु जी की आज्ञा मान ली। शिक्षा के क्षेत्र में मैंने चुनौती स्वीकार किया। उस शोध प्रबन्ध में हरिहर तत्त्व पर सूर और पोतना के काव्य सन्दर्भ में मैंने विश्लेषण प्रस्तुत किया था।

1971 से लेकर 1990 तक लगभग 20 वर्ष तक हरिहर तत्त्व पर मैंने काम किया। हिन्दी और तेलुगु काव्य में हरिहरोपासना सम्बन्धी काव्य प्रसंगों को एकत्रित किया। दक्षिण में हरिहर परक धार्मिक सम्प्रदाय ही चला था। उत्तर भारत में भी यत्र-तत्र मन्दिर तथा अवशेष प्राप्त होते हैं। इस प्रकार सिद्ध होता है कि उत्तर और दक्षिण में हरिहर परक चिंतन धारा चल पड़ी थी, जो परस्पर विरोधी तत्त्वों के बीच समन्वय लाने की चेष्टा रही। धर्म का अर्थ यहाँ सीमित दृष्टि में सम्प्रदाय मानकर अद्वैत तत्त्व की साधना की गई। अर्थात् हरिहरोपासना के माध्यम से अध्यात्म तत्त्व की सिद्धि के लिए परिपूर्ण धर्म की साधना के प्रयत्न किए गये। साधारण शब्दों में कहा गया तो धर्माद्वैत का तात्पर्य उदार सम्प्रदाय या उदार धर्म कहा जा सकता है जिसे आजकल (लिवरल रेलिजियन) कहते हैं। विभिन्न धार्मिक संस्कारों में पलने वाले भारतवासी के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है, जिसके द्वारा वह उदार चरित वाला हो वह विश्व का नागरिक बनने योग्य हो जाता है।

हरिहरोपासना बनाम धर्माद्वैत साधना के अनेक पहलुओं पर विचार करते हुए हिन्दी-तेलुगु में कवि संत कवि आदि का परिचय देते हुए काव्य सन्दर्भों को प्रस्तुत करते हुए विषय को स्पष्ट करने की कोशिश की गई।

इस प्रयत्न में मार्ग-दर्शन करने वाले मेरे गुरुवर श्रद्धेय आचार्य डॉ. भीमसेन जी निर्मल के प्रति नतमस्तक हूँ। गुरुजनों के गुरुवर श्रद्धेय आचार्य डॉ. रामनिरंजन जी पाण्डेय ने आशीष देकर प्रोत्साहित किया, आपके प्रति हृदय से आभार मानता हूँ। अभिन्न मित्रवर परम आदरणीय आचार्य डॉ. वें. वेंकटरमण राव जी ने पूर्वोक्ति लिखकर उत्साहित करने के साथ-साथ इस ग्रंथ के प्रकाशन में समय-समय पर परामर्श देते हुए प्रोत्साहित किया। आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। डॉ. विश्वनाथ शुक्ल, प्रोफेसर हिन्दी विभाग, अलीगढ़ ने मेरा मार्गदर्शन किया, जिनका मैं आभार मानता हूँ

इस ग्रंथ के प्रकाशन में तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति तथा हैदराबाद केन्द्रीय विश्व विद्यालय ने आर्थिक अनुदान प्रदान कर मुझे कृतकृत्य किया है। दोनों संस्थाओं के अधिकारियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

जिन विद्वानों के ग्रंथों से मैंने विचार ग्रहण तथा सामग्री संचयन किया है, उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद विश्व-विद्यालय हैदराबाद, श्रीकृष्ण जन्मस्थान ग्रन्थालय, मथुरा तथा श्री सरस्वती महल ग्रंथालय, तंजाऊर से मैंने लाभ उठाया है। इन ग्रंथालयों के ग्रंथपालों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस पुस्तक के प्रकाशक व मुद्रक श्री अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर के प्रमुख न्यासी श्री मथुरा प्रसाद त्रिपाठी के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनके अथक श्रम से यह सुन्दर रूप में प्रकाशित हो सका।

सही प्रति लिखकर और टंकित कर मेरी सुपुत्री श्रीमती अनुराधा ने सहयोग दिया, उसे शुभाशीष प्रदान करता हूँ।

मानव के मस्तिष्क तथा हृदय की समन्वयात्मक प्रक्रिया को मेरे इस लघु प्रयत्न से बल मिलेगा तो अपने आपको धन्य मान लूँगा। आशा करता हूँ कि सुधीजन इस कृति को स्वीकार करेंगे और सुझाव प्रदान कर मार्ग-दर्शन करेंगे। अग्रिम धन्यवाद।

सीएच. रामुलु
रीडर, हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

अनुक्रम

1

श्री हरिहरोपासना

वेद सर्व विषयों के उपजीव्य ग्रंथ हैं। वरुण, इन्द्र, अग्नि, प्रजापति इत्यादि नाम वेदों में दिखाई देते हैं। अनन्तरकाल में उपनिषद् के तत्त्व-चिन्तन ने सृष्टि-स्थिति-लय कारण स्वरूप परब्रह्म को उपास्य माना। पश्चात् सत्त्व, रज और तमो गुण के क्रमशः विष्णु विधि महेश्वर नाम प्रचार में आये। उपनिषद् साहित्य में आगे चलकर विष्णु तथा शिव को सगुण रूप दिया गया। शंख, चक्र तथा त्रिपुण्ड् और अनुचर वर्ग के साथ उपास्य देव का गान पुराणों में किया गया। उपास्य देवों की संख्या के बढ़ जाने पर भी शिव-केशव में चित्त को एकाग्र कर लौकिक वासनाओं से निवृत्त होना ही आराधना कहा गया है। आराधक के हृदय में सन्देह उत्पन्न हो सकता है कि वह शिव की आराधना करे अथवा विष्णु की। निश्चित धारणा के अभाव में ध्यान नहीं होता। अतएव कुछ पुराण शिव-निर्देशक बने तो कुछ विष्णु-निर्देशक बन गये। किन्तु उनके आन्तर्य में विरोध बुद्धि नहीं है, जिसकी रुचि जैसी हो, उसकी भावना वैसी हो जाती है। और वही उनका इष्टदेव बन जाता है। किन्तु व्यक्ति कालान्तर में भावना व मन की दुर्बलता के कारण परनिन्दा कर अपने आराध्य की आधिक्यता स्थापित करने लगा। अपने उपास्य की आराधना कर प्रसन्न होने के अतिरिक्त अन्य देवता के प्रति वैमनस्य बढ़ गया जो नहीं होना चाहिए। इस प्रकार साम्प्रदायिक आवेश ने असहनीय एवं भयंकर रूप धारण किया।

साम्प्रदायिक संकुचित धारणाओं के आवेश का भयंकर रूप लेने से बचाने का एकमात्र साधन है, आध्यात्मिकता का प्रचार। नाम रूपात्मक उपास्य देव, अद्वितीय परब्रह्म ही है। उसकी प्राप्ति के लिए साधन माना गया है नाम और रूप को। मूर्ति के पीछे अमूर्त तत्त्व का ज्ञान है जो अध्यात्मिकता कहलाती है। ऐसे ज्ञान एवं आध्यात्मिक तत्त्व के लोप होने से धार्मिक भावना कल्लोलित होकर भयंकर रूप धारण करती है। जब तक भाव समन्वित धर्म में आध्यात्मिकता रहती है तब तक वह जनता का मार्ग दर्शन करती है। "मानव समाज के लिए

आध्यात्मिक तत्त्व अवश्य होना चाहिए।" (विवेकानन्द) आध्यात्मिकता का अर्थ है परमात्मा तथा तत्सम्बन्धी तत्त्व-दर्शन। परमात्मा को परब्रह्म कहते हैं जो ज्ञेय हैं अर्थात् ब्रह्म ज्ञेय हैं। सगुण और निर्गुण तत्त्व को सुव्यवस्थित, संतुलित रूप में जो स्थापित करता है, वही आध्यात्मिक भाव कहलाता है। इसके अभाव में उस धर्म से आध्यात्मिक तत्त्व लुप्त हो जाता है और कर्मकाण्ड बच रहता है। गुण-त्रय भेद के कारण सब देवताओं के नाम रूप समन्वित ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र आविर्भूत हुए। अतः त्रिमूर्ति की आराधना अपेक्षित है। निर्गुणब्रह्म में जिस प्रकार विश्व कर्तृत्व गौण हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी गौण हो जाते हैं। अतः त्रिमूर्ति में अभेद सिद्ध हो जाता है। इस कारण शिव-केशव में न्यूनाधिक की कल्पना असम्बद्ध ही है।[1]

बहुदेवतावाद-अवतार का मूलमन्त्र

हिन्दू धर्म में बहुदेवतावाद प्रचलित है। कहा जाता है कि तीन करोड़ देवता हैं। ये सब परमतत्त्व के अनन्त गुण क्रियास्वरूप हैं। इन देवताओं में कुछ प्रमुख अन्तर स्पष्ट दृष्टिगत होते हैं, जिन जिन कार्यों के निर्वाह हेतु ईश्वर की चेतना शक्ति प्रवर्तित होती है। उन उन कार्य-कलापों में अन्तर के अनुसार देवताओं में अनेक नाम रूप अभिहित हुए। इसीलिए तत्कार्यों की साधना में परम चेतना के कल्पित नाम रूपों को अंश, अंशांश, आवेश, कलाएँ, पूर्ण तथा पूर्णतम इत्यादि शब्द विशेषण रूप में कहे जाते हैं। अर्थात् अंशावतार–आवेशावतार-पूर्णावतार आदि व्यवहृतहुए। अनन्तरकाल में इन अवतारों के रूप उपास्य देवता के रूप में सुपूजित हुए।

इन अवतारों में प्रधान रूप से रामकृष्ण तथा नृसिंह उपास्य हुए। मत्स्य, कूर्म, वराहवतार, पशु लक्षण लक्षित होने के कारण क्रिया-कलाप की बहुलता के न होने से प्रशस्त नहीं हुए। सोमक का संहार कर वेदों का उद्धार करने से मत्स्यावतार का उद्देश्य पूर्ण हुआ। समुद्र-मंथन के सन्दर्भ में मन्दराचल का वहन करने से कूर्मावतार का लक्ष्य समाप्त हुआ। जलान्तर्गम होने से पृथ्वी को बचाने हेतु उठाये रखने से वराहावतार का प्रयोजन सिद्ध हुआ। अन्य अवतार वामन आदि में मनुष्यता के लक्षण परिलक्षित होने पर भी राम-कृष्ण अवतारों में निहित विशिष्टता इनमें न रही। वामनावतार का लक्ष्य बलिराजा का संहार है। वह राक्षसों के संहार में लीन होने वाले रामावतार के साथ मिल गया। परशुराम का अवतार केवल क्षत्रिय संहार के लिए निहित था। यह भी भारत युद्ध में सर्व क्षत्रिय नाश के लिए सन्नद्ध होने वाले कृष्णावतार में मिल जाता है। बलराम का

1. डॉ० के. वी. रामकोटि शास्त्री–दि आर्ट एण्ड फिलासफी आफ तिक्कना, पृ. 50

अवतार कृष्ण के साथ होने से पूर्णावतार होने पर भी गौण हो गया। अनन्तरकाल में बुद्धावतार की गणना में बलराम अवतार को हटाया गया। बुद्धावतार पूर्णावतार नहीं है और सनातन वैदिक धर्म से भिन्न प्रवृत्ति के होने के कारण अवतार के रूप में टिक न सका। श्रीराम और कृष्णावतार सत्त्व प्रधान हैं, तथा लोक-कल्याण में प्रशस्त हुए। नृसिंह अवतार पशुता तथा मानवता का सम्मिश्रित रूप होने से रजो गुण प्रधान आवेश-रूप होने के कारण प्रशस्त हुआ। अर्थात् मनुष्यता के लक्षणों से युक्त होकर सत्त्व प्रधान होने वाले पूर्णावतार जनता के चित्त को आकर्षित करने में समर्थ हो जाते हैं। ये सब अवतार लोक में धर्म की स्थापना तथा स्थिति हेतु प्रवर्तित होने के कारण विष्णु स्वरूप में सम्भावित हुए। यही हिन्दू धर्म में स्थित भगवान के अवतारों की सापेक्षता है।

समन्वय की प्रवृत्ति-आध्यात्मिकता

वैदिक धर्म सहज ही आध्यात्मिक है। अन्य देवताओं की निन्दा व निरासन और असहनशीलता का खण्डन सब पुराणों ने चाहे वे शैव हों या वैष्णव किया। सृष्टि, स्थिति तथा लय तत्त्व के विवरण, जीव ब्रह्म विषय का विवरण, मोक्ष के साधन, ज्ञान-कर्म-भक्ति योग के विवरण तथा उनके ठीक ठीक अनुष्ठान के लिए शिवकेशव की कथा लक्षित है। उन्होंने नैतिकता, वर्णाश्रम–धर्म आदि सामाजिक तत्त्वों को आध्यात्मिकता से जोड़कर समाज के सम्मुख रखा और सुसंगठित आदर्श पूर्ण स्वस्थ जीवन के निर्माण में योग दिया। पुराण कर्ताओं की सूक्ष्म दृष्टि, आध्यात्मिकता की परख तथा सुधारवादी दृष्टिकोण ध्यान देने योग्य हैं।

भक्ति सम्प्रदाय का अनुशीलन करने पर विदित होता है कि मूलत: वह समाज सापेक्ष है। "भज सेवायाम्" से स्पष्ट है कि भजन सेवा की अपेक्षा रखता है। अव्यक्त परम को साध्य करने के लिए व्यक्त भगवान की सेवा-सुश्रूषा साधन बन पथ प्रदर्शक बनता है। अनन्त नाम रूपात्मक जगत ही उसकी व्यक्त सत्ता है। चराचर जगत की सेवा द्वारा परम पुरुष की प्राप्ति हो जाती है। अन्न वस्त्रादि के प्रदान करने में बाह्य सेवा निहित है और सामाजिक, सांस्कृतिक स्वीकृति में मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक शान्ति मिल जाती है। यही जीव कोटि की सम-भावना की स्पृश्यता है। सभी क्षेत्रों में गौरवपूर्ण–स्वीकृति अपेक्षित है। प्राणिकोटि की अनेकानेक विकास की स्थितियों में वह परब्रह्म परमेश्वर अवस्थित है। वह सभी दशाओं, और सभी स्तरों में पोषित, पालित, एवं स्वयं चालित हो रहा है। भक्ति के किसी भी सम्प्रदाय तथा दर्शन के किसी भी सिद्धान्त के अन्तर्गत उसकी अस्वीकृति का तात्पर्य है उसकी पूर्णता से अवगत नहीं होना इसीलिए सभी धर्माचार्यों ने भक्ति के नाम पर सामाजिकता को प्रकट किया है। समाज सापेक्षता

को उदात्त, विस्तृत रूप में सचराचर विश्व समाज को अपनी भाषा परिभाषा में समेट लिया है। इसका विपरीत अर्थ लगाकर कई मति भ्रमित लोगों ने समाज से मुख मोड़कर वन का जीवन अपनाकर जीवन से भगाने का प्रयास किया। समाज-सापेक्षता का सही अर्थ परब्रह्म-सापेक्षता है। अपने स्वार्थ-स्वयं को विस्तृत कर विशाल रूप धारण कर विश्वरूप को प्राप्त करना है। मन, वाणी, बुद्धि, आत्मा में विश्व रूप में परिवर्तित हो ब्रह्म रूप में लीन होना ही मोक्ष की प्राप्ति है। विश्व के साथ तादात्मयता, तदाकारता, विश्वाकारता को धारण करना है। विपुल अर्थ में स्वयं सेवा ही भजन है। उसकी साधना के मार्ग अनेक हुए जो उपासना के असंख्य पंथ बन गये।

उपनिषदों में धर्माद्वैत तत्त्व

परमतत्त्व का चिन्तन करने पर ऐसा विदित होता है कि अभेदता सिद्धांत वेदों में बीजरूप में स्वीकृत होकर उपनिषदों द्वारा निस्सृत हुआ। इसकी विस्तृत व्याख्या पुराणों में प्राप्त होती है। उपनिषदों की संख्या एक सौ आठ सिद्ध हुई जिनमें श्री शंकराचार्य जी ने दस उपनिषदों की व्याख्या की। उनमें आपने निर्गुण, निराकार ब्रह्म पदार्थ की मीमांसा की। कुछ उपनिषद इस ब्रह्म पदार्थ को शिव के रूप में और कुछ श्रीमन्नारायण के रूप में मानते हैं और कुछ उपनिषद इस ब्रह्मपदार्थ को शक्ति स्वरूप मानते हैं और कई उपनिषद उस ब्रह्म की प्राप्ति हेतु योगादि पथ का निर्देश करते हैं।

प्रधान रूप से उपनिषदों में ब्रह्म अद्वितीय माना गया। "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेक मेवाद्वितीयम्"[1] अर्थात् जो-जो जिन-जिन नाम रूपों में वह ब्रह्म प्रतिष्ठित है वह उस पर आरोपित रूप में जाना जाता है। वास्तव में उस ब्रह्म का न कोई नाम है और न कोई रूप। वह सत् है जो अद्वितीय एकैक है। प्रमुख उपनिषदों में कही गयी ब्रह्म-पदार्थ की व्याख्या वैष्णव उपनिषदों में नारायण परक कहा गया।

"अथ पुरुषोहवै नारायणोअकामयत
एको नारायणः नद्वितीयो अस्तिकश्चित्।"[2]

अर्थात् परम पुरुष नारायण ने सृष्टि का संकल्प किया।

एकमात्र नारायण हैं। उनके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं ऐसा माना गया। इसी प्रकार शैव उपनिषदों में शिव को प्रधान माना गया।

क्षरं प्रधान ममृताक्षरं हरः क्षरात्मानाविशते देव एकः।
एकोहि रुद्रो नद्वियायतस्थु।[3]

अर्थात् अमृताक्षर हर प्रधान तथा एकमात्र देवता है। रुद्र के अतिरिक्त अन्य कोई देवता नहीं है कहीं ऐसा कहा गया तो कहीं नारायण को ही सब कुछ

कहा गया।

एकोहवै नारायण आसीत्।[4]

स एकस्सऐको रुद्रः। अथर्व शिरोपनिषत्।।[5]

वैष्णवोपनिषद् कहता है कि नारायण ब्रह्म है तो शैवोपनिषद् कहता है कि रुद्र (शिव) एकमात्र ब्रह्म है। शैव और वैष्णव दोनों दूसरे पदार्थ का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। इस प्रकार शैव या विष्णु एक ही ब्रह्म हुए। दोनों नहीं। ब्रह्म अद्वितीय है। इसलिए नारायण विष्णु, शिव, हर आदि शब्द एक ही पदार्थ में प्रवर्तित होने चाहिए। वह एकैक होना चाहिए। तभी तो हरिहर में प्रयुक्त शब्द एक ही पुरुष को प्रकट करते हैं।

सब्रह्मासशिवस्शेन्द्रः सोक्षरः परम स्स्वराट्,

स एव विष्णुस्सप्राणस्य कालो अग्नि स्सचन्द्रमाः।[6]

स आदित्वो विष्णुश्चेश्वरश्च।[7]

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्ण पिंगलं,

ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्व रूपायवै नामः।[8]

शाश्वतं शिवमच्युतम्।[9]

इस प्रकार के वाक्य उपनिषदों में बहुधा प्राप्त होते हैं। "शिव, ईश्वर, विरूपाक्ष" शब्द हर के लिए रूढ़ हुए तो विष्णु "विश्व रूपा अच्युत" शब्द हरि के लिए प्रचलित हुए। सभी शब्द एक ही परब्रह्म को अभिव्यक्त करने हेतु प्रयुक्त हुए। अर्थात् शिव, केशव आदि नामों से व्यवहृत होने वाला पदार्थ वह परब्रह्म है। समस्त शब्द राशि उसी लक्ष-लक्षण से युक्त हैं।

ॐ तद्ब्रह्म ॐ तद्वायुः ॐ तदात्मा,

ॐ तत्सत्यं ॐ तत्सर्वं ॐ तत्पुरोर्नमः

अन्तर्शचरती भूतेषु गुहायां विश्व मूर्तिश।

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार स्त्व मिन्द्रस्त्वं रुद्रस्त्वं

विष्णुस्त्वं ब्रह्मत्वं प्रजापतिः

त्वं तदाप आपांज्योति रसो अमृतं ब्रह्मभूर्भुवस्सुवरोम्।[10]

इस प्रकार सर्वस्व ब्रह्ममय माना गया तो हरिहरादि शब्दों के उच्चार भिन्न पुरुषों का अस्तित्व नहीं होता। अर्थात् शिव केशव में रूढ़ शब्दों के प्रयोग से उमापति, चन्द्रमौलि, हर सभापति चतुर्भुजी, शंखचक्र गदाधारी, विष्णु का तात्पर्य न होकर उपनिषदों के मूल उद्देश्य में केवल परब्रह्म सिद्ध होता है। शैव वैष्णव उपनिषद् भी मानते हैं कि शिव स्वयं विष्णु हैं और विष्णु स्वयं शिव है।

ओयोहवै रुद्रस्स भगवान् यश्च ब्रह्म–

यश्च विष्णु – यश्च महेश्वरः[11]

अधनित्यो नारायणः ब्रह्म नारायण: शिवश्च नारायण:[12]

इसके अतिरिक्त विष्णु सहस्रनाम के अन्तर्गत शिव परक रूढ़ हुए शब्द– शर्व, शम्भु, ईश, रुद्र, महादेव आदि हैं। इसी प्रकार शिव सहस्रनाम के अन्तर्गत विष्णु परक विष्णु के लिये रूढ़ हुए शब्द हरि विष्णु, पद्मनाभ, विश्वरूप, विश्वक्सेन आदि हैं और अनन्त सिद्धार्थ परमात्मा लोहिताक्ष महामाया, अनल आदि शब्द शिव विष्णु दोनों सहस्रनामों के अन्तर्गत प्राप्त होते हैं। अर्थात् विश्व रूपता अनन्ततत्त्व, महादेवत्व, शिव केशव दोनों में अलग-अलग रूप में होना सम्भव नहीं है। इसलिए शिव केशव नामों में पृथक अस्तित्त्व वाले पुरुष नहीं हैं।

एकमेवा अद्वितीयं सन्नाम रूपविवर्जितम्।[13]
तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति।[14]
यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णतेच।[15]
एकोदेवो बहुधानि विष्णु:।[16]
तमोमयात्मकोरुद्रः सात्विकमयात्मको
विष्णुः राजसमयात्मको ब्रह्मा।[17]
यद्यद्मेदंच तत्सर्वं मसदेवहि केवलम्।[18]

इन उपनिषद्-वाक्यों का सारांश यह है कि ब्रह्म पदार्थ ही अद्वितीय तथा नामरूप रहित है। उसमें सृष्टि हेतु अपने आप को विस्तृत करने का संकल्प किया मकड़ी के धागे की तरह विश्व भी उस ब्रह्म के पेट से निकला। वह परब्रह्म अनेक बना। उस ब्रह्म को त्रिगुणात्मकता ही विष्णु-ब्रह्म-रुद्रता में परिवर्तित हुई। इस त्रिगुणात्मकता के कारण ही दर्शनों में भेद करते हैं। इससे यह विदित होता हैं कि अभेद ही सत्य है।

शिव केशव ही नहीं सभी रूप ब्रह्म के रूप हैं। इस विषय को दिन में तीन बार स्मरण करने हेतु रहस्य-ज्ञात ऋषिवरों ने त्रिकाल संध्यावन्दन के अनुष्ठान में इस तत्त्व को समन्वित किया।

शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपाये विष्णवे
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयंशिव:।
यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयशिव:।
यथान्तरं नपश्यामि तथामे स्वस्तिरायुषि।

सूर्य में परब्रह्म के रूप दर्शन करने का सम्प्रदाय है। भविष्यपुराण से विदित होता है कि सूर्य प्रातः काल में ब्रह्मरूप, मध्याह्न में शिव रूप तथा सायंकाल में विष्णु रूप में दर्शन देते हैं।

उदये ब्रह्मारूपस्तु मध्याह्नेतु महेश्वर:
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रि मूर्तिस्तु दिवाकर:।।

पुराणों में हरिहरोपासना

समन्वय चेष्टा भारतीय मेधा की चेतना में है। अनेक देवी-देवताओं की समन्वित पूजा पद्धति में पाँच देवताओं की उपासना का आरम्भ हुआ। सभी देवताओं के प्रतिनिधि स्वरूप इनकी अर्चना शुरू हुई। वे पंचदेव विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य, गणेश माने गये। इनमें कभी-कभी किसी एक को कम कर, दूसरे को जोड़ दिया जाता है।

साम्बं सदाशिवं विघ्नराजं देवीं सरस्वतीं।
विश्वाधिक गुरुं चाहं वन्दे अभीष्ट्यर्थ सिद्धये ॥
(हरिहराद्वैत भूषण कारिका 1-2)

इनकी पूजा पंचायतन की पूजा कहलाती है। इस आराधना पद्धति का आरम्भकाल ज्ञात नहीं होता। कुछ स्मार्त्त इसे श्री शंकराचार्य द्वारा सम्पादित कहते हैं तो और कुछ कुमारिल से। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि पंचदेवो की आराधना अति प्राचीनकाल की है। जो भी हो ब्रह्मा गौण होते गये और ये पाँच देव प्रमुख होते गये। निश्चित तिथि ज्ञात न होने पर भी जे एन्. फरुखहर के अनुसार सातवीं शती इसका प्रारम्भिक काल माना जाता है।[19] यहाँ पर ध्यान देने वाली बात यह है कि ये पाँच केवल पाँच नहीं हैं। वास्तव में ये अनन्त देवताओं के प्रतिनिधि स्वरूप हैं। जब भक्त पाँचों की पूजा करता है तो समस्त देवताओं की आराधना हो जाती है। प्रत्येक देवता के नाम पर पुराण प्राप्त हैं जिनको सम्मिलित रूप में 'अथर्वगशिरस' कहते हैं। गरुण पुराड़ स्पष्ट रूप से स्मार्त्तों के लिए बताया जाता है, जिसमें पंचदेवता की उपासना पद्धति निहित है। श्रीमद्भागवत् पुराण भी पंचदेवोपासना को मानता है, किन्तु इसमें विष्णु की प्रधानता दिखाई गयी है। अतः वह पूर्णतः स्मार्त्त परक नहीं कहा जा सकता।[20]

स्मार्त्त तत्त्व

नारद पुराण तथा बृहस्पति पुराण तक स्मार्त्त-तत्त्व की महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। प्रभाकर तथा कुमारिल के कर्म-मीमांसा श्रौत तथा स्मार्त्तों के प्रधान ग्रन्थ माने जाते हैं। आगे चलकर प्रशस्तपाद, वात्स्यायन, उद्योतकरा तथा वाचस्पति मिश्र दार्शनिक या तो श्रौत हैं या स्मार्त्त। गरुढ पुराण तो स्मार्त्तों का सर्वस्व माना जाता है।[21]

श्री शंकराचार्य जी का अद्वैत सिद्धान्त स्मार्त्तों का ही है, इसीलिए संप्रदाय भेद को विस्मृत करने के कारण जनता को इसने आकृष्ट किया। दक्षिण तथा गुजरात के स्मार्त्त शंकर के अनुयायी कहे जाते हैं। धार्मिक-साधना की दृष्टि से अद्वैत तथा कर्म-मीमांसा में सब देवताओं के अन्तर्गत उसी परमतत्त्व के चिन्तन तथा अनुभूति के विचार में अन्तर हो जाता है।[22]

स्पष्ट विदित होता है कि समस्त चराचर जगत् की अनन्त-सन्धायिनी शक्ति एक है, जिसके अनेक नाम रूप कर सगुण, निर्गुण तत्त्व की उपासना कर, मनुष्य अपने आराध्य को प्राप्त करता है। भारतीय मस्तिष्क की यह देन है कि विषम परिस्थितियों में देश, धर्म तथा समाज की रक्षा अपने समन्वयवादी प्रवृत्ति से करता आया है। हरिहर तत्त्व भी इसी चिन्तन क्षेत्र का सुन्दर फल है, जिसके विषय में पुराण साहित्य में बहुत कुछ कहा गया है।

हरिहरतत्त्व चिन्तन

स्मार्त्त तत्त्व के अन्तर्गत "पंचदेवता" की आराधना, उस अनन्ततत्त्व की अनन्तकोटि रूपों के प्रतिनिधि रूप में हुई। कालक्रम में ब्रह्मा पिछड़ गये। श्री हरि के भक्तवत्सल रूप की उपासना वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत हुई और शरणागत वत्सल शिवशंकर हर की आराधना शैव सम्प्रदाय के अन्तर्गत हुई। बढ़ते साम्प्रदायिक दुरभिमान और तज्जन्य कालुष्य दोष-निवारण के लिए समन्वय के फलस्वरूप हरिहर तत्त्व का आविर्भाव हुआ। क्रमशः स्मार्त्त-भाव से हरिहर देव की आराधना होने लगी।

हरिहर तत्त्व दर्शन परिष्कृत मस्तिष्क की उपज है, साम्प्रदायिकता से मुक्त है। प्रत्येक पुराण ने अपने इष्टदेव की महत्ता की व्याख्या करते हुए भी शिव केशव की अभेदता का निरूपण किया है, और सर्वमान्य सिद्धान्तों को स्वीकार किया है। अतः किसी पुराण को साम्प्रदायिक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जहाँ सिद्धान्त का विवेचन हुआ है, वहाँ पर उस देव का पूर्णरूप से, सर्वश्रेष्ठ के रूप में विचार प्रस्तुत किया गया है। इसका अर्थ यह नहीं होता है कि किसी और सिद्धान्त की अवहेलना व न्यूनता दिखायी गयी है। इसी कारण हरिहर की अभेदता के दर्शन अनेक पुराणों में होते हैं। यथा—

"हरि हरयोः प्रकृतिरेका प्रत्यय भेदेन रूप भेदोऽयम्।
एकस्येव नटस्यानेक विधा भूमिका भेदात्।"[23]

हरि और हर में मूलतः भेद नहीं है। प्रत्यय में ही रूप का भेद होता है। नाटक में अभिनेता विभिन्न रूप धारण करता है पर वस्तुतः वह जो है, वही रहता है।

एक बार नारायण लक्ष्मी से कहते हैं—

"स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्दनः
उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थलयोरिव।"[24]

इसी तत्त्व का समर्थन विष्णुधर्मोत्तर में किया गया है।

अयं हरिरयं शम्भुरित्यभेदं करोति यः
स एव कृत कृत्यः स्यात्तेदमखिलंजितम्।।

एव शिवात्मकं विष्णुं तथा विष्णुवात्मकं शिवम्
समर्चयति यो यत्कया स याति परमं पदं ॥

(विष्णुधर्मोत्तर)

इसी प्रकार पद्मपुराण में भगवान् रामचन्द्र के रूप में भगवान् शिव के प्रति कहते हैं "आप शिव मेरे हृदय में रहते हैं और मैं आपके हृदय में हूँ। हम दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं है। मूढ़ तथा दुर्बुद्धियुक्त लोग ही हममें भेद मानते हैं। हम दोनों एक रूप हैं। हममें भेद-भावना करने वाले मनुष्य हजार कल्पों तक कुम्भीपाकादि नरकों में यंत्रणा भोगते हैं। जो धार्मिक पुरुष आपके भक्त हैं वे सदा ही मेरे भक्त हैं और जो मेरे भक्त हैं वे महान भक्ति से आपको ही प्रणाम करते हैं।

ममास्ति हृदये भवतो हृदयेत्वयं।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धिय ॥
ये भेद विदधत्यद्धा आवयोरेक रूपयोः।
कुम्भी पाकेषु पच्यन्ते नराः कल्प सहस्रशः ॥
ये त्वद्भक्ताः सदा अअसस्ते मद्भक्ता धर्म संयुताः।
मद्भक्ता आपि यूयस्या भक्त्या नतिकराः ॥[25]

शिवपुराण में शिवरूप में परस्पर कहते हैं "मेरे हृदय में विष्णु हैं और विष्णु के हृदय में मैं हूँ। जो इन दोनों में अन्तर नहीं समझता वही मुझे प्रिय है। हे विष्णु ! आप रुद्र के ध्येय हैं और रुद्र आपके ध्येय हैं। आप में और रुद्र में तनिक भी अन्तर नहीं है। जो मनुष्य रुद्र का भक्त होकर आपकी निन्दा करेगा। उसका सारा पुण्य तुरन्त भस्म हो जायेगा। पुरुषोत्तम विष्णु ! आपसे द्वेष करने के कारण मेरी आज्ञा से उसको नरक में गिराना पड़ेगा। यह बात सत्य है। इसमें संशय नहीं है। जो आपकी शरण में आ गया, वह निश्चय ही मेरी शरण में आ गया। जो मुझमें और आपमें भेद मानता है, वह अवश्य ही नरक में गिरता है।

ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्।
उभयोस्तंरम् यो वै नजानाति मतो मम

– शिवपुराण – 9/55-56

रुद्रध्येयो भवांश्चैव भवध्येयो हरस्तथा।
युवयोरन्तरं नैवतव रुद्रस्य किंचन ॥

– शिवपुराण – 10/6

रुद्र भक्तो नरो यस्तु तव निन्दां करिष्यति।
तस्य पुण्यंच निखिलं द्रुत भस्म भविष्यति ॥

– शिवपुराण – 10/8

नरके पतनं तस्य त्वद् द्वेषात् पुरुषोत्तम ।
मदाज्ञया भवेद्विष्णो सत्यं सत्यं न संशयः ।।

– शिवपुराण – 10/9

ब्रह्माण्डपुराण में इसी चिन्तन का समर्थन किया गया है ।

मद्भक्तः शंकर द्वेषी मद्वेषी शंकर प्रियः ।
तावुभौ नरकं यातो यावदाभूत संप्लवम् ।।
ये भेदवादं कुर्वन्ति ते वै निरयगामिनः ।
हरिरेव हरः साक्षाद्धर एव हरिः स्मृतः ।।
इत्य विज्ञाय ये केचिन्मूढाः पंडितमानिनः ।
तन्माया विष्टहृदयाः कलौ भेदं प्रकुर्वते ।।

– ब्रह्माण्डपुराण

विष्णु पुराण में भेद दृष्टि का खण्डन किया गया है ।

मत्तो विभिन्नमात्माने द्रष्टुम् नार्हसि शंकर ।
योऽहं सत्वं जगच्चेदं रुदेवासुर मानुषम् ।।
अविधा मोहितात्मानः पुरुषाः भिन्नदर्शिनः ।।

– विष्णुपुराण

श्रीमद्भागवत पुराण में दक्ष से परमात्मा विष्णु कहते हैं – "जगत् का परम कारण मैं ही हूँ । ब्रह्मा और शिव मैं हूँ । मैं ही सबका आत्मा, ईश्वर उपद्रष्टा, स्वयंप्रकाश और भेद रहित हूँ । विप्रवर ! त्रिगुणमयी ! अपनी माया के द्वारा जब मैं सृजन, पालन और संहार की लीला करता हूँ, तब-तब मैं ही उस लीलाकार्य के अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन नामों को धारण करता हूँ । ऐसे मुझे केवल अद्वितीय, विशुद्ध परमात्मा को अज्ञानी लोग ही ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य समस्त प्राणियों को विभिन्न देखते हैं । जिस प्रकार मनुष्य अपने सिर और हाथ, पैर आदि भुजाओं में ये मुझसे भिन्न हैं, ऐसा भेद-भाव नहीं करता वैसे ही मत्परायण मेरा भक्त किसी प्राणी को मुझसे भिन्न नहीं देखता । ब्रह्मन् ! हम ब्रह्मा, विष्णु; रुद्र तीनों स्वरूपतः एक ही हैं । हम सर्वभूत रूप हैं । अतः जो हममें कुछ भी भेद नहीं देखता – वही शान्ति को प्राप्त करता है ।

अहं ब्रह्माश्च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयं दृग विशेषणः ।।
आत्मा मायां समाविश्यं सोऽहं गुणमयींद्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दुध्रे संज्ञांक्रियोचिताम् ।।
तस्मिन् ब्रह्मण्य द्वितीयं केवले परमात्मनि ।
ब्रह्मा रुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञो अनुपश्यति ।।

यथा पमानन स्वांगेषुशिरः पाण्यादिषुक्वचित्।
पारक्यबुद्धि करुते एवं भूतेषु मत्परः ।।
त्रयाणामेक भावानां योन पश्यति वैमिदाम् ।
सर्वभूतात्मानां ब्रह्मम् स शान्तिमधि गच्छति ।।[26]

शिवकेशव के साथ गिरिजा और लक्ष्मी को जोड़ दिया जाता है। शक्ति का समन्वय समान हो जाता है।

या श्रीः सा गिरिजा प्रोक्ता यो हरिः स त्रिलोचनः ।
एवं सर्वेषु शास्त्रेषु पुराणेषु च पठ्यते ।

– वराहपुराण

विष्णुपुराण में महर्षि पराशर भगवान विष्णु की स्तुति करते हुए शिव केशव के अभेद रूप के दर्शन करते हैं।

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने ।
सदैक रूप रूपाय विष्णवे सर्व जिष्णवे ।।
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च ।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ।।
एकानेक स्वरूपाय स्थूल सूक्ष्मात्मने नमः ।
अव्यक्त व्यक्त भूताय विष्णवे मुक्ति हेतवे ।।
सर्ग स्थिति विनाशानों जगतो अस्य जगन्मयः ।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ।।
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयां यमणीयासाम् ।
प्रणम्य सर्व भूतस्य मच्युतं पुरुषोत्तमम् ।।[27]

विभिन्न कल्पों में साक्षात परब्रह्म विभिन्न रूपों में त्रिदेवों के रूप में प्राकट्य होता है और विभिन्न प्रसंगों में एक दूसरे का स्तवन करते हुए दृष्टिगत होते हैं।

नारायणं पुनर्ब्रह्माणं च पुनर्भवः ।
एक कल्पेषु कल्पेषु ब्रह्म विष्णु महेश्वराः ।।
परस्परेण गायन्ते परस्पर हितैषिणः ।
तत्तत्कल्पान्त वृत्तान्त मधिकृत्य महर्षिभिः ।। [28]

हरिहर में अभेदता

हरिहर शब्द निराला है। महर्षि वेद व्यास के द्वारा समासित है। समर्थ शब्दों को एक शब्दान्वित करना समास कहलाता है। यहाँ समर्थतत्त्व एक तत्त्व के रूप में समासित हुए। वेद व्यास ने हरिवंश में हरिहर शब्द का प्रयोग किया। "नमो हराय हिप्राय नमो हरिहराय।" हरिहराय शब्द का प्रयोग चतुर्थी एक वचनान्त में है। इसलिए यह द्वंद्व समास नहीं होता। तब द्विवचनान्त में होना

चाहिए था। एक वचन में है इसलिए समाहार द्वन्द्व समास होता है। आजन्म विरोधी हो या अविनाभाव सम्बन्धी हो तो उनकी सूचना में वह समाहार द्वन्द्व समास बनाते हैं। लोक की दृष्टि में हरिहर के बीच आजन्म विरोध है। तत्त्व की दृष्टि में अभिन्न सम्बन्ध है। अस्तु, हरिहर शब्द में समाहार द्वंद्व होना निहित है। वेद व्यास के अभिमत में जीवनिष्ठ की अभिरुचि के अनुसार पूर्वपद कर्मधारय भी सिद्ध होता है। यह "विष्णुरूपाय नमः शिवाय" भी विदित होता है।

किसी देवता का वर्णन आपाद मस्तक करना चाहिए। आदि, अन्त, रूप *रहित परम तत्त्व रूप में स्थित हरिहर स्वामी का चरण शिरोभेद नहीं है। आपके चरणों में गंगा है। सर पर गंगा है। उसी प्रकार आपके वाम और दक्षिण भेद भी नहीं हैं।*

अव्यक्त सत्ता व्यक्त हो रूप धारण करता है। कृपावश हो निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप लेता है क्योंकि सगुण ब्रह्म उपासना हेतु सुलभ होता है। मनोकामना की सिद्धि कराने वाला होता है। श्रीगौरी सहित उपस्थित होकर श्रीलक्ष्मी सम्पन्न हो भक्तजन को धन, बल प्रदान करता है। परतत्त्व को हरि के रूप मे भावना कर "हरये नमः" कहते हुए भक्त ध्यान मग्न होता है तो कभी हर के रूप मे भावना कर "हराय नमः" कहते हुए भावलीन होता है। किन्तु वह ध्यान आगम सम्मत होने पर भी अवैदिक होने के कारण परतत्त्व के रूप में संभावित नहीं होता। "विष्णु रूपाय नमः शिवाय" कहते हुए ध्यान मग्न होने वाले तत्त्वज्ञानी सात्त्विक भक्त होते हैं। वे वैदिक रूप मे ध्यान योग्य हैं। ध्यान करने वाला ध्यायी है। उनका भाव ध्यायिता है। वैदिक होने पर ध्यायी वैदिक ध्यायिता होता है। वैदिक ध्यायिता परमार्थगत होने के कारण परतत्त्व उसकी मनोकामना की पूर्ति करता है। "विष्णु रूपाय शिवाय" कहने पर भी विष्णु की गुणवत्ता एवं शिव की प्रधानता सिद्ध होती है। परतत्त्व शिव होने पर विष्णु उनका गुण हो जाता है।

शिवकेशव का भेद जगत में संक्षोभ का कारण होता है। तब जगत् के कल्याण के लिए परतत्त्व हरि रूप धारण करता है जो सर्व देवताओं का समन्वित रूप होता है। आन्ध्रों ने अपने काव्य में सर्व धर्म समन्वय कर विश्वात्मा के समरस रूप की भावना करके विश्व में अपना स्थान बना लिया।

काव्य तथा स्तोत्र ग्रंथों में श्री हरिहरोपासना

महाकवि कालिदास ने अपने काव्य में स्मार्ततत्त्व चिन्तन की अभिव्यक्ति की। वाणी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और गणेश की वन्दना की। इन सबके मूल मे स्थित त्रिमूर्ति से परे परब्रह्म की स्तुति की।

सरस्वती की स्तुति

विवक्षितार्थं विज्ञप्त्यै वाणीं वीणा विनोदिनीम्।
विरचि वदनावादासां वन्दे विधाधि देवताम्॥

परब्रह्म स्तुति

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टे: केवलात्मने ।
गुणत्रय विभागाय पंचाद्भेदमुपेयुषे ॥[29]
तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमान मुदीरयन् ।
प्रलयास्थिति सर्गणिमेक: कारणतां गत: ॥[30]

विष्णु स्तुति

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते ।
अथविश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधा स्थितात्मने ॥[31]
रसान्तराण्ये करसं यथा दिव्यं पयोअश्नुते ।
देशं देशे गुणोष्वेव मवस्था स्त्वम विक्रिय: ॥[32]
एक: कारणतस्तां तमवस्थां प्रतिपद्यते ।
नानात्वं गगसंयोगात्स्फटिकस्येय ते ध्रवम् ॥[33]

शिव स्तुति

या न: प्रीतिर्विरूपाक्ष त्वदनुध्यान सम्भवा ।
सा किमावेद्यते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम् ॥[34]
साक्षाद् दृष्टोआसि न पुनर्वि विद्मस्त्वाम् वयमजसा
प्रसीद कथयात्मानं न धियां वर्तसे ॥[35]
किं येन सृजसि व्यक्तमुत येन विभर्षितत्
अथ विश्वस्य संहर्ता भाग: कतम एष ते ॥[36]
एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम् ।
विष्णोर्हरस्तस्य हरि: कदाचिद्वेधा स्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ॥[37]

श्रीमद् बोधेन्द्र सरस्वती कृत "हरिहराद्वैत भूषणम्" मे हरिहर की वन्दना करते हुए श्रीराम तथा शिव में अन्तर देखा नही गया ।

हरेर्हरस्थ चाद्वैतभूषणम् विद्वदीप्सितम् ।
श्रीरामस्य कृपा दृष्ट्वा क्रियतेअद्य मया शिवम् ॥
श्री हरिहरोद्वैत भूषण–प्रथमो भाग:[38]

ब्रह्माण्डपुराण मे कहा गया है कि सभी देवता अपने-अपने कार्य-कलाप में परतत्त्व के अंगभूत हैं ।

रुजं द्रावयते यस्यात्रस्माद्रुद्रो जनार्दन: ।
ईशानदेव चेशानो महादेवो महत्त्वत: ॥
वृहत्त्वाद्व हमनामासौ ऐश्वर्यादिन्द्र उच्यते ।
एवं नाना विधै शब्दैरेक एव त्रिविक्रम: ॥
वेदेषु सपुराणेषु गीयते पुरुषोत्तम: ।

ये अन्यं देवं परत्वेन वदन्त्यज्ञान मोहिता ।।
नारायणाज्जगन्नाथात्रे वै पाषण्डिनः स्मृताः ।
हरिवंशे कैलासयात्राया महेशा वचनम् – – ।।

हरिवंश पुराण में कैलास यात्रा के प्रसंग में महेश्वर इसी तत्त्व का प्रबोध करते हैं।

हरिरेकस्सदा ध्येयो भवद्भिस्सत्व संस्थितैः ।
नान्यो जगति देवोऽस्ति विष्णोर्नारायणः परः ।
ओमित्येवं सदा विप्राः पठध्वं ध्यातकेशवम् ।।

हरिहराद्वैत भूषण में अनेक नामों द्वारा एक परमसत्ता का प्रबोध किया गया।

परमानन्द जगन्नाथं राममेव सदाश्रये ।
सकृत्प्रन्न सन्त्राणे जागरूकं कृपानिधिम् ।।[39]
शिव नारायणाभेद भूषा विद्वदभीप्सिता ।
श्रीराम कृपयैवेयंरच्यते न्याय रूपिणी ।।[40]
अथर्वशिरसा वेद्य रसाम्ब स्सर्वेश्वर शिवः ।
श्रीरामरूपः स्फुरत कृपया ये हृत्दम्बुजे ।।

हरिहराद्वैत भूषणम्–द्वितीयो भागः

श्री शंकराचार्य रचित हरिहरनामावली स्तोत्रम् स्पष्ट करता है कि शंकराचार्य ने हरिहरतत्त्व को महत्त्वपूर्ण माना जिसके द्वारा धार्मिक सम्प्रदाय में एकता स्थापित करनी चाही। आपने हरिहरनाथ की स्तुति की तो एक ही पंक्ति मे शिव और विष्णु की वन्दना की।

शिवेशं रमेशं परेशं गिरीशं, भवं शंकरं श्रीनिवासं हरिंच ।
महादेव नारायणानन्तनाभं शिवं कृपाविष्णु भजेऽहं भजेऽहं ।।[41]

अन्त में आपने हरिहर के मूल में स्थित परब्रह्म की वन्दना की।

आनन्दकन्दं परस्वप्रकाशं, चिदानन्द रूपं चिदानन्दभासम् ।
परं ज्योति नित्यं परंधाम सत्यं परं ब्रह्म वेदान्तवेद्यं नमस्ते ।।[42]

ब्रह्मा द्वारा विरचित हरिहरस्तव में शिव-केशव दोनों की स्तुति एक साथ की गई।

मन्दरस्य गिरैः पाश्वेः नलिन्यां भवकेशवो ।
स्त्रै स्वप्नान्तरे ब्रह्मन् मया दृष्टौ हराच्युतौ ।।[43]

धर्मराज विरचित श्रीहरिहर स्तोत्रम् में शिवकेशव की वन्दना एक साथ की गई है। एक पंक्ति में गोविन्द की वन्दना है तो दूसरी पंक्ति में शिव की वंदना है।

गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे।
दामोदाराच्युत जनार्दन वासुदेव त्याज्या भटा यति सन्तत मामनन्ति ॥[44]

अज्ञात कवि विरचित हरिहरस्तोत्रम् में काव्य शैली के अनुरूप कहा गया है कि एक भयंकर कालकूट पीता है तो दूसरा राक्षसी पूतना का विषपूरित स्तन्य पान करता है। इसमें प्रश्न पूछा गया है कि इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है ?

एक: पपौ भुवन भीकर कालकूटं
अन्यं पपौ स्तन विषं खलुपूतनाया:
को वाअनयोरधिक इत्यनुचिन्त्य वृद्ध:
सत्यं वदंतु तमिमं वयमाश्रयाम: ॥[45]

इस प्रकार विदित होता है हरिहर की उपासना अनादि काल से हो रही है। वेद, उपनिषद, पुराण, काव्य तथा स्तोत्रों में हरिहर का तत्त्व चिन्तन मिल जाता है।

आल्वार काव्य में हरिहर तत्त्व

तमिल में आल्वार शब्द सामान्य रूप से द्वादश वैष्णव भक्तों के लिए प्रयुक्त होता है जिनके भक्ति पद "नालायिर दिव्य प्रबन्धम्" में संग्रहीत हैं। आल्वार का प्रयोग प्रबन्धम् में एक ही बार हुआ और वह भी निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि वैष्णव भक्त के अर्थ में हुआ हो। अर्थात् आल्वार शब्द का प्रयोग उन भक्त कवियों के जीवनकाल के तदनन्तर हुआ है। नम्माल्वार की रचनाओं मे "वैष्णवभक्त" के लिए "अडियार" या "भगवर" शब्द का प्रयोग मिलता है। आल्वार शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि विशाल अर्थ में प्रयुक्त होता था। "आल्वार" शब्द का अर्थ है "मग्न" होना। कहा जाता है कि शैव, जैन भक्तों ने भगवान बुद्ध के लिए इसका प्रयोग किया था। अर्थात् किसी भी सज्जन-पुरुष, सन्त व भक्त के लिए आल्वार शब्द का प्रयोग होता था। कालान्तर में वह वैष्णव भक्त के लिए रूढ़ हो गया।

आल्वारों की संख्या 12 मानी जाती है। इन भक्तों का जीवनकाल छठी से आठवीं शती माना जाता है। आप वैष्णव भक्तों के नाम निम्न प्रकार हैं। (1) पोयगै आल्वार (सरोयोगी), (2) भूतत्तालवार (भूतयोगी), (3) पेयालवार (महाद्योगी या भ्रान्त योगी), (4) तिरुमलिसई आलवार (भक्तिसार), (5) नम्मालवार (शठकोप), (6) मधुरकवि आलवार (मधुरकवि), (7) कुलशेखरालवार (कुलशेखर), (8) पेरियालवार (विष्णुचित्त) (9) आंडाल (गोदा), (10) तोंडरडीपोडी आलवार (भक्तांघ्ररेणु), (11) तिरुप्पाण-आलवार (योगी वाहन), (12) तिरुमंगै आलवार (परकाल)।

ये चौथी शती से आठवीं शती के बीच जीवित रहे। इसमें आंडाल या

मधुर कवि आलवार का नाम विपर्यय से गिनाया जाता है। आलवारों की रचनायें उनके जीवनकाल में संग्रहीत नहीं हुईं। बाद में "दिव्य प्रबन्धम्" नाम से पदों का संग्रथन हुआ। पूरे संग्रह में पदों की संख्या 4,000 के लगभग है जिसको "नालायिर दिव्य प्रबन्धम्" अर्थात् "चार सहस्र पावन पद" की संज्ञा दी गई। पेरियालवार और तिरुमंगै आलवार की रचनाओं में विशेष रूप से हरिहर तत्त्व के दर्शन होते हैं, अस्तु इस प्रबन्ध में इन दोनों की चर्चा ही की गई है।

तिरुपति के बालाजी मूलतः हरिहरनाथ हैं—पेरियाल्वार

श्री तिरुमल गिरि पर विराजित श्री तिरुपति क्षेत्र निवासी श्री बालाजी के वर्णन में आलवार सन्तों ने अपने पाशुरम् नामक स्तुति गीतों में कई बार श्री हरिहर स्वामी का वर्णन किया। श्री रामानुजाचार्य के जीवनकाल में वेंकटेश्वर स्वामी शिव हैं या विष्णु ? इस पर बड़ी चर्चा चली। इसका कारण उस देवता का केवल शिव या केवल विष्णु नहीं होना है। प्रारम्भ से उस देवता सम्बन्धी स्तुति गायन सम्बन्धी साहित्य को परखने पर शिव केशव की अभेदता सिद्ध हो जाती है।

श्री पेरियालवार, श्री तिरुमूलनायनार, श्री कपिलदेवनायनार के ग्रंथों में वेंकटपति को शिव कहा गया। शेरमान पेरुमाल् नायनार आदि ने शिव-केशव की एक मूर्ति का वर्णन किया। इसके अतिरिक्त स्वामी की मूर्ति में में शंख, चक्र आदि के साथ नागाभरण हैं। धनुर्मास में बिल्वार्चन सम्पन्न होता है। यह सब शिव लक्षण माने गये हैं और भी आगे चलकर अरुण गिरिनाथ आदि के काव्य में वेंकटाचलपति कुमारस्वामी के रूप में वर्णित हुए हैं। तिरुपति क्षेत्र में स्थित पुष्करिणी कुमारस्वामी के नाम से आज भी कही जाती है। वेंकटापति को पराशक्ति भी कहा गया है। बालाजी कहने में बाला त्रिपुरसुन्दरी के रूप में शक्ति की उपासना स्पष्ट विदित होती है। प्रधान रूप से तिरुपति स्वामी शिव-केशव अभेदतत्त्व में समन्वित हैं। इसीलिए उस पर कभी शैवों का शासन रहा तो कभी वैष्णवों का। किन्तु पूजा विधान आज भी रामानुजप्रोक्त पाँचरात्रागम से न होकर वेद प्रोक्त वैखानस आगम के अनुसार होता है।

"मृगेन्द्रम्वा खगेन्द्रम् वा

तुलसीदलैर्वा बिल्वदलैर्वा" कहते हुए भक्त जन भगवान को जो प्रीतिकर हो उसी के द्वारा पूजा करते हैं। तिरुपति स्वामी के हरिहर रूप का वर्णन आलवार सन्तों के काव्यों के उदाहरणों से स्पष्ट होता है।

पेरियालवार का आलवारों में विशिष्ट स्थान है। आपका संस्कृत नाम "विष्णुचित्त" है। आप पाण्ड्य राज्य के श्रीविल्लिपुत्तूर नामक गाँव में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। आपको विद्वान लोग 8वीं शती का मानते हैं। आप पाण्ड्य राजा वल्लभदेव पाण्ड्यन के ज्ञान-गुरु माने जाते हैं। बचपन से आपकी रुचि

भगवद्ध्यान में रही, इसलिए समुचित रीति में शास्त्रों का अध्ययन न हो सका। आपने श्री भगवान के श्री चरणों में प्रतिदिन पुष्प मालाओं का समर्पण करने में अत्यन्त आनन्द प्रकट किया। फूल उगाने के लिए आपने एक सुन्दर बगीचा लगाया था। नित्य नवीन सुमन चुनकर सुन्दर माला में गूँथकर प्रतिदिन विष्णु मन्दिर में विलसित वटपत्रशायी के श्री चरणों में समर्पित किया करते थे। एक दिन राजसभा में आयोजित शास्त्रार्थ में वटपत्रशायी के आदेश से भाग लेकर विष्णुचित्त ने पुरस्कार जीता। शास्त्रार्थ में आपने यह सिद्ध किया कि लक्ष्मीनारायण ही पर देवता हैं। और उनकी शरण लेना ही हितकर तथा मोक्षदायक है। विष्णुचित्त को उपास्य देव के दर्शन हुए। साक्षात् विष्णु महालक्ष्मी के साथ गरुड़ारूढ़ होकर प्रकट हुए। भगवान के अनुपम सौन्दर्य को देखकर विष्णुचित्त प्रफुल्लित हुए। आपने प्रार्थना की कि वह अनुपम सौन्दर्य सहस्रों, करोड़ों वर्ष शाश्वत रहे। जबकि अन्य आलवारों ने भगवदनुग्रह की याचना की। श्री विष्णुचित्त ने भगवान विष्णु के सौन्दर्य की मंगल कामना की। इसी कारण आप पोरियालवार अर्थात् महालवार विरुद से विभूषित हुए।

पेरियालवार के पद तिरुपल्लाण्डु तथा पेरियालवार तिरुमोली नामक दो संग्रहों में मिलते हैं। ये पद दिव्य प्रबन्धम् के प्रथम भाग में आरम्भ में ही दिये गये हैं। तिरुपल्लाण्डु में 12 पद हैं जिनमें भगवान के अनुपम सौन्दर्य की मंगल-कामना की गई है। तिरुपल्लाण्डु का धार्मिक महत्व होने के कारण वैष्णव भक्तों के घरों में नित्यपाठ किया जाता है। पेरियालवार तिरुमोली में आलवार के 461 पद संग्रहीत हैं जिनमें कृष्ण की बाल लीलाओं का गायन किया गया है। श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव, गोकुल लीला, माखन-चोरी, गोपी-लीला, उपालम्भ, गोचारण, मुरली-माधुरी आदि प्रसंगों का मार्मिक चित्रण हुआ। शैशवकाल की चेष्टाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। आपने "पिल्ल तमिल" कहलाने वाली गीत शैली का प्रणयन कर तमिल साहित्य में नवीन काव्य शैली का सूत्रपात किया। आपके पदों में रामकथा के साथ कृष्ण की वन्दना भी मिलती है।

श्री पेरियालवार से विरचित एक पाशुरम में शिव-केशव का रूप स्पष्ट होता है।

> ताल् शडैयुम् नील्मुडियम् बण्मकुवये शक्करमुम्
> शूऴ्खुम् पोन्नाणुम् तोनुर्सल–शूकुम्
> तिरण्णरुनि पायम् तिरुमलै मेले नैक्कु
> शरण्णुरुवु मोनायं इरतैन्दु।[46]

तात्पर्य यह है कि सुन्दर शीतल झरनों से विलसित परम रमणीय श्री वेंकटाचल पर विराजित श्री स्वामी के सर पर जटायें सुवर्ण मुकुट सुशोभित हैं।

हाथ में परशु, चक्र, कटितट में नागाभरण, सुवर्ण करधनी विलसित हैं। इन सब चिह्नों से हरिहर का स्वरूप सुशोभित है। विशेषता यह है कि जटायें, परशु, नागाभरण आदि हर चिह्न हैं तो स्वर्ण मुकुट, चक्र, स्वर्ण करधनी आदि हरिचिह्न हैं। श्री वेंकटाचलपति दोनों चिह्नों से शिव-केशवाभेद का निरूपण करते हुए एक रूप में सुविराजित हैं।

दिव्य प्रबन्धम् में हरिहरनाथ-तिरुमंगै आल्वार

तिरुमंगै आल्वार "परकाल" के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप सम्प्रदाय में विष्णु का शारंगांश माने जाते हैं। चोल राज्य में "तिरुवाली तिरुनगरी" नामक दिव्य क्षेत्र के पास अवस्थित "तिरुकुरैयलूर" स्थान में कल्लर नामक जंगली पहाड़ी, लूटमार के सहारे जीविका चलाने वाली जाति में आपका जन्म हुआ। आपका पहला नाम 'नीलन' था। 'कलियन', अरुलमारी, 'परकालन' आदि कई नामों से आप विख्यात हुए। आपके पिताजी चोल राजा के यहाँ सेनापति थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् आपको सेनापति का पद मिला। युद्ध-विद्या में आप निपुण थे। शत्रुओं को युद्धभूमि से भगाने में आप सिद्धहस्त थे। 'परकालन" का तात्पर्य शत्रुओं का कालन–यम माना जाता है। आपकी वीरता से प्रसन्न होकर राजा ने आपको तिरुमंगै प्रान्त का सामन्त बना दिया अस्तु, आप आठवीं शती क उत्तरार्ध के माने जाते हैं। युद्ध विशारद होने के साथ-साथ आप सगीत, नृत्य नाटक, काव्य कलाओं में दक्ष थे। आप तमिल और संस्कृत दोनों भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान माने जाते हैं। आपने यौवन में विलासितापूर्ण जीवन बिताया। कहा जाता है कि कुमुदवल्ली नामक वैष्णव कन्या पर मोहित हो आपने विवाह कर लिया। कुमुदवल्ली रूपवती थी। उनकी दो शर्तों के अधीन होकर आपने विवाह किया। पहली शर्त यह थी कि तिरुमंगै को परम वैष्णव भक्त बनना चाहिए। दूसरी शर्त यह थी कि प्रतिदिन 1,008 वैष्णव भक्तों को भोजन कराकर ही स्वयं भोजन करना चाहिए। फलस्वरूप आप तो परम भागवत हुए। किन्तु सरकार का खजाना खाली हो गया। राजा ने क्रोध में आकर आपको जेल में डाल दिया। ऐतिह्य यह है कि कांचीपुरम के एक स्थान पर गड़ी हुई किसी गुप्त सम्पत्ति का आपको पता चला। आपने राजा का कर्ज चुका दिया। कहा जाता है कि इस बीच में आप लूट-मार तक करते थे। पर वैष्णवों को भोजन देना बन्द नहीं किया। एक दिन जंगल में ब्राह्मण-यात्री को लूटा था। किन्तु उस धन को वे उठा न सके। ब्राह्मण से कारण पूछा गया तो उसने कान में मन्त्र कहा। आप भगवान विष्णु स्वयं थे। भक्त के उद्धार के लिए यात्री के रूप में आये थे। उस समय से आलवार के जीवन में महान् परिवर्तन हुआ और परम सात्त्विक भक्त हो गये।

आलवार का युग धार्मिक संघर्ष का था। बौद्ध, जैन और शैव, वैष्णव

आपस में लड़-भिड़ रहे थे। आपने कई धार्मिक चर्चाओं में भाग लेकर अन्य मतावलम्बियों को परास्त किया था। किन्तु साम्प्रदायिकता आप मे नहीं आ पाई थी।

नालायिर दिव्य-प्रबन्धम् में अधिकतर रचनाएं तिरुमंगै आलवार की हैं। आपकी कृतियाँ छः मानी जाती हैं, जो वेदांग के नाम से विख्यात हैं। 1. पेरिय तिरुमोली, 2. तिरुक्कुरुन्तांडकम्, 3. तिरुनेडुन्तांडकम्, 4. तिरुवेलुकूतिरुक्कै, 5. चिरिय तिरुमडल, 6. पेरिय तिरुमडल,।

पेरिय तिरुमोली में 1084 पद हैं। तीर्थयात्रा करते समय दिव्य क्षेत्रों में विलसित भगवान विष्णु के अर्चावतार मूर्तियों की आपने स्तुति की। दार्शनिकता के साथ कृष्ण कथा के मार्मिक प्रसंगों का वर्णन आपके काव्य में देखा जा सकता है।

श्री तिरुमंगै आलवार से विरचित पाशुरम में कहा गया है कि श्री विष्णु के दक्षिण पार्श्व में शिव, नाभि स्थान में ब्रह्मा, और हृदय स्थान में लक्ष्मी हैं।

पिरै तंगु शडै याने वलत्ते वैत्तु
घिरमनै त्वन्नुन्दियिलेण्य मवित्तु
क्कु रैतंगु वेल् तडंगण् तिरुवै मार्विल
कलन्द वर्नाकूणै गिर्बीर् ··· ··· ।[47]

पुराणों में ब्रह्मा नाभि स्थान में और लक्ष्मी हृदय में कहा गया है किन्तु इसमें ब्रह्मा का सन्दर्भ नहीं है। विष्णु के शरीर में कुछ अंश शक्तिधारी तथा कुछ अंश वृषभ वाहन वाले ईश्वर की स्थिति के रूप में माना गया है।

एरुमेरि यिलंगमोण् मकूप्पण् मीर्शशि शंन्दु
उडम्बिलोर् कुरुवान् कोडुत्तान् कुलमाम
गटकेनियान् ··· ··· ··· ।[48]

उपर्युक्त विवरण व उद्धरणों द्वारा विदित होता है कि आलवार सन्त उदार वैष्णव थे जिनके तत्त्वचिन्तन में हरिहराभेद था।

पोयगै आलवार—(सरोयोगी)

कहा जाता है कि आपका जन्म तमिल प्रदेश में कांचीपुरम् के उत्तरभाग में स्थित तिरुवेहा के एक तालाब में कमलपुष्प पर हुआ था। आपको विष्णु के शंख का अवतार माना जाता है। "पोयगै" (तालाब) में पैदा होने के कारण आपका नाम (पोयगै आलवार) पड़ा। आपका जन्म गुरु परम्परा ग्रन्थों के अनुसार 420 ई. पू. माना जाता है। किन्तु कुछ विद्वानों के मत में आप चौथी या पाँचवीं शताब्दी में जीवित रहे। आपने घूम-घूमकर वैष्णव भक्ति का प्रचार किया। आपने कभी दूसरे धर्मों का खण्डन नहीं किया और भक्त कवियों को धार्मिक सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया।

आपकी रचनाएं 'मुदल तिरुवंतादि' के नाम से मिलती हैं। अन्तादि नामक

छन्द में आपकी रचनाएँ हैं। ये स्फुट पद हैं जिनमें कोई कथा नहीं है। आपकी रचनाओं में भक्ति तथा आदेश मिला है। दिव्य प्रबन्धम् के 'इयंपा' विभाग में आपकी रचनायें संकलित हैं। आपने विष्णु के विभिन्न अवतारों के गुण तथा लीलाओं का वर्णन किया है। विशेष रूप से आपने श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन किया है।

तिरुमलनाथ – हरिहरनाथ हैं – पोयगै आलवार

पोयगै आलवार ने हरिहरस्वामी की प्रस्तुति की।

"अरन् नारणन् नामम् आल्विडै पुल्कूर्दि
उरैनूल् मरैयुरै युम् कोयिल् – वरैनीर
करुमम् अ....प्पु अलिप्पुक्कैयुद् वेल्नेमि
उरुव मेरिकार् मेनि येन्रु"

नालायिर दिव्य प्रबन्धम् 5.

अर्थात् एक हर है तो दूसरा नारायण। एक का वाहन बैल है तो दूसरे का गरुड़। एक ने आगमों को प्रसाद किया तो दूसरे ने वेदों को दिया। एक पर्वत पर निवास करता तो दूसरा क्षीर सागर में। एक लय है तो दूसरा स्थितिकारक है। एक शूलधारी है, दूसरा चक्रधारी है। एक अग्निवर्णी है तो दूसरा नीलवर्णी है।

आपका दूसरा पाशुरम इसी परतत्त्व की व्याख्या करता है।

"ए......न् पुल् शूर् न्दान् एयिलेरित्तान् मार्विडन्दान्
पी......न् नि.....ल् मणि वण्णत्तान्---कू...रुपाल
मंङ्गैयान् पूमगलान् वानशडै यान् नील्मुडियान्
गङगैयान् नील्क.....लान् काप्पु।।"

नालायिर दिव्य प्रबन्धम् 74.

अर्थात् एक बैल पर चलते हैं तो दूसरा गरुड़ पर। एक ने त्रिपुरासुर का वध किया तो दूसरे ने हिरण्यकश्यप का वध किया। एक भस्म धारण करता है तो दूसरा नीलाकाश वर्ण वाला है। एक ने पत्नी को अपने देह को अर्ध भाग में रखा है। दूसरे ने वक्षस्थल के कमल में धारण किया। एक लम्बी जटाओं वाला है, दूसरा ऊँचा मुकुट धारण करता है। एक ने गंगा को सर पर बिठाया हुआ है तो दूसरे ने अपने चरण कमलों में रखा हुआ है।

आगे कवि कहता है --

"पोन्तिम....मेनिप्पुरिशडैयम् पुण्णियनुम्
निन्रुलगम् तायनेडुमालुम् -- एन्रुम्
इरुवरङ्गत्तुल् तिरिव रेनुम् ओरुवन्
ओरुवनङगत्तुएन्द मुलन्।"

नालायिर दिव्य प्रबन्धम् 98.

अर्थात् स्वर्णमय देह कान्ति में जटाधारी शिव और विष्णु इस धरती पर अवतरित भिन्न-भिन्न देवता माने जाते हैं। परन्तु अभिन्न हैं। एक में दूसरा निवास करता है।

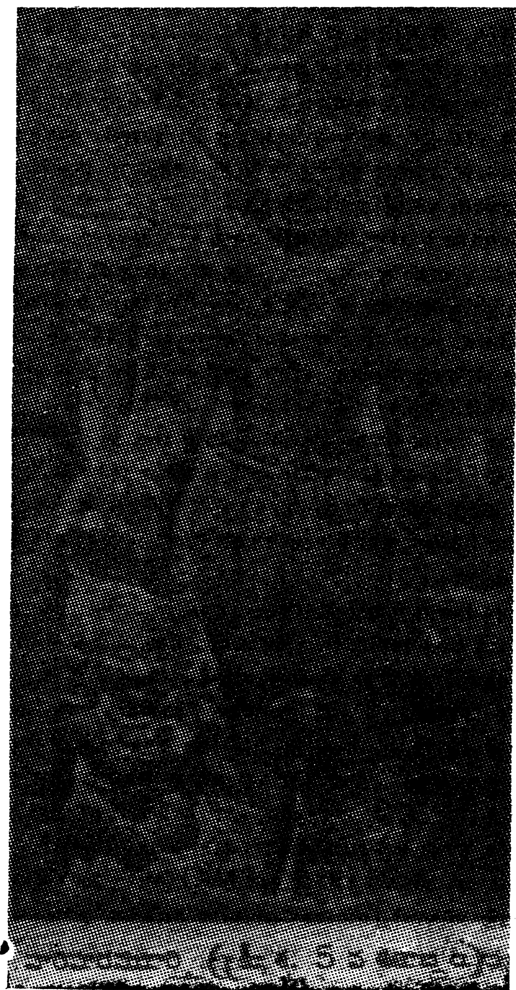
श्री हरिहरनाथ की मूर्तियां व मन्दिर

दार्शनिक दृष्टि से हरिहर भगवान सर्वथा एक है। लीलामात्र के लिए कहीं भगवान हर रूप से उपास्य और हरि रूप से उपासक होते हैं तो कहीं हरि रूप से उपास्य और हर रूप से उपासक होते हैं। उपासना का तत्त्व बतलाने के लिए ही वे परस्पर उपासक उपास्य की लीला करते रहते हैं। वैदिक साहित्य में हरिहर की अभेदता की सिद्धि की गयी है।

अग्नि पुराण में हरिहर की मूर्ति बनाने की प्रक्रिया का वर्णन है। "हरिहर मूर्ति के दाहिने हाथ में शूल तथा ऋषि हैं, तो बायें हाथ में गदा एवं चक्र। शरीर के दाहिने भाग में रुद्र के चिह्न हैं और वाम भाग में केशव के। दाहिने पार्श्व में गौरी तथा वाम पार्श्व में लक्ष्मी विराज रही हैं।[49] मत्स्यपुराण में शिव तथा नारायण के विग्रह के लक्षण वर्णित हुए हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इसी का विवरण मिलता है। परमेश्वर के हाथों में अवस्थित आयुधों के साथ मेलखाने पर भी नारायण के करों में स्थित आयुधों के चिह्न भिन्न लगते हैं। शिल्पशास्त्र में हरिहर मूर्ति के विग्रह के लक्षण वर्णित हुए हैं। हरिहर की मूर्ति शिल्पायित करते हुए विग्रह के दक्षिण भाग में शिवजी को और वाम भाग में विष्णु को रूपायित करना चाहिए। दक्षिण करों में पाश, त्रिशूल तथा वाम करो में शंख, चक्र धारण किया होना चाहिए।

कतिपय विग्रहों में चक्र के स्थान पर शंख रूपायित किया गया है, विष्णु धर्मोत्तरपुराण में कहा गया है कि हाथों में पाश, त्रिशूल, कमल होने चाहिए तथा नन्दी और गरुड़ वाहन विग्रह के दोनों पार्श्वों में रहने चाहिए। हेमचन्द्राचार्य कृत "चतुर्वर्ग–चिन्तामणि" तथा 'रूपमण्डन" में यही विषय कहा गया है। अभिलाषितार्थ चिन्तामणि के अनुसार हरिहर की मूर्ति में परमेश्वर का वरद मुद्रा में त्रिशूल धरने की बात है और नारायण के हृदय में शंख, चक्र या गदा होना विदित है। शिवजी का रूप श्वेत वर्ण में जटमुकुट धारी और सिर पर चन्द्र को धारण करके गजचर्माम्बर धारी होना चाहिए। पैरों में सर्प लिपटे रहने चाहिए। विष्णु का रूप नीलवर्ण में रत्न किरीट धारी, मकर कुण्डल धारण कर पीत वर्ण वाले पीतवर्ण (पीताम्बर धारी) में सुशोभित होना चाहिए। नन्दी और गरुड़वाहन दोनों एक साथ रहने चाहिए। "अंशुमद्भेदागम्" के अनुसार हरिहरमूर्ति वरदमुद्रा में हो और दक्षिण कर में परशु धारण कर वाम कर में विष्णु चिह्न–शंख के साथ कटकमुद्रा में होना चाहिये।

हरिहर की मूर्ति (पांचवीं शती)
इलाहाबाद





हरिहर मूर्ति–राजस्थान (11वीं शर्त

हरिहर की प्राप्त शिला मूर्तियाँ

कुषाणों के शासनकाल से हरिहर की मूर्तियाँ अधिक संख्या में प्राप्त होती हैं। मथुरा की प्रदर्शनशाला में सुरक्षित रखे हुए हरिहर मूर्ति के (विग्रह) शिरोभाग के दक्षिण में जटामुकुट और वामभाग में किरीट स्पष्ट रूप से शिल्पायित है। जटामुकुट भुजाओं पर झूमता है तो किरीट का निचला भाग फूलमालाओं से अलंकृत है।

इलाहाबाद के पुरातत्त्व संग्रहालय में प्राप्त स्तम्भ में हरिहर, वामन, वाराह और विष्णु की मूर्तियाँ शिल्पायित हैं। इनमें हरिहर विग्रह में किरीट तथा जटामकुट एक साथ हैं। वाम कर में शंख तथा दूसरा वाम कर चक्रपुरुष के सर पर रखा हुआ है दक्षिण कर वरद मुद्रा में है तो दूसरा दक्षिण कर गणाचार्य के सिर पर रखा हुआ है। यह शिल्प पाँचवीं शती ई. का माना जाता है।

(पृ. 30 का चित्र दृष्टव्य है)

पुरातत्त्व संग्रहालय में स्थानीय भंगिमा में चतुर्भुज मूर्ति हरिहर का विग्रह है।

भुवनेश्वर में स्थित विठ्लालय में आठवीं शती की मानी जाने वाली हरिहर की मूर्ति है।

उज्जयिनी में आठवीं, नवीं, शताब्दियों का माना जाने वाला हरिहर का विग्रह प्राप्त हुआ है।

गुजरात के विशाल नगर में हरिहर मन्दिर है। इसमें स्थित हरिहर मूर्ति अत्यन्त सुन्दर रूप में है। इस मूर्ति के वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न, यज्ञोपवीत, कटिबन्ध आदि हैं। सिर के दक्षिण भाग में जटामुकुट तथा वामभाग में किरीट सुसज्जित है। फालभाग में त्रिपुण्ड् चन्द्रिकाओं को तिलक विभाजित करता दृष्टिगत होता है। दक्षिण कर में रुद्राक्ष बीज, वामकर्ण में गोलाकार बीज कर्णाभरण बने हुए हैं। चार भुजाओं में जपमाला, त्रिशूल, शंख तथा चक्र सुशोभित हैं। हरिहर मूर्तियों के दोनों पाश्वों में भृंगी-श्रृंगी तथा जय-विजय हैं।

राजस्थान में ओसिया (जोधपुर) के समीप स्थित हरिहरनाथालय में अवस्थित हरिहर मूर्ति में शिल्पकला का चातुर्य प्रदर्शित हुआ है। शिव और केशव सुन्दर रूप में एक शिल्प में रूपायित हुए हैं। हाथों में त्रिशूल, शंख, चक्र, वरद मुद्रा में जपमाला धारण किए हुए हैं। दोनों पाश्वों में नन्दि और गरुड़ वाहन चित्रित हैं। शिव गणाचार्य त्रिशूलधारी हैं।

नवम् शताब्दी के हरिहर का विग्रह बोध गया में प्राप्त हुआ है।

ग्याहरवीं शताब्दी में प्राप्त अनेक विग्रह नई दिल्ली, कलकत्ता के संग्रहालयों में सुरक्षित किये गये हैं।

हरिहर की मूर्तियाँ चतुर्भुज वाले सम्पादक स्थान भंगिमाओं में अवसर प्राप्त होती हैं। परन्तु उड़ीसा में योगासन भंगिमा में आसीन हुए हरिहर मूर्ति का विग्रह प्राप्त हुआ है। अग्नि पुराण में द्वादश कर वाले हरिहर मूर्ति का विग्रह वर्णित हुआ है। हरिशंकर चतुर्मुखी द्वादश कर वाले, त्रिनेत्र वाले वाम पार्श्व में शयन करते हुए और उनकी नाभि से अद्भुत पद्म में चतुर्मुखी ब्रह्मा का पद्मासीन होने का वर्णन मिलता है। दक्षिण कर में त्रिशूल और भाला, वाम कर में गदा और चक्र धारण करने का वर्णन है। दूसरे हाथों में कौन से चिह्न धारण हों इसका कोई प्रस्ताव नहीं' शिव-केशव, गौरी तथा लक्ष्मी सहित होने की बात कही गई है। एक विग्रह में शिव-केशव के शयन को दर्शाना चाहिए। परन्तु ऐसा विग्रह कहीं प्राप्त नहीं हुआ। उपर्युक्त वर्णन के अनुसार द्वादश कर वाले हरिहर मूर्ति का विग्रह अजमेर में स्थित राजस्थान की प्रदर्शनशाला में सुरक्षित है। परन्तु यह हरिहर मूर्ति शयन मुद्रा में न होकर गरुड़ वाहन पर शिल्पायित है।[50]

केरल के त्रिवेन्द्रम में अनन्त पद्मनाभ स्वामी के आलय के प्रांगण शिल्पों में हरिहर प्रतिमा है तथा उसी आवरण में एक छोटे से मन्दिर में हरिहर की अर्चना मूर्ति है, जिसकी पूजा आराधना आज भी होती है। हरिहरनाथपुरम् या हरिहरपुरम् या कुडलूरु नामक शहर तुंगभद्रा नदी तथा हरिद्रा नदी के संगम स्थान पर है। चित्र द्रष्टव्य है। यह शहर पद्मपुराण में वर्णित प्रसिद्ध तीर्थयात्रा स्थल है। श्री चैतन्यस्वामी के शिष्य नित्यानन्द ने इस शहर के दर्शन किये। हरिहर क्षेत्र नामान्तर से विख्यात सोनपुर (बिहार) गंगागंडक नदी के संगम स्थान में स्थित एक शहर है। वराह पुराण में वर्णित यह प्रसिद्ध पुण्यतीर्थ है।[51] रामेश्वरम् के श्री रामलिंगेश्वर स्वामी जीते-जागते प्रमाण हैं। श्रीरामचन्द्र की शिवपूजा तथा शक्ति पूजा रामायणकाल की हरिहरोपासना का प्रमाण है। इस प्रकार हरिहरदेव की उपासना की एक परम्परा ही है।

हरिहर भगवान भावात्मक व काल्पनिक देवता नहीं हैं। हरिहर मूर्ति की पूजा आराधना आज भी होती है। "कहा जाता है कि आज नेल्लूर में पेन्ना नदी के तट पर जहाँ रंगनाथ का मन्दिर है वहाँ तिक्कना के समय में 12 वीं शती में हरिहरनाथ का मंदिर या और उसके खंडित होने के बाद रंगनाथ मन्दिर का निर्माण किया गया। लेकिन कुछ विद्वान इसे नहीं मानते।"[52] किंवदंती यह भी है कि नेल्लूर के पास पेन्ना नदी दो शाखाओं में बँट गयी और शहर के दक्षिण में जो शाखा बहती थी, उसके किनारे हरिहरनाथ का मन्दिर था जो अब खंडित हो गया है और नदी भी सूख गयी है[52] पूर्वी गोदावरी जिले के द्राक्षाराम के एक शिलालेख से यह विदित होता है कि "सप्त गोदावरी–संगम" के पास हरिहरनाथ का मन्दिर था।[53] आन्ध्र प्रान्त के 'भैरवुनिकोन' में हरिहर मूर्ति विद्यमान है।[54]



हरिहर मूर्ति



श्री हरिहर स्वामी (कर्नाटक)

पल्लवराजा नरसिंह ने नेल्लूर के उदयगिरि मण्डल में सीतारामपुरम् के पूर्वोत्तर दिशा में 7, 8 मील दूरी पर 'भैरवुनिकोना' में बौद्ध वास्तुशिल्प शैली के अनुसार सात शिवलिंगालयों का निर्माण करवाया। सम्प्रति यह प्रान्त नये ओंगोल जिला के अन्तर्गत हो गया है। इन गुहालयों के सम्मुख, एक झरने के तट पर एक बड़ी शिला खड़ी है, जिसके पार्श्व में हरिहरनाथ की अर्द्धमूर्ति शिल्पायित हुई है। यह स्वामी अष्टभुजाओं से सुशोभित हैं। दोनों स्वामियों के शस्त्र दोनों पार्श्वों में सुशोभित हो रहे हैं। इस प्रकार एक में समन्वित हो दोनों स्वामी एक साथ दर्शन दे रहे हैं।[55] मैसूर नगर के समीप हेलेबिड के होयसलेश्वर मन्दिर के गोपुर शिल्पों में हरिहर मूर्ति है। (चित्र द्रष्टव्य है) तथा बेलूर के चेन्नकेशव स्वामी के मन्दिर के शिल्पों में भी हरिहर मूर्ति है।

पश्चिम चालुक्य राजाओं से सम्बन्धित बादामी की गुफाओं में और पूना तथा नागपूर में हरिहर विग्रह प्राप्त हुए हैं। आन्ध्रप्रदेश में स्थित अलंपूर देवालय में तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दी से सम्बन्धित हरिहर मूर्ति का विग्रह नृसिंहाकृति में है। अनन्तपुर जिला (आन्ध्रप्रदेश) में स्थित ताडिपत्रि के रामलिंगेश्वरालय की हरिहर मूर्ति का विग्रह शिल्प शास्त्र में वर्णित विग्रह लक्षणों के विरुद्ध प्राप्त हुआ है। शिल्पशास्त्र के अनुसार दक्षिण पार्श्व में शिवजी वाम पार्श्व में केशव शिल्पायित होने चाहिए। किन्तु यहाँ की हरिहर मूर्ति के विग्रह के दक्षिण भाग में केशव और वाम भाग में शिव शिल्पायित हुए और जटामुकुट, किरीट, करों में शंख, गदा, त्रिशूल तथा परशु यथाक्रम हैं। श्री शैलम् (कर्नूल जिला आन्ध्रप्रदेश) में समभंगस्थानक मूर्ति में हरिहर का विग्रह शिल्पायित हुआ है। दक्षिण कर में परशु है और अभयमुद्रा सूचित करता है। वाम कर में चक्र है और कट्यावलम्बित मुद्रा को सूचित करता है। हाथों में स्थित शस्त्रों के समुचित स्थान में रहने पर भी कट्यावलम्बित मुद्रा सूचित करना शिल्पशास्त्र के विरुद्ध है। कलियुग के देवता के रूप में वर्णित तिरुपति के बालाजी की स्तुति करते हुए पेरियालवार ने आपको हरिहरनाथ माना। शिवकेशव के सम्मिलित स्वरूप हरिहर मूर्ति का वर्णन आपने इस प्रकार किया। एक तरफ जटामुकुट और दूसरी तरफ किरीट है। हाथों में कुल्हाड़ा, चक्र, सर्प तथा सोने का यज्ञोपवीत धारण किये हुए श्री वेंकटेश्वर सुशोभित हैं। तिरुमंगैयालवार ने भी इसकी पुष्टि की है। आपके अनुसार विष्णु के दक्षिण भाग में शिवजी वास करते हैं। लक्ष्मीदेवी भी विष्णु के दक्षिणभाग में श्रीवत्स चिह्न के रूप में अवस्थित हैं।

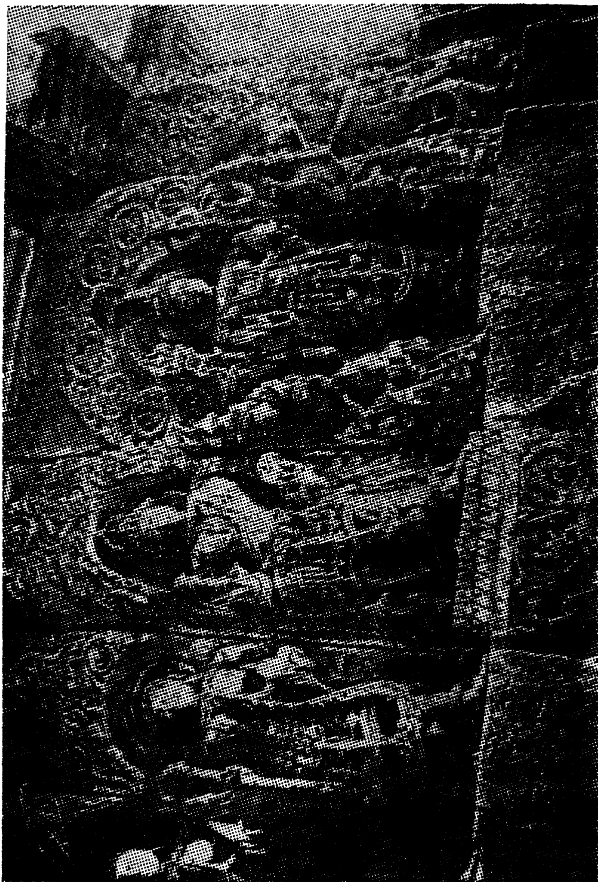
प्रथम शती ईसवी में भारत वर्ष का शासन करने वाले, विदेशी राजा-पार्थियन, सिथियन, कुषाण शासकों ने विभिन्न मतों का समान रूप से महत्त्व देते हुए अपने शिल्प तथा सिक्कों में विविध देवताओं के रूप अंकित करवाकर अपने

धार्मिक समभाव को प्रकट किया था। पल्लव राजाओं के शासनकाल से सम्बन्धित (चौथी, पाँचवीं शताब्दी) हरिहर मूर्ति का विग्रह पिल्लैय्यारपट्टी रामनाथपुरम् जिला के गुहालय में है। ई. सातवीं शती से सम्बन्धित पल्लव तथा पाण्ड्य राजाओं के शासनकालीन हरिहर मूर्ति के विग्रह तमिलनाडु में प्राप्त हुए। महाबलिपुरम् में स्थित आदिवराह गुहालय में नमक्कल (सेलम् जिला) में हरिहर मूर्तियाँ हैं। चोल राजाओं के शासनकालीन हरिहर के विग्रह तिरुपेरुंबूर तंजाऊर, गंगैकोंडा, चोलपुर में प्राप्त हैं। तंजाऊर के शंकरनारायण मन्दिर में लिंगाकार में श्री शंकरनारायण हैं ही। वैकुण्ठ एकादशी पर शिव-केशव के रूप में उस शिवलिंग को सजाते हैं। पृ. 42 का चित्र द्रष्टव्य है। उसके पिछवाड़े में श्री हरिहर की शिलामूर्ति है। पृ. 43 का चित्र द्रष्टव्य है। कहा जाता है कि मथुरा के श्रीकृष्ण जन्म स्थान प्रांगण में स्थित केशव जी को शिवरात्रि पर इसी प्रकार शिव के रूप में अलंकृत किया जाता है। शैव वैष्णव मतों में समरसता के प्रमाण स्वरूप ई. सन्. 1776 में महाराजा कृष्णचन्द्र ने गंगवास् (बंगाल समीप) में हरिहर मूर्ति को प्रस्थापित किया था। भारतवर्ष के हिन्दू धर्म के सम्प्रदाय कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा जैसे सुदूर प्रान्तों में प्रचारित हुए, इतिहास इसका साक्ष्य देता है। ई. सन् सातवीं शती से सम्बन्धित हरिहर के विग्रह कम्बोडिया में प्राप्त हुए।

उपर्युक्त हरिहर मूर्ति के शिल्पकला खण्डों से विदित होता है कि समस्त भारत में कुषाण के शासन काल से श्री हरिहर की उपासना बहुत प्रचार में थी। इसी कारण भारत के विविध प्रान्तों में हरिहरनाथ के मन्दिर व शिल्प दिखायी देते हैं। काव्यादि द्वारा दक्षिण भारत में इस सम्प्रदाय का बहुत प्रचार हुआ। उत्तर भारत में भी हरिहर उपासना का प्रचुर मात्रा में प्रचार हुआ। अर्थात् तत्कालीन कवि पण्डितों ने अपनी साहित्यिक आत्माभिव्यक्ति के साथ सामाजिक दृष्टि और लोकमंगल की कामना हेतु अपने कर्तव्य का निर्वाह किया था। इसी तत्त्व के प्रचार में शिल्पियों ने भी निर्गुण, निराकार हरिहर भगवान को सगुण साकार रूप में सुन्दर शिल्पों में प्रस्तुत कर उपासना योग्य बनाया। सर्वेश्वर के अभेदतत्त्व व अद्वैत भावना का प्रचार करते हुए समस्त भारत को एकसूत्र में बाँधने का आप लोगों ने प्रयास किया था।

संदर्भ सूची

1. छान्दोग्योपनिषद् 6–21
2. नारायणोपनिषद् 1–2
3. श्वेताश्वतरोपनिषद् 1–10; 2–2
4. महोपनिषद् 1





हलेबिड़—कर्नाटक
होयसलेश्वर मन्दिर (गोपुर शिल्प)

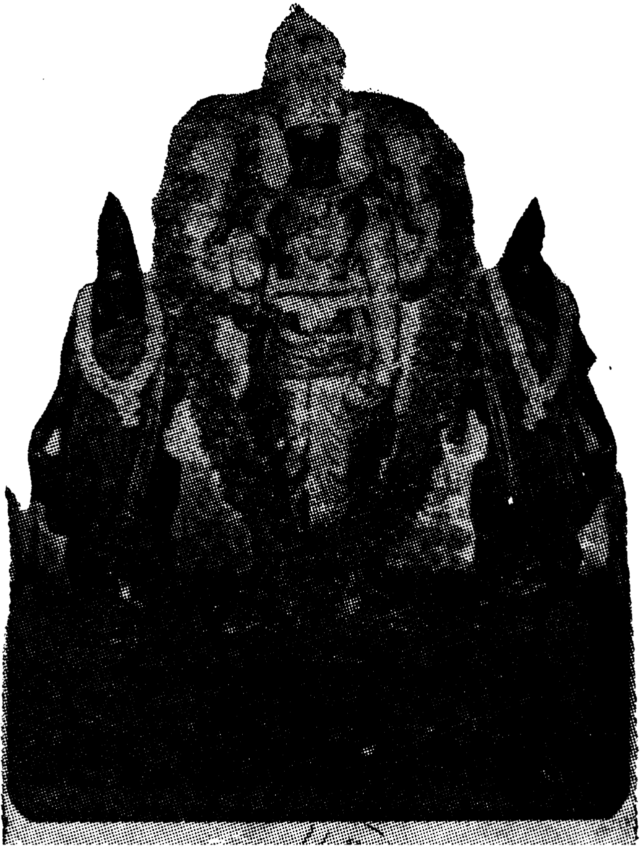
5. अथर्व शिरोपनिषद्
6. कैवल्योपनिषद् 8
7. ब्रह्मोपनिषद्
8. नारायणीय याज्ञिक्युपनिषद् 23
9. महोपनिषद्
10. नारायणीय याज्ञिक्युपनिषद् 68
11. अथर्व शिरोपनिषद् 2, 3
12. नारायणोपनिषद् 2
13. शुकरहस्योपनिषद् 5
14. छान्दोग्योपनिषद् 6–2–3
15. मुण्डकोपनिषद् 1–1–7
16. मुद्गलोपनिषद्
17. पाशुपत ब्रह्मोपनिषद्
18. तेजबिन्दूपनिषद् 5–55
19. जे. एन. फर्कुहर–एन आउटलाइन आफ रेलिजियस लिटरेचर आफ इण्डिया, पृ. 180
20. वही–पृ. 197
21. वही–पृ. 180
22. वही–पृ. 180
23. कल्याणं–शिव पुराण अंक, पृ. 662
24. वही–पृ. 8
25. पद्म पुराण–पाताल खण्ड 28/21–2
26. श्रीमद्भागवत् 4/7/50–54
27. विष्णु पुराण 1/2/1–5
28. शिव पुराण वा. सं. पू. खं. अ. 19, 20
29. कुमारसम्भवम् 2–4
30. वही 2–6
31. रघुवंश 10–16
32. रघुवंश 10–7
33. रघुवंश 10–8
34. कुमारसम्भवम् 6–21
35. वही 6–22
36. वही 6–23
37. कुमारसम्भवम् 6–44

38. मद्रास–सरकारी ओरियण्टल मानिस्किप्ट्स सिरीज 25, टी. चन्द्रशेखर से सम्पादित, मद्रास–1954
39. हरिहराद्वैत भूषणम् 1–1
40. हरिहराद्वैत भूषणम् 1–3
41 हरिहरनामावली स्त्रोत्रम्–रंगाचार्य विरचित हस्तलिखित प्रति सं. 23128, सरस्वती महल ; ग्रन्थालय, तन्जाऊर, तमिलनाडु
42. वही
43. हरिहरस्तवः ब्रह्मा विरचित–हस्तलिखित प्रति संख्या 23130, सरस्वती महल, ग्रंथालय, तंजाऊर, तमिलनाडु
44. हरिहरस्त्रोत्रम्–धर्मराजा विरचित–हस्तलिखित प्रति संख्या 23135, सरस्वती महल, ग्रन्थालय, तंजाऊर, तमिलनाडु
45. हरिहरस्त्रोत्रम्–अज्ञातकवि विरचित–हस्तलिखित प्रति संख्या 23136, सरस्वती महल, ग्रन्थालय, तंजाऊर, तमिलनाडु
46. आल्वारुल मंगालाशासन पाशुरमुलु, पृ. 37
47. पेरियतिरुमोलि 3–4–9
48. पेरियतिरुमोलि 9–10–4
49. अग्निपुराण 49–25–28
50. सप्तगिरि तेलुगु मासिक जुलाई 1989, श्री नागाभट्ल मार्कण्डेय शर्मा, लेख
51. कवित्रयमु तिक्कना–डॉ. नंडूरि रामकृष्णमाचार्य, पृ. 40
52. कवित्रयमु तिक्कना–डॉ. नंडूरि रामकृष्णमाचार्य, पृ. 45 और तिक्कनाभारतमु कर्णपर्वमु, भूमिका–पृ. 72
श्री मरुवूरु कोदण्डरामरेड्डी–आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकादमी, हैदराबाद
53. श्री चागंटि शेषय्या–आन्ध्रकवि तरंगिणी भाग–2, पृ. 248
54. विज्ञानसर्वस्वमु ....., पृ. 561
55. तिक्कना भारतमु–कर्णपर्वमु (तेलुगु) अवतारिका, पृ. 70 आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकादमी, हैदराबाद (1972)

– – – –



शंकरनारायण—तंजाऊर



शंकरनारायण–तंजाऊर

2

तेलुगु तथा हिन्दी में श्री हरिहरोपासना

धर्माद्वैत साधक-भक्त कवि

दक्षिणापथ की धार्मिक परिस्थिति बारहवीं शताब्दी में भयंकर ताण्डवनृत्य करती दिखाई देती है। शैव सम्प्रदाय के अति प्राचीन होने पर भी वीर-शैव सम्प्रदाय झंझामारुत की तरह व्याप्त होकर अन्यान्य-सम्प्रदायों का मटियामेट करने को उद्यत था। इस साम्प्रदायिक आन्दोलन के मूलपुरुष बसवेश्वर ने कन्नड प्रान्त को केन्द्र बनाकर जैन-बौद्ध आदि अवैदिक धर्मों का उन्मूलन कर दिया। मल्लिकार्जुन पण्डित आदि निष्ठा-गरिष्ठ ब्राह्मण से लेकर अन्त्यजों तक समस्त जनता ने वीरशैव सम्प्रदाय को अपनाया। प्रतापरुद्र आदि चक्रवर्ती राजा लोगों ने इसका शिरसावहन किया। अर्थात् वह वीरशैव की व्याप्ति का विजृम्भण काल था, जिसके आगे अद्वैत आदि अन्य सम्प्रदायों के अस्तित्व का प्रश्न नहीं था। इस प्रकार वीरशैव की जैत्र-यात्रा विराट रूप धारण कर सबका अन्त देखने को संसिद्ध हुई। जैन-बौद्ध धर्म परास्त हुए। किसी को कोई आपत्ति नहीं हुई, क्योंकि वे अवैदिक, नास्तिक तथा भारतीय परम्परा और संस्कृति के प्रतिकूल थे। कालान्तर में वे संस्कृति की परम्परा में समाहित किये गये, और बुद्ध को भी एक अवतार मान लिया गया। यह वैदिक धर्म की सुहृदता, मानवीयता, सहनशीलता का परिचायक है। किन्तु ऐसा समन्वय बारहवीं शती में सम्भव नहीं था।

उत्तर भारत में बारहवीं शती की धार्मिक स्थिति कुछ इसी प्रकार की थी किन्तु रूप कुछ और था। ठीक इसी समय, उत्तर में अहिन्दू, अवैदिक अत्याचारियों के आक्रमण हो रहे थे। उन्होंने खड्ग के बल पर राज्य स्थापना ही नहीं तथापि विधर्म की स्थापना की। उत्तर में दो विरुद्ध धर्म-वैदिक धर्म और इस्लाम में संघर्ष था। यह सहज है कि कोई अपने मातृधर्म को त्याग कर अपने स्वभाव तथा परम्परा के विपरीत धर्म को स्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु दक्षिण में ऐसी स्थिति नहीं थी। शैव, वीरशैव, अद्वैत, वैष्णव आदि सम्प्रदाय वैदिक धर्म से ही निसृत थे। उन सबका सामान्य सिद्धान्त जीव-ब्रह्मैक्य के चिन्तन से ही

सम्बन्धित था। केवल उस एकता में तर-तम भेद थे। श्री शंकराचार्य के ज्ञान प्रधान नीरस अद्वैत को भक्ति पथ के सब सम्प्रदायों ने सक्रिय रूप प्रदान किया। वह तत्कालीन जनता की माँग थी। शैव-वैष्णव धर्म भक्ति के कारण आकर्षक हुए।

जैसे पहले विचार किया गया है कि आध्यात्मिकता के अभाव में धर्म व सम्प्रदाय में काम, क्रोध, लोभ आदि विकार उत्पन्न होते हैं, जो ज्ञान, भक्ति, वैराग्य के क्षेत्र में प्रधानत: धार्मिक क्षेत्र में अवांछित हैं। व्यक्ति के दोष-विकार जब सामूहिक हो जाते हैं तो वह सारे समाज को ध्वस्त कर देने में समर्थ हो जाते हैं। सिद्धान्त पक्ष में जैसा भी हो बसवेश्वर के हाथों में वह अतिवाद बन गया और उसने अत्याचार का रूप धारण कर लिया। उन्होंने अवैदिको की तरह ब्राह्मण निन्दा शुरू की। शिव से परे और किसी को जो मानता है उनकी जीभ काटकर मिर्च व चूना लगाने के लिए संसिद्ध थे। कुछ विद्वानों का कहना है कि ब्राह्मण-निन्दा कुल द्वेष के कारण हुई थी। ऐसी बात नहीं है तब के ब्राह्मण अद्वैती थे। यदि ऐसा ही होता तो वीरशैवों में चातुर्वर्ण्यव्यवस्था न रह जाती। वीर-शैवों में वर्णाश्रम धर्म भी है तथा श्रीपतिपंडित, पंडिताराध्य, मंचेना आदि निष्ठा-गरिष्ठ ब्राह्मण भी वीर-शैव थे। वीर-शैव में ब्राह्मण-निन्दा कुल द्वेष के कारण हुई है, यह तो आधुनिकों की भ्रान्ति है।[1]

वीर-शैव का पहला दोष ब्राह्मण निन्दा और दूसरा अद्वैत निन्दा है जो वीरशैव के पतन के प्रधान कारण बने। जैसा पहले विचार किया गया है कि कारण कुछ भी रहा हो वीरशैवों ने ब्राह्मणों की निन्दा की जो सहज ही सात्त्विक एवं तात्त्विक मनुष्य होते हैं। अध्यात्म तत्त्व पर चिन्तन करने वालों की निन्दा करने से जनता में अपने सिद्धान्त के प्रति आदर तो बढ़ता नहीं अपितु विमुखता बढ़ने लगती है। धार्मिक दृष्टि से निन्दा करने की प्रवृत्ति ही गर्हित है। उन दोनों में एकैक प्रामाणिक शास्त्रीय सिद्धान्त अद्वैत का था, जिसका मूल हिलाने के लिए वीरशैवों ने आक्रमण किया। शिव-केशव एक जो कहता है वह अन्त्यज कहा गया और 'हरिहर' भेद न मानने वाला पतित कहा गया। इसी प्रकार अनेकानेक रूपों में अद्वैत निन्दा होने लगी। और तीसरा विकार खड्ग धारण था। सम्प्रदाय के प्रचार के लिए विरोधियों को मौत के घाट उतार दिया जाता था। बसवपुराण में बसवेश्वर के विवाह प्रसंग में दो लाख खड्गधारी वीर माहेश्वर प्रांगण में संसिद्ध रखे, गये। वीरशैव में यदि कोई धर्म प्रचार के लिए चोरी करे व हत्या करे तो कोई पाप नहीं माना जाता। इसने उसी प्रकार का रूप धारण किया जैसे मुसलमानों ने स्वधर्म प्रचार के लिए काफिरों का सर्वनाश करना पुनीत कर्तव्य माना।

इस प्रकार वीरशैवों ने अनेक शताब्दियों के तपोबल से निर्मित प्रशान्त वातावरण को राग-द्वेष से कलुषित कर खलबली मचा रखी थी। और उनकी

विनाशकारी प्रवृत्ति अभी-अभी वेद निसृत कुसुमित-सात्त्विक अहिंसात्मक वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय की ओर जा रही थी। अद्वैत के दाँत तोड़ वैष्णवता की ओर बढ़ने को ही थी। पूरा धार्मिक अन्धकार मचा हुआ था। धार्मिक प्रकोप के कारण आतंक फैला हुआ था। साम्प्रदायिक वैमनस्य के कारण समाज दिशाहीन था और मूढ़ विश्वासों का बोलबाला था।

श्री हरिहरोपासना-समय की माँग

गजनी मुहम्मद ने ई. सन्. 1026 जनवरी में गुजरात में स्थित सोमनाथ मन्दिर पर आक्रमण किया। और कांचनमणि रत्न राशियों को लूटा। शहाबुद्दीन गोरी ने ई. सन्. 1192 में स्थानेश्वर युद्ध में पृथ्वीराज को जीतकर अजमेर राज्य को पदाक्रान्त किया। उसके सेनापति ने विश्व विख्यात नालन्दा विश्वविद्यालय के ग्रंथरत्न भण्डार का विध्वंस किया। मुसलमानों ने वंगदेश के राजा लक्ष्मण सेन को परास्त कर ई. सन् 1199 में पूर्व की ओर कूच किया। अनतिकाल में उत्तरापथ को जीत कर दक्षिणापथ की ओर इस्लाम संस्कृति के खड्ग ने अभियान किया। दुर्भाग्य की बात यह है कि हिन्दूधर्म इन दिनों में जाति भेद, बहुदेवोपासना आदि आन्तरिक दोषों से खोखला बना जा रहा था। सामाजिक, राजनैतिक तथा वैयक्तिक जीवन भ्रष्ट हुआ जा रहा था। इसी समय शैवमत ने प्रबल होकर एकेश्वरोपासना का प्रतिपादन कर जाति बन्धन को रोकने की चेष्टा की। शिव ही परमपिता हैं। शिवभक्त सब सहोदर मात्र हैं। इस प्रकार जाति भेद को मिटाने का प्रयत्न किया गया। इस प्रयास से इस्लाम संस्कृति के विन्ध्याचल को पार करके दक्षिणापथ की ओर बढ़ने वाले कदमों को रोक लिया। हर हर महादेव ! अश्शरभ शरभ ! कहते हुए त्रिशूल एवं खड्ग धारण कर वीरावेश पूरित हो वीरशैवों ने महान् उद्यम का प्रवर्तन किया। समाज को एकात्मता के सूत्र में बाँध रखने की भरसक चेष्टा की। दूसरी ओर दक्षिण में शैव-वैष्णवों में कलहानल प्रज्वलित था। इसमें राष्ट्रीय शक्ति का हनन हुआ। समन्वयकारी प्रवृत्ति से सम्पन्न विद्वानों ने निर्माणात्मक योजना को लेकर—समाज को संकट से मुक्त करने का तरुणोपाय सोचा। शिवकेशव की अभेदता की सिद्धि कर समस्त मानवकोटि में नहीं, चराचर जीवकोटि में उस परमतत्त्व के दर्शन की लालसा जगाई। कविकर्म के इस सत् प्रयत्न में अनेक कविजन ने अपनी कमनीय काव्यामृत प्रवाह द्वारा तत्त्वरूप में स्थित हरिहर भगवान को सरस उपादेय बनाकर भक्तजन को सुलभ बनाया। अवैदिक होकर भी समाज को दुस्थिति से तारने वाले हरिहर नाथ स्वामी हुए। इस समन्वय सूत्र के बीज आल्वार साहित्य में प्राप्त होते हैं, जो मूलतः वैष्णव होते हुए भी अभेदता तथा अद्वैततत्त्व को समाहित किये हुए थे। द्रविड़ (तमिळ) का भक्ति काव्य इस दृष्टि से उपजीव्य काव्य बन जाता है।

आदिकवि नन्नया

नन्नया तेलुगु के आदि कवि माने जाते हैं। तेलुगु भाषा को उन्होंने व्यवस्थित रूप दिया। तेलुगु का महाभारत क्या धार्मिक, क्या सामाजिक, क्या साहित्यिक सब दृष्टियों में महाभारत है। महाभारत के आंध्रीकरण से आन्ध्र-जनता के समक्ष वैदिक धर्म के आदर्श को सुष्ठुरूप से प्रस्तुत किया।[2] नन्नया महाकवि तेलुगु भाषा साहित्य के उद्धारक श्री राजराजनरेन्द्र (1002–1061 ई. सन्) के शासनकाल में जीवित थे।

तेलुगु साहित्य में वैदिक भक्ति का आरम्भ महाभारत (नन्नया) से ही होता है और साथ-साथ कृष्ण भक्ति का आदि-ग्रंथ इसे मान सकते है। क्योंकि श्रीकृष्णचरित का वर्णन प्रथमतः इसी में हुआ। कृष्ण महाभारत के प्रधान पात्रों में माने जाते हैं। इसमें कृष्ण भक्तवत्सल, आश्रित पक्षपाती तथा योगेश्वर के रूप में दर्शन देते हैं। शिशुपाल-वध, द्रौपदी को अक्षयवस्त्र-दान, विराट रूप प्रदर्शन तथा गीतोपदेश आदि में श्रीकृष्ण-लीला पुरुषोत्तम के रूप में अवतरित हुए हैं। महाभारत के लौकिक एवं अलौकिक रस के अद्भुत समन्वय स्वरूप हैं, जिनमें भक्ति के साथ कर्म और ज्ञान का भी उपदेशक रूप प्राप्त होता है। अकर्मण्यता तथा कोरे ज्ञान की निन्दा करते हुए कृष्ण ने निष्काम भक्ति का धर्मोपदेश दिया है। निष्काम कर्म और परमज्ञान से भक्ति के साथ समन्वय का नन्नया केवल वैदिक भक्ति के प्रवर्तक न होकर कृष्ण भक्ति के भी प्रतिष्ठापक हुए। तेलुगु में कृष्ण भक्ति का आरम्भ यहीं से होता है

महाकवि तिक्कना

दक्षिणापथ की इस संकट की वेला में धर्म सम्मूढ़ता तथा साम्प्रदायिक रूढ़ियों के अन्धकार में ज्योति स्वरूप पुनः अद्वैततत्त्व तथा वैदिक परम्परा की स्थापना करने वाले महानुभाव तिक्कना का आविर्भाव आन्ध्र में हुआ। उसी प्रकार कर्नाटक प्रान्त में विद्यारण्यस्वामी का आविर्भाव हुआ। आन्ध्र कर्नाटक प्रान्तों में आध्यात्मभम्व के निर्माण में इन दो महापुरुषों का अद्वितीय योगदान है। श्रीशंकराचार्य द्वारा स्थापित अद्वैत को शैव तथा वीर-शैव ने समाप्त कर दिया। तिक्कना तथा विद्यारण्यस्वामी ने अपनी तपोनिष्ठा के बल से पुनः अद्वैत की स्थापना कर देश की रक्षा की। तिक्कना को महाकवि मात्र मानना एकांगी दृष्टिकोण होगा। इसी प्रकार विद्यारण्य स्वामी को मुसलमान राज्य विरोध में प्रस्थापित विजयनगर राज्य के स्थापक अथवा प्रतिष्ठित मंत्री मात्र मानना अस्वस्थ परिकल्पना हो जाती है। तिक्कना को भी महाभारत कर्ता के रूप में व राजा मनुमसिद्धि के मंत्री-मात्र मानना एकांगी दृष्टिकोण है। आपका जीवनकाल 1210–1290 ई. सन्. माना जाता है।

नेल्लूर राज्य का शासक मनुमसिद्धि के यहाँ तिक्कना मंत्री पद पर सुप्रतिष्ठित थे। आपके पूर्वज चोल वंश के राजाओं के मन्त्री तथा सेनापति के पदों में विराजमान थे। आपका चचेरा भाई खड्ग तिक्कना परमवीर और सेनापति थे। आपके पिता कोम्मनामात्य भी किसी प्रमुख राजनैतिक पद पर आसीन थे। ये नियोगी ब्राह्मण थे, जो अपने नाम के साथ 'अमात्य' जोड़ लेते थे। तिक्कनामात्य कुशल राजनीतिज्ञ, महाकवि तथा लोकनायक हुए। यजनकर आप "सोमयाजी" कहलाये। संस्कृत तथा तेलुगु में समान रूप में काव्य रचना कर आप "उभयकविमित्र" कहलाए।

तिक्कना ने कवि-पण्डितों का समादर किया। दान-दक्षिणा, अग्रहार प्रदान कर कवि पोषण किया। पण्डितों को बिरुदावली से सम्मानित किया। आप कवि गुरु हुए। 'कवि ब्रह्म' कहलाये। आपकी शिष्य परम्परा में अनेक कवि पण्डित हुए। तिक्कना समर्थ मन्त्री ही नहीं राजनीति के धुरन्धर विद्वान हुए। आपके राजा मनुमसिद्धि एक बार अक्कना, बय्यन्ना नामक वीरों के द्वारा पदभ्रष्ट हुए। तब तिक्कना ने काकतीय सम्राट गणपतिदेव से भेंट कर आपकी सहायता लेकर शत्रु को परास्त कर अपने राजा को राज्य दिलाया। गणपतिदेव चक्रवर्ति को कवि महोदय ने महाभारत की रचना सुनाकर प्रसन्न कर लिया। संकट की बेला में राजाओं को सचेत कर एकता के सूत्र में बांध रखने वाले क्रांतिदर्शी कवियों की समन्वय चेतना स्तुत्य है। शायद ही किसी देश के इतिहास में किसी राजा ने अपने जीते हुए राज्य को मित्र को सौंप दिया हो। कवि कर्म का तिक्कना तथा राजधर्म का गणपतिदेव ने अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया।

तिक्कना का स्थान महाकवि शब्द से अतीत है क्योंकि काकतीय सार्वभौम गणपतिदेव चक्रवर्ति विनम्र होकर नतमस्तक हो जाता है तो साधारण जनता उनकी पूजा ही करती रही होगी। इस प्रकार तिक्कना धर्मगुरु के रूप में प्रतिष्ठित थे। पाल्कुरिकि सोमनाथ ने जिस वीरशैव सम्प्रदाय के लिए प्रचार के लिए ठाना था, तिक्कना ने उसके विद्वेष से समाज की रक्षाकर उस आन्दोलन के विरोध में झण्डा खड़ा किया। वीर-शैव और हरिहराद्वैत दोनों वैदिक परम्परा के हैं। पाल्कुरिकि सोमनाथ यदि परशुराम कहलाएँगे तो तिक्कना मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र !

तिक्कना की साहित्य साधना, परमार्थ साधना का एक साधन मात्र है। कारण-जन्म महर्षि जन लोकोपकार करते हैं। उनका प्रत्येक कार्य गत्यात्मक तथा निर्माणात्मक होता है। तिक्कना की प्रथम कृति निर्वचनोत्तर रामायण है। दूसरा महाभारत है। नन्नया के बाद फिर महाभारत (काव्य) को छूने का अधिकार तो दूर रहा सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक परिस्थितियों का सामना करने का

साहस किसे था। अपनी असाधारण प्रतिभा के कारण तिक्कना ने परिस्थितियों को जीतकर अपने अनुकूल वातावरण का निर्माण कर लिया। निर्वचनोत्तर रामायण में उन्होंने अपने को शैव बतलाया। महाभारत के रचनाकाल तक उनका हृदय परिणत हुआ और साहित्य-साधना को यज्ञ रूप तथा जनता की स्वीकृति को यज्ञफल मानकर उन्होंने लोकसंग्रह प्रवृत्ति से आगे बढ़, लोक कल्याण किया। यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने शिव केशव के अभेद तत्त्व को अपनी रचनाओं के द्वारा प्रस्तुत कर आवेश पूरित नन्नया ने आदि–सभापर्व और अरण्यपर्व में तीन अनुच्छेद तक आन्ध्रानुवाद प्रस्तुत कर राजराजनरेन्द्र को समर्पित किया। तिक्कना ने विराट-पर्व से लेकर अन्तिम पन्द्रह पर्वों का अनुवाद कर श्रीहरिहरनाथ को समर्पित किया। अरण्यपर्व के शेषांश की पूर्ति एर्राप्रगड ने की। इन तीन महाकवियों के सम्मिलित प्रयत्न से महाभारत का अनुवाद कार्य पूर्ण हुआ। ये तीन महानुभाव कवित्रय नाम से प्रसिद्ध हैं।

समय के अनुसार तिक्कना ने समन्वय प्रस्तुत कर देश और धर्म की रक्षा की। कहना न होगा कि आगे चलकर महाकवि पोतनामात्य ने इसी कार्य को परिष्कृत तथा सुव्यवस्थित कर आध्यात्मिकता की प्रधानता से जनता के हृदय के कलुष का पूर्ण परिष्कार किया। पोतना के सन्दर्भ में हरिहर तत्त्व की चर्चा होगी तो यह स्पष्ट होगा कि उसे किस प्रकार उन्होंने आगे बढ़ाया। अतः इस विषय की पृष्ठभूमि विस्तृत रूप से दी गयी है ताकि पोतनामात्य का उचित मूल्यांकन हो सके।

केतना

अभिनवदण्डी बिरुदांकित मूलघटिक केतना तिक्कना का समकालीन माने जाते हैं। विज्ञानेश्वर नामक एक धर्मशास्त्र एवं आन्ध्र-भाषा भूषण नामक व्याकरण का निर्माण आपने किया। आप तेलुगु के प्रथम रीति ग्रन्थकार कवि माने जाते हैं। अपनी कविता के कारण "उभय कविमित्र" कहलाये। संस्कृत के "दशकुमार चरितम्" को आपने चम्पूकाव्य शैली में अनूदित कर तिक्कना को समर्पित किया, जिससे तिक्कना के प्रति उनके हृदय में आदर और तद्वारा हरिहरनाथ पर भक्ति प्रदर्शित होती है।

मारना

तिक्कना के शिष्य मारना ने "मार्कण्डेय पुराण" नामक धर्म प्रतिपादित ग्रन्थ की रचना की। काव्यशैली की दृष्टि से यह अपूर्व ग्रन्थ है क्योंकि बीज रूप में जो इतिवृत्त इसमें प्राप्त हुए, उनके आधार पर आगे के कवियों ने मनुचरित्र, हरिश्चन्द्र कथा, नल कथा, कुवलयाश्व-चरित्र आदि काव्यों की रचना की। तिक्कना को आदर्श मानकर चलने से आपकी शैली प्रौढ़ तथा हृदयंगम बन गयी। मार्कण्डेय पुराण में दुर्गास्तुति भक्ति भावना का मार्मिक स्थल बन पड़ा है।

एर्रना

एर्रना प्रोलय वेमारेड्डी के दरबार में सुशोभित कविवर थे। काकतीय राज्य के पतन के पश्चात उसके सेनापतियों में जो प्रमुख थे वे सब स्वतन्त्र हुए जिनमें प्रोलय वेमारेड्डी ने रेड्डी राज्य की स्थापना की। आपका शासनकाल ई. सन्. 1325 से 1353 तक माना जाता है। आपके पिता जी सूर्यकवि तथा दादा एर्रपोतसूरि माने जाते हैं। एर्रपोतसूरि के पिता बोल्लना और पितामह भीमन मन्त्री प्रसिद्ध हुए। एर्रना ने महाभारत का अरण्यपर्व शेष की रचना की। नन्नया द्वारा विरचित महाभारत की रचना में अरण्यपर्व का अंश शेष था जो एर्रना की प्रतीक्षा में था। लगभग 150 वर्ष के पश्चात् एर्रना ने शेषांश को पूरा किया। महाभारत के मध्यभाग को रचने का श्रेय तिक्कना को है। अरण्यपर्व की रचना से एर्रना कवित्रय में प्रमुख कवि हुए। एर्रना की अन्य कृतियों में नृसिंहपुराण, रामायण, हरिवंश प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त "कविसर्प गरुड़" नामक छन्दोग्रन्थ आपकी रचना मानी जाती है।

एर्रना ने हरिवंश की रचनाकर उसे अपने प्रभु प्रोलय वेमारेड्डी को समर्पित किया इसमें सम्पूर्ण कृष्णचरित वर्णित है। गोकुल के ग्रामीण जीवन का सहजचित्र प्रस्तुत किया गया है। उषा-अनिरुद्ध चरित एवं रुक्मिणी कल्याण में सात्विक श्रृंगार रूप में चित्रित हुआ है। आपकी दूसरी रचना लक्ष्मीनृसिंह पुराण है, जिसका आधार ब्रह्माण्ड पुराण माना जाता है। प्रह्लाद चरित इसकी मुख्य कथा है। इसमें भक्ति प्रसंगों में एर्रना का वर्णन पोतना का समकक्ष लगता है। नृसिंह पुराण को लक्ष्मी नृसिंह पुराण अथवा अहोबल क्षेत्र माहात्म्य भी कहते हैं। आप निरन्तर शिवार्चना तत्पर हो शंकर स्वामी के शिष्य होकर शम्भुदास कहलाये। फिर भी आप शिव कवियों में गिने नहीं जाते। क्योंकि अरण्यपर्व का शेषांश, नृसिंह पुराण, रामायण, हरिवंश-चार-वैष्णव ग्रन्थ ही हैं। आपकी रचनाओं में तिक्कना प्रतिपादित हरिहर-नाथ तत्त्व का प्रभाव लक्षित होता है। शम्भुदास होकर भी आप वीर-शैव नहीं हुए तथा शिवकेशव को समान रूप से हृदय में समाविष्ट कर लिया।

नाचनसोमनाथ ने भी उत्तर हरिवंश की रचना की है। इसका विवरण आगे दिया गया है।

नाचन सोमनाथ

नाचन सोमनाथ विविध शास्त्र पारंगत, सकल भाषा भूषण, साहित्य रसपोषण संविधान चक्रवर्ति कहलाये हैं। आपने उत्तर हरिवंश की रचना कर "हरिहरनाथ" को समर्पित किया। नाचन सोमनाथ ने तिक्कना को गुरु माना और अपने काव्यों को समर्पित किया। इस परम्परा में आप प्रथम कवि माने जाते हैं। पूर्व हरिवंश की रचना आपने की ऐसा कहीं विदित नहीं होता। उत्तर-हरिवंश का

आरम्भ देखते ही उसकी रचना भी उन्होंने की, ऐसा आभास होता है। उत्तर हरिवंश को तेलुगु साहित्य के प्रथम कृष्ण-काव्य कह सकते हैं, जिसमें कृष्ण का भक्तवत्सल तथा मुरलीधर, जनरंजक रूप प्रस्तुत हुआ है। नरकासुर का संहार प्रसंग श्रृंगार-वीर रसात्मक सुन्दर अद्वितीय बन पड़ा है। रौद्र, करुणा, हास्य रस पोषण में भी आप सिद्धहस्त हैं। आपकी कविता रजोगुण प्रधान होती है।

नाचन सोमनाथ ने अपने उत्तर हरिवंश में शिवकेशवाभेद का निरूपण किया। गंगाधर और मुरलीधर दोनों ने एक रूप में दर्शन देकर अद्वैतभाव को प्रकट किया।

> इत्तेरगुन नय्यिरुवुर
> चित्तमुगति नोडलु गलसि सिद्धान्तपरा
> यत्तुलगु मुनुल येरुकलु
> वित्तै चेलुवारे जमिलि वेलों तेलुपन् ।।[3]

अर्थात् इस रीति में उन दोनों के चित्त और देह मिलकर सिद्धान्त परायण मनवाले मुनिजन को विदित करने के लिए दोनों देव एक रूप में सुशोभित हुए। उसके पश्चात् सकल देवताओं के मूल में एक परात्पर को सिद्ध किया। कवि ने त्रिदेव की अद्वैतता को सिद्ध किया और समन्वय वेदान्त को स्थापित किया। आपके पश्चात् श्री वेंकटनाथ कवि ने अपनी कृति को हरिहरनाथ के चरणों में भेंट किया। कविप्रवर जक्कना और मारना दोनों कवि ब्रह्म तिक्कना के शिष्य हुए. जिन्होंने हरिहर सम्प्रदाय को आगे बढ़ाया। अनन्तरकाल में कहाकवि श्रीनाथ और भक्तकवि पोतनामात्य दोनों ने हरिहरतत्त्व का प्रचार किया जिसके विषय में आगे विचार किया गया।

महाकवि श्रीनाथ

कवि सार्वभौम श्रीनाथ युग प्रवर्तक कवि हुए। आपकी अनेक पुस्तकें कर्तृत्व-प्रतिभा, असामान्य पाण्डित्य, धारा-प्रवाह युक्त प्रौढ़शैली के कारण कोण्डवीडु के नरेश वेमारेड्डी के आस्थान-पण्डित, विद्याधिकारी पद पर आसीन हुए और राज सिंहासन के समीप कविराज सिंहासन को सुप्रतिष्ठित किया। आपने डिंडिमभट्ट को परास्त कर कनकाभिषेक का गौरव प्राप्त कर कविसार्वभौम बिरुदांकित हुए। किन्तु आपको जीवन की अन्तिम दशा दरिद्रता में बितानी पड़ी। आपका जीवनकाल ई. सन्. 1380-1450 माना जाता है।

श्रीनाथ की रचनाओं में पंडिताराध्य चरित्रमु, श्रृंगार नैषधमु, काशी खण्डमु, भीम खण्डमु, हर विलासमु, शिवरात्रि महात्म्यमु और पलनाटि वीर चरित्र आदि प्रसिद्ध हैं। इनमें अधिकतर ग्रन्थ शिव-भक्ति से सम्बद्ध हैं। स्कन्दपुराण के आधार पर "भीम खण्डमु" में द्राक्षाराम भीमेश्वर-क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन है। इसी के आधार पर काशी

क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन काशीखण्डमु में हुआ है। हर-विलास में शिव की श्रृंगार–विलासिता का वर्णन, चिरुतोण्ड नम्बिकथा, पार्वती परिणय, दारुकावन विहार, हालाहल भक्षण, किरातार्जुनीय आदि सरस वृत्त हैं। शिवरात्रि माहात्म्य में सुकुमार की कथा वर्णित है।

भक्त पोतना

आन्ध्र जनता को भागवतामृत प्रदान करने वालों में बम्मेरा पोतनामात्य अग्रणी हैं। आजकल के वरंगल नगर के समीप बम्मेरा गाँव में आर्वेल नियोगी ब्राम्हण परिवार में पोतनामात्य का जन्म ई. सन् 1400 में हुआ। आपके पूर्वज शैव सम्प्रदाय के अनुयायी थे, आप परिणत हृदय वाले होकर स्मार्त्त हुए। आप सद्गृहस्थ तथा वैराग्य सम्पन्न कृषीवल थे। दरिद्रता का अनुभव करते हुए भी आपने राजाश्रय स्वीकार नहीं किया। आपका जीवनकाल ई. सन्. 1400-1450 माना जाता है।

पोतनामात्य अपनी सहज पाण्डित्यपूर्ण प्रतिभा से युक्त होकर उत्तम कवि हुए। आपने महाभागवत का तेलुगु में मधुर अनुवाद प्रस्तुत किया। इसने यथा-तथ्यानुवाद न होकर स्वतन्त्र भक्तिकाव्य के रूप में विपुल काव्य का रूप लिया। पोतना का भागवत आन्ध्र के घर–घर में पारायण ग्रन्थ बन गया है। गजेन्द्रमोक्षण, प्रह्लाद चरित्र, रुक्मिणी–कल्याण, कृष्ण–लीला प्रसंगों में भक्ति में परवश होकर आपने कथा प्रसंगों में स्वतन्त्र काव्य रूप प्रदान किया। कृष्ण की बाल-लीलाओं गोपिका-गीत आदि प्रसंगों में मधुर भक्ति का चित्ताकर्षक वर्णन हुआ है। इसमें पोतना की आत्माभिव्यक्ति होने के कारण यह एक अद्भुत गीत-काव्य (लिरिक) बन गया है।

श्री तेनालि रामकृष्ण कवि

श्री रायलु के अष्ट दिग्गजों में रामलिंग या रामकृष्ण कवि प्रमुख माने जाते हैं। आप विकटकवि तथा हास्य कवि के रूप में स्मरण किये जाते हैं। आपके नाम से अनेक मुक्तक (चाटूक्तियाँ) जनता में बहुल प्रचार में हैं। आपका "उद्भ-टाराध्यचरित्र" शैव भक्ति से पूर्ण प्रबन्ध काव्य है। यह रचना रामलिंग कवि की मानी जाती है। रामलिंग ने वैष्णवधर्म स्वीकार कर अपने नाम में परिवर्तन कर रामकृष्ण रख लिया होगा, सम्प्रदाय के परिवर्तन के पश्चात् भी आपके हृदय में शैव सम्प्रदाय के प्रति विमुखता दिखाई नहीं देती।[4]

रामकृष्ण की दो और रचनाएँ वैष्णव परक हैं–पाण्डुरंग माहात्म्यमु, घटिकाचल माहात्म्यमु। पाण्डुरंग माहात्म्य में भौमी नदी तट के पुंडरीक क्षेत्र माहात्म्य का वर्णन हुआ है। कथावस्तु, स्कन्दपुराण से ग्रहीत है। क्षेत्र, तीर्थ, दैव तीनों में कौन महत्त्वपूर्ण हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में परम भक्ताग्रेसर पुण्डरीक

की स्मरणीय कथा का वर्णन है। इसमें निगम शर्मा एवं सुशीला की कथाएँ भक्ति प्रधान हैं। इसमें अगस्त्य–तीर्थ, गणापत्य-तीर्थ, कलश-तीर्थ, पितृ-तीर्थ, चक्र-तीर्थ, संगम-तीर्थ लक्ष्मी-तीर्थ, पौण्डरीक-तीर्थ, मुक्तकेशि-तीर्थ इत्यादि अनेक तीर्थों के माहात्म्य का भक्ति रसपूर्ण वर्णन हुआ है।

"घटिकाचल माहात्म्यमु" में तेनालि रामकृष्ण ने घटिकाचल के योग-नरसिंह स्वामी के माहात्म्य का वर्णन किया है। रामकृष्ण का वैष्णव मत सम्प्रदाय का पक्षपात युक्त समादर-पूर्ण वैदिकाभिमुखी है। इसमें सप्तर्षि की श्री नृसिंह स्वामी की आराधना का वैदिक-पद्धति से वर्णन हुआ है।[5] आप वैष्णव धर्म के वैखानस सम्प्रदाय के अनुयायी हैं क्योंकि उन्होंने घटिकाचल में वैखानसों का प्रवेश करवाया।[6]

कृष्णमाचार्य

भक्ति प्रधान हो स्तोत्र रूपात्मक संकीर्तनात्मक वचन रचना में श्रीकृष्णमाचार्य आद्य माने जाते हैं। स्वतन्त्र आन्ध्र गद्य रचना के आदिकवि कृष्णमाचार्य जी हैं। श्री ताल्लपाक पेदतिरुमलाचार्य के सुपुत्र ताल्लपाक चिन तिरुमलाचार्य ने आदि वचनकवि के रूप में आपकी वन्दना की। संकीर्तन प्रथमाचार्य के रूप में आप विख्यात हैं। आपसे पहले आन्ध्रभाषा में छन्दोरहित वचनकाव्यों की रचना नहीं हुई थी, जिसका सूत्रपात आपने किया था।

आपके जीवन की विशेषताओं के बारे में प्रतापचरित्र नामक ग्रन्थ के रचयिता एकाम्रनाथ ने उल्लेख किया था। कृष्णमाचार्य 13वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पैदा होकर 14वीं शती के पूर्व भाग में जीवित हैं। आप सन्तूरु ग्राम में पैदा हुए। आपने अपनी सारी सम्पत्ति को गरीबों में बाँट दिया। सिद्धेश्वर चरित्र के अनुसार कहा जाता है कि आपने प्रतापरुद्र चक्रवर्ती के दर्शन किये और आपसे बहुत प्रशंसित हुए। चक्रवर्ती ने आपको अग्रहारादि देकर सम्मान दिया। आपका जीवनकाल 1265–70 माना जाता है। आपने कल्लूर ग्राम का निर्माण करवाया। तीन वर्षों तक गाँवों पर अधिकार कर ताम्रपत्रिकाओं पर अपनी 4 लाख रचनाओं को खुदवाया और उनको गाड़ियों में लादकर श्रीरंगम् ले जाकर श्री रंगनाथ स्वामी को समर्पित किया।

कहा जाता है कि प्रतापरुद्र चक्रवर्ती ने कनकगिरि सीमा में कृष्णमाचार्य को पचास गावों का अधिकार दिया था। प्रतापरुद्र चरित के अनुसार अन्तिम समय में आपने श्रीरंगम् को प्रस्थान किया था। आपने सन्तूर ग्राम में वैष्णव परिवार में जन्म लिया था। "दृष्ट नक्षत्र में व्यतीपात योग में पैदा होने के कारण आप जन्मान्ध पैदा हुए थे।" माता, पिता आपको कुएँ में फेंक कर चले गये। कहा जाता है कि नृसिंह स्वामी ने संन्यासी के रूप में आपकी रक्षा कर सिंहाचल

ले जाकर किसी मठ में संस्थापित किया। तीर्थक्षीर प्रक्षालन से उनकी आँखों में रोशनी आ गई। कृतज्ञतावश आपने स्वामी का भजन किया। नृसिंह स्वामी ने स्वप्न में वराह रूप में दर्शन देकर 4 लाख पदों में वाक् पूजा करने की आज्ञा दी थी। जब कृष्णमाचार्य ने अपने आपको अशक्त बताया तो भगवान ने समुचित विज्ञान प्रदान किया। आपने आषाढ़ सुदी द्वादशी के दिन चिरुताल लेकर स्वामी के संकीर्तन का आरम्भ किया। तब आपकी आयु 17 वर्ष थी। आपका विवाह मामा श्रीरंगाचार्य की पुत्री से हुआ। एक पुत्र होने के बाद स्वल्प समय में उसका निधन हुआ। कृष्णमाचार्य जी भक्ति मार्ग से हटकर बीच में मोहनांगी नामक वेश्या के मोह में फँस गये। भागवतोत्तम यात्रियों के दर्शन से सचेत हुए और फिर संकीर्तन रचने का स्मरण हो आया। अन्त में स्वामी ने दर्शन देकर आपको धन्य किया। श्रीकृष्णमाचार्य विष्णुभक्त परमवैष्णव पद को प्राप्त हुए। आपने सन्तूर में जन्म लेकर सिंहाचल क्षेत्र तथा वारंगल में निवास कर अन्त में श्रीरंगम को प्रस्थान किया।

श्रीकृष्णमाचार्य की रचना "सिंहगिरि वचनमुलु" में अनेक अद्भुत घटनाओं का विवरण है। शैव भक्तों की कथाओं के साथ शैव पारम्य को प्रकट करने वाली कथाएँ भी इसमें हैं। परम वैष्णव होने के साथ आपने कहीं शैवदूषण या शैव विरोध प्रकट नहीं किया। वैष्णव सम्प्रदाय पर अभिरुचि रखना सहज है। परन्तु उनमें कहीं भी शैवद्वेष नहीं था। यह विशेषता आपके व्यक्तित्व की परिपक्वता को प्रकट करती है।

श्री कृष्णमाचार्य ने अपने सिंहगिरि वचनों में स्वदेश का प्रेम प्रकट किया। आन्ध्रप्रान्त के कई तीर्थ स्थानों का आपने स्मरण किया है जिनमें विशेष रूप से अहोबलम्, एकशिलानगरी, तिरुपति, पोतकम्मूरु, शेषाचलमु, सन्तूर सिंहगिरि और गोदावरी का स्मरण हुआ है।

आपने वैष्णवमत को सबसे श्रेष्ठ माना है। 11वें वचन में कहते हैं कि हे देव ! विष्णु भक्ति रहित विद्वान की अपेक्षा हरिकीर्तन करने वाला कुलज होगा। स्वपच ही क्यों न हो, किसी वर्ग का क्यों न हो, द्विज से बढ़कर यह कुलज होगा। भले ही नित्य कर्मानुष्ठान कर्ता होगा। सकल धर्माचरण करता होगा परन्तु अपने सिंहगिरि नरहरि के दासों का दास जबतक नहीं होगा उसको मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। स्वामी सिंहगिरि के नरहरि ! हे दयानिधि ! नमस्कार स्वीकार करो। अर्थात् कृष्णमाचार्य जी जाति–पाँति के बन्धन सच्चे भक्त के नाते स्वीकार नहीं करते।

दूबगुण्ट नारायण कवि

दूबगुण्ट नारायण कवि ने पंचतन्त्र की रचना कर 1470 के आसपास उदयगिरि के राजा बसवराजु को समर्पित किया था। आपकी रचना सरल तथा सहज

शैली में होने के कारण जनप्रिय हुई आप हरिहर सम्प्रदाय के माने जाते हैं।

बैचराजु वेंकटनाथ कवि

बैचराजुवेंकटनाथ कवि तिक्कना के समान कीर्ति की कामना रखते थे। तिक्कना केसमान आपने अपने ग्रन्थ पंचतन्त्र को हरिहर भगवान को समर्पित किया। भूमिका में ही तिक्कना विरचित विराट पर्व की अवतारिका का अनुकरण किया। जिसमें आपने यह स्वीकृत किया है कि उन्हें हरिहरनाथ के सायुज्य की तीव्र इच्छा है।

"ए चदुवु गलदु हरिहर साचिव्यमु नोन्द नन्यजनुलकु मदि ना
लोचिम्प दिक्क याज्जवकु नाचन सोमुनकु मरियु नाकुन्दक्कन्।"

मन में विचार करने पर किस प्रकार की सामीप्यता होने के कारण मुझे हरिहर स्वामी का सायुज्य प्राप्त होता; यह सायुज्य तिक्कन सोमयाजी, नाचन सोमनाथ और मुझे छोड़कर किसी को कैसे प्राप्त होगा।

इस प्रकार की गर्वोक्ति से आप हरिहरनाथ को स्वीकार करते हैं। आपकी काव्यशैली प्रौढ़ तथा उज्वल होते हुए सरस कथा समन्वित हो प्रबोधात्मक रही।

कोरवि गोपराजु

कोरवि गोपराजु श्रीनाथ युग के अन्तिम दशक के कवि माने जाते हैं। आपकी कविता में प्रबन्ध युग के लक्षण कम दिखाई पड़ने हैं। यद्यपि आपका जीवनकाल प्रबन्ध युग का रहा। आपकी प्रसिद्ध रचना सिंहासनद्वात्रिंका नामक कथा काव्य है। इसमें आपने समस्त विधाओं के स्वभाव का परिचय देते हुए तत्कालीन आचार व्यवहार का विवरण देते हुए सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिशीलन प्रस्तुत करते हुए अपनी सर्वज्ञता को प्रकट किया है। आपकी कथाकथन-शैली सहज होते हुए रोचक रही। गोपराजु का जीवन काल पन्द्रहवीं शती का मध्यकाल माना जाता है।

हरिभट्ट

हरिभट्ट कवि (ई. सन् 1530) ने वराहपुराण, मत्स्यपुराण, भागवत के षष्ठ, एकादश तथा द्वादश स्कन्ध और नरसिंह पुराण की रचना की, जिनमें मत्स्य, नरसिंह पुराण मात्र प्रकाशित हुए। आपने मत्स्य पुराण का पूरा अनुवाद नहीं किया। विष्णु धर्मोत्तर खण्ड मात्र का पाँच आश्वासों में अनुवाद किया। इसमें विष्णुपूजा का फल, तुलसी का माहात्म्य आदि भक्ति रस प्रधान कथाओं का वर्णन है। यह ग्रन्थ श्री रंगेश्वर को समर्पित किया गया है। कहा जाता है कि आप हरिहर सम्प्रदाय के कवि हुए।

अन्नमाचार्य

हिन्दी के कृष्ण भक्ति-काव्य में अष्टछाप कवियों के समान तेलुगु में ताल्लपाक वंशज चार कीर्तनकार दर्शन देते हैं। अष्टछाप कवि शुद्धाद्वैत दर्शन के

प्रतिष्ठापक गोस्वामी वल्लभाचार्य जी तथा गोस्वामी विठलनाथ के शिष्य हुए। तेलुगु प्रान्त में अष्टछाप कवियों का स्मरण दिलाने वाले ताल्लपाक परिवार के चार कीर्तनकार तिरुपतिवासी बालाजी के परमभक्त संगीताचार्य हुए। श्री अन्नमाचार्य, उनका बड़ा सुपुत्र श्री पेदतिरुमलार्य और आप का बड़ा बेटा श्री चिन तिरुमलय्या और चौथा बेटा चिन्नन्न (चिन तिरुवेंगलनाथ) नामक चार सुप्रसिद्ध कवि हुए। इनमें प्रधान तीन साहित्य और संगीत कला में दक्ष संकीर्तन के परम् भक्त हुए। चिन्नन्न असंख्य रूप में द्विपद छन्द में काव्य रचना करने वाले महाकवि हुए। आप चारों भक्तकवि 15वीं शती के आरम्भ से 16वीं शती के अन्त समय तक तिरुपति स्वामी श्री वेंकटेश्वर जी की स्तुति में अनेकों संगीत साहित्यपरक संकीर्तनों को रचकर समर्पित करते हुए गायन कर परम भागवत कहलाए।

आपके जीवनकाल में उत्तरान्ध्र प्रान्त में गजपति राजा, राजमहेन्द्री में रेड्डी राजा, तेलंगाना में बहमनी सुलतान, रायलसीमा प्रान्त में विद्यानगर को राजधानी बनाकर व सालुव, तेलुव वंश के राजा शासन करते रहे। अन्नमाचार्य के वंशज ताल्लपाक वंशज होने पर भी, आप बाल्यकाल से ही तिरुपति में जाकर बस गये। इनकी युवावस्था तक तिरुपति को भी मुसलमानों के अभियानों के धक्के लग रहे थे। रेड्डी राज्य क्षीण होते गये और विजयनगर राज्य बलशाली हो गया। किन्तु इन राजाओं की अपेक्षा संगीत एवं कविता कला की आपकी साधना में बालाजी भक्त प्रेरक रहे। आपका एक भरोसा, एक आस विश्वास तिरुपति स्वामी ही रहे। चिन्नन्न कृत अन्नमाचार्य चरित का यह पद द्रष्टव्य है–

नीपालि वारिग नियमिंचि मम्मु
हरि मिम्मु ने गोनियाडु मा जिह्व
नोदलनु गोनियाड कुंडग जेरि ॥

(हे हरि ! हमें अपने लोग समझकर नियुक्ति करो। क्योंकि हमारी जिह्वा अन्य की स्तुति न कर आपकी स्तुति मात्र करेगी।)

किसी ने शिव, किसी ने शक्ति, किसी ने भैरव, किसी ने जिन, किसी ने स्कन्द आदि कहते हुए अपने–अपने साम्प्रदायों के अनुकूल पूजा अर्चना करते हुए रेखाओं की कल्पना कर अनुकूल प्रमाण दर्शाते हुए विभिन्न रूपों में एक ही मूर्ति की उपासना की। आलवार सन्तों के वर्णनों के आधार पर श्री रामानुज ने विष्णुमूर्ति के रूप में सुप्रतिष्ठित कर 11वीं शती में बालाजी को विख्यात किया। कहा जाता है कि सिंहाचल, श्रीकूर्म आदि तीर्थस्थानों में भी आचार्यवर ने ऐसे ही निर्धारित किया था। इसके अतिरिक्त आचार्य रामानुज श्री वेंकटेश्वर जी के सान्निध्य में श्री वैष्णवों को स्थानापति पद पर प्रतिष्ठित किया। अपने गुरु तिरुमलनम्बि को जिनसे आपने रामायण का उपदेश ग्रहण किया, स्वामी की सेवा

के लिए नियुक्त कर दिया। तब से तिरुपति क्षेत्र वैखानस विधान का प्रधान स्थान बन गया। 14वीं शती में वेदान्तदेशिकाचार्य और आपके शिष्य मनवाल महामुनि और आपके शिष्यों ने स्वामी के वैभव में चार चाँद लगाये। 12वीं शती में अहोबल मठ के प्रतिष्ठापक शठकोपयति तथा आपका शिष्य अन्नमाचार्य ने बालाजी की सेवा कर अपने आपको धन्य किया। यह घटना भक्तकवि सूरदास जी के महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी के कृपापात्र हो श्री नाथ जी के मन्दिर में गायक के रूप नियोजित होने का स्मरण दिलाती है। इस प्रकार भागवतकार सूरदास तथा कीर्तनकार अन्नमाचार्य दोनों को अपने जीवन में परमप्रभु के वैभव के दर्शन कर यथोचित सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इष्टदेव की स्तुति करते हुए, लीलाओं में रखा। भक्त के रूप में भाग लेते हुए, मधुर अनुभूतियों को समेटते हुए दोनों ने परमानन्द से पूर्ण जीवन को व्यतीत किया। अस्तु दोनों की भक्ति भावना में समानताएँ स्पष्ट रूप ने दृष्टिगोचर होती हैं, जिनका तुलनात्मक अनुशीलन करने का नम्र प्रयास किया जाता है। इससे पूर्व श्री अन्नमाचार्य के कृतित्त्व एवं व्यक्तित्त्व का परिचय कर लेना समीचीन होगा।

अन्नमाचार्य जी के पूर्वज कड़पा जिला के ताल्लपाक नामक गाँव में निवास करने की वजह से उनके वंश का नाम ताल्लपाक व्यवहृत हुआ। आप नंदवरीक ब्राह्मण, ऋग्वेदी, आश्वलायन सूत्री और भारद्वाज गोत्री हैं। इसी वंश में उत्पन्न होने वाले पण्डित श्रेष्ठ तथा प्रख्यात विष्णु भक्त नारायण सूरी तथा पुण्यसती अक्कमाम्बा की सन्तान के रूप में श्रीवेंकटेश्वर स्वामी के वर प्रसाद से 1408 में वैशाख पूर्णिमा, विशाखा नक्षत्र में श्री अन्नमाचार्य का जन्म हुआ। सूरदास के समान ही आपके मन में बाल्यावस्था में भक्तिभावना सुभासित हुई। बचपन से ही सूरदास जी की वाणी भविष्यवाणी बताती तो अन्नमाचार्य जी के मीठे बोल अमृतमय हुए और मुख सकल विद्याओं के निलय के रूप में विकसित हुआ।

अन्धे हो जाने के कारण सूरदास जी को बचपन में अनेकों कष्ट झेलने पड़े। उसी भाँति अन्नमाचार्य को माता-पिता, भाई-भाभियों की खेती बाड़ी में लगाकर, नाना प्रकार की सेवा करने को बाध्य करने पर अपने स्वामी से छुटकारा देने की याचना की। सूरदास की भाँति [7] आपने जनम वृथा गँवाने का पश्चात्ताप किया।

> अय्यो पोये ब्रायमु कालमु
> मुय्यंचु मनसुन ने मोहमतिनैति।
> हरिनात्म तगिलिंच लेक चिंतापरुड नैति॥

(हायरे! आयु तथा काल बीत रहे हैं। मूढ़मती हो मैं मोहित हुआ। हरि को आत्मा में न ला सका। चिन्ताग्रस्त हुआ।)

ऐतिह्य यह है कि एक दिन पशुओं के लिए घास की गठरियाँ ढोने को जब बाध्य हुए तब अन्नमाचार्य थककर दुःखी हो घर से भाग खड़े हुए। बाल्यकाल ही तो था। बालाजी के दर्शन के लिए यही अच्छा अवसर जानकर निकल पड़े और यात्रियों के साथ हो लिए। सात पहाड़ों को पैदल ही पार करना था। 'घुटनों का पहाड़" तक पहुँचते ही भूखे प्यासे होने के कारण श्लान्त हो जमीन पर गिर पड़े। सारा ब्रह्माण्ड चक्कर काटने लगा। उसी तंद्रा में लक्ष्मीदेवी ने वहीं दर्शन देकर सुझाव दिया कि समस्त पर्वत साल-ग्रामों से भरा हुआ है। अतः चप्पल पहन कर पहाड़ चढ़ना नहीं चाहिए। बालक से भूल हुई। कहा जाता है कि देवी ने प्रसाद देकर गोद में लेकर, थपकी देकर श्रम दूर कर दिया था। तब अन्नमाचार्य ने आशु रूप में (तत्काल ही कविता करना) श्री वेंकटेश्वर तथा अलमेलमंगा देवी पर एक शतक कह सुनाया। वहाँ से लेकर मन्दिर में प्रवेश होने तक कीर्तन करते गये। पग-पग पर ब्रह्मपाद के दर्शन करते हुए, ब्रह्मपाद पर, कुरुवनम्बी पर, श्री वेंकटेश के आँगन पर, भाष्यकारों पर, पहाड़ पर स्थित पुष्करिणी पर,गरुण स्तम्भ पर, विश्वकसेन आदि पर आशु रूप में संकीर्तन करते चले। आपको श्रीवेंकटेश्वर स्वामी के दर्शन हुए। ताम्र-पत्रों में इन सबका उल्लेख है।

तत्कालीन राजाओं में व्याप्त राजलिप्सा एवं भोग लिप्सा पर आपने खीज प्रकट की। राजाओं की क्रूरता, दुष्टता आदि दुर्गुणों को निन्दित ठहराया। जिस प्रकार शहनशाह अकबर ने सूरदास जी को भजन सुनाने के लिए सीकरी बुलाया था। उसी प्रकार राजा सालुव नरसिंगराय ने अन्नमाचार्य जी को राजधानी बुलाया। बालाजी पर विरचित श्रृंगार परक कीर्तन सुनकर खुश हो अपने नाम से भी कुछ पद गढ़कर सुनाने को विवश किया। तब सूरदास जी के स्वर में स्वर मिलाते हुए "सन्तन को सीकरी सो क्या काम कह रहा हो" जैसा आपने स्पष्ट कहकर इन्कार किया।

नरहरि कीर्तन नानिन जिह्व, ओरुल नुतिंपण नोपदु जिह्व।
मुरहरु पदमुल मोक्किन शिरमु, परुल वन्दनकु परगदु शिरमु॥

(नरहरि के कीर्तन करने वाली जिह्वा, अन्य की स्तुति नहीं कर सकती। मुरहरि के चरणों में नत होने वाला सर अन्य जन की वन्दना नहीं कर सकता)

आपने राजा की इच्छा को तिरस्कृत कर दिया। कुपित होकर राजा ने अन्नमाचार्य जी के पैरों में बेड़ियाँ डलवायीं। कहा जाता है कि भक्तप्रवर ने श्री बालाजी की स्तुति की और बेड़ियों के बन्धन से मुक्त हुए। उनकी महिमा देखकर आश्चर्यचकित हो राजा ने भक्त की शरण ग्रहण की और कतिपय ग्राम आदि अग्रहार के रूप में भेंट देकर सम्मानित किया।

कहा जाता है कि आपकी वैराग्य भावना को देखकर माता-पिता ने तिरुमलाम्बा, अक्कमाम्बा, नामक दो सुन्दर तथा सुशील कन्याओं के साथ विवाह

कर गृहस्थ बनाया । कालान्तर में अन्नमाचार्य तिरुपति में स्थिर निवास कर स्वामी की सेवा में मग्न हुए । इन्हीं दिनों में आपने संकीर्तनभण्डागार की स्थापना कर, संकीर्तन करवाते हुए उन्हें सुरक्षित रखाया ।

सूरदास जी संसार से मुख मोड़कर कृष्ण लीला में चित्तवृत्ति को रमाने वाले साधु महात्मा हुए, तो अन्नमाचार्य सद्गृहस्थ हो विषय–वासनाओं में अलिप्त कीर्तनकार एवं भक्ताग्रेसर हुए । सूर के समान अन्नमाचार्य अद्वितीय प्रतिभाशाली भक्तकवि हुए ।

माना जाता है कि अन्नमाचार्य जी से विरचित अध्यात्म–संकीर्तन, श्रृंगार संकीर्तन रागताल युक्त हो 32,000 पदों का उल्लेख है । सूरदास जी ने लक्षावधि तक भजन गाये थे । किन्तु आज दुर्भाग्य से लगभग दस हजार पद प्राप्त होते हैं । ऐसी ही दुर्गति अन्नमाचार्य जी के कीर्तनों की हुई । 12 हजार मात्र कीर्तन आपके प्राप्त हुए, जिनका "आन्ध्रवेद" के नाम से आदर किया जाता है । इनके अतिरिक्त अन्नमाचार्य जी की कृति द्विपद छन्द में प्रबन्ध काव्य रूप में नव्यरीति में रामायण प्राप्त होती है । संस्कृत में श्री वेंकटाद्रि माहात्म्यमु, तेलुगु में श्रृंगार मंजरी तथा बारह शतक रचनाएँ प्राप्त हुईं ।

सूरसागर में बाल्यलीलाओं के सन्दर्भ में वात्सल्यपरक एवं गोपिका गोपाँगनाओं को उपालम्भ देना परमरम्य है । गोपिका–गीत तथा भ्रमरगीत में संयोग–वियोग श्रृंगार और उपालम्भ काव्य माधुरी भक्ति व श्रृंगार भक्ति का सुन्दर काव्य है । सूर की अपेक्षा अन्नमाचार्य के कीर्तनों से संवाद गीत (युगल पद) असंख्य प्राप्त होते हैं । गोपिका तथा गोपाल में संवाद चेंचेता तथा श्री वेंकटेश का वार्तालाप, यशोदा से गोपिकाओं की शिकायत करना, साले–बहनोई, सास–बहू (लक्ष्मी–सरस्वती) के बीच एक दूसरे को उलाहना देना आदि में हासपरिहास के प्रसंग सरस मधुर बन पड़े हैं । अन्नमाचार्य की रचनाओं में जाजरलु (चर्चारि) चन्दमामा गीत, कोयल गीत, तोता – भँस गीत, लाली गीत (लोरी), सव्वि गीत, गोब्बि गीत, डोली गीत, मंगल गीत, भोग, श्रृंगार, शायन, जगावन, उबटन, नवाहन, उलूखल, गीत, ओग्गु गीत, (घुट्टी) आदि में मानस को चेतावनी देने वाले अनेकों प्रबोध गीत प्राप्त होते हैं ।

क्षेत्रय्या

भक्त सूरदास ने बालगोपाल की लीलाओं के वर्णन में वात्सल्य भक्ति को परम उज्वल रूप में प्रस्तुत किया । इसी प्रकार तेलुगु साहित्य में श्रृंगार–रस सम्राट कहलाने वाले भक्ताग्रेसर श्री क्षेत्रय्या दर्शन देते हैं । क्षेत्रय्या का जीवनकाल ई. सन्. 1600–1680 माना जाता है । कीर्तनकार के रूप में तेलुगु के भक्ति साहित्य में आपका अप्रतिम स्थान है । उत्तरभारत में जिस प्रकार सूरदास जी का आदर किया जाता है और गोपी–कृष्ण की प्रेम लीलाओं के भजन गाये जाते हैं, उसी

प्रकार दक्षिण भारत में विशुद्ध प्रेम तथा मधुर भक्ति के वर्णनों में क्षेत्रय्या का समादर होता है, जिसने गोपिका रमण पर अगणित पदों की रचना कर संगीत और साहित्य दोनों को सुरभित किया। भक्ति पद्धति के विश्लेषण में भाव-भक्ति की अभिव्यक्ति में भक्ति शृंगार को परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए सार्थक सिद्ध करने में आप दोनों में अपूर्व समानताएँ दिखाई देती हैं।

शृंगार रस सम्बन्धी पद रचना करने वाले कवियों में गण्यमान्य कवि क्षेत्रय्या आन्ध्रप्रान्त के कृष्णा जिले के मुव्व ग्राम के निवासी माने जाते हैं। यह गाँव प्रसिद्ध नाट्यकला का केन्द्र कूचिपूडि के समीप है। आज भी कूचिपूडि में क्षेत्रय्या के पदों का अभिनय तथा गायन करते हुए इस कवि की आराधना करते हैं। इसी गाँव में 500 वर्ष पुराना गोपालस्वामी जी का मन्दिर स्थित है। क्षेत्रय्या का नाम वरदय्या था। अनेकों क्षेत्रों में भ्रमण करते हुए देवी देवताओं पर क्षेत्रय्या नाम से स्तुति गीत रचते हुए जीवन बिताने के कारण आपका नाम क्षेत्रय्या व्यवहृत हुआ। परमतत्त्व की उपासना कर अभेदतत्त्व को क्षेत्रज्ञान को प्राप्त कर ज्ञानी होने के कारण क्षेत्रज्ञ नाम सार्थक हुआ।

क्षेत्रय्या ने गोपालस्वामी की कृपा से मुव्व ग्राम में ही पद रचना का शुभारम्भ किया। क्रमशः वैराग्य तथा भक्ति के बढ़ने से अनेक पुण्यतीर्थों की यात्रा करने निकले। जहाँ-जहाँ वे गये, उन देवी-देवताओं पर पद रच कर मुव्वगोपाल के नाम समर्पित करते गये।

कहा जाता है कि क्षेत्रय्या ने मथुरा के तिरुमलनायक (सन् 1923–59 ई.) तंजाऊर के विजयराघव नायक (सन् 1637 ई.) गोलकोण्डा के नवाब अब्दुल्ला कुतुबशाह (सन् 1620-72 ई.) के दरबारों में जाकर उनके नाम पर संकीर्तन सुनाये और पुरस्कृत हुए। इस प्रकार क्षेत्रय्या ने अठारह पुण्यक्षेत्रों के दर्शन किये तथा चार राजाओं को पद कह सुनाये।

क्षेत्रय्या का सम्पर्क कूचिपूडि के कलाकारों से हुआ। आप से पहले श्री-नारायण तीर्थ महाराज और सिद्धेन्द्र योगी ने कूचिपूडि के भागवतों के लिए यक्षगान तथा पद संकीर्तनों की रचना की थी। क्षेत्रय्या ने इनसे प्रभावित होकर और अपनी प्रतिभा से तरंगों में नाट्याभिनय भी जोड़कर सरस पदों का सृजन किया। कई संगीत रीतियों में क्षेत्रय्या आज मार्गदर्शक बने हुए हैं।

क्षेत्रय्या के पद कुल-मिलाकर 4500 माने जाते हैं। किन्तु 330 पद मात्र प्राप्त हुए। उनमें से लगभग 125 स्वरयुक्त हैं।

मुनिपल्ले सुब्रह्मण्य कवि

सुब्रह्मण्य कवि के बारे में बरसों तक कोई जानकारी नहीं थी। 15 वर्ष पूर्व श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी ने कालहस्ति के जमीन्दार (जो "दामेरलावारु" के नाम से प्रसिद्ध हैं) से प्राप्त पांडुलिपियों की प्राप्ति के बाद जो जानकारी दी,

उसी से सन्तोष करना पड़ता है। पता चलता है कि सुब्रह्मण्य कवि "दामेरला" लोगों के कालहस्ति संस्थान में पोषित हुए। उनके प्रोत्साहन पर कवि महोदय ने कई पदों की रचना कर उनके नाम पर समर्पित किया। आपके घर का नाम 'मुनिपल्ले' विदित होता है। आप कुमार वेंकट सार्वभौम और उनके पुत्र कृष्णभूपाल दोनों के दरबारों में विराजमान थे। आपने दोनों पर कई पदों की रचना की। संगीत, साहित्य, नाट्यशास्त्र में पारंगत पण्डित कीर्तनकार थे। सुब्रह्मण्य कवि 1780 ई. में यह संस्थान कम्पनी के अधीन हुआ और साहित्य वेदिका ध्वस्त हुई। ऐसे कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर कवि का जीवनकाल सन् 1730-1780 माना जाता है।

मुनिपल्ले सुब्रह्मण्य कवि अनासक्ति योग में जीवन बिताने वाले सद्गृहस्थ थे। आप तेलुगु तथा संस्कृत में प्रकाण्ड पण्डित हुए। आपने संस्कृत और तेलुगु भाषाओं में कीर्तन कर ख्याति अर्जित की। आप प्रसिद्ध कीर्तनकार क्षेत्रयग्या तथा त्यागराज के बीच के समय में पैदा होकर बहुजनरंजक हुए।

रासो काव्य में श्री हरिहरोपासना

पृथ्वीराज रासो में विष्णु, शिव, शक्ति, श्री हरिहर तथा पंचदेवोपासना का उल्लेख है।

विष्णु की प्रशस्ति

पृथ्वीराज रासो के मंगलाचरण में समस्त देवताओं के साथ विष्णु की वन्दना की गई है।[8] पृथ्वीराज रासो के नाना अनंगपाल के अपने अंतिम अवस्था में तपस्या हेतु बदरीकाश्रम जाने का उल्लेख है। बदरीकाश्रम वैष्णव सम्प्रदाय में मान्यता प्राप्त तीर्थ स्थान है। रणछोड़देव के दर्शन हेतु चन्दवरदाई का द्वारिका जाने का वर्णन है।

शिव प्रशस्ति

ग्रन्थारम्भ में चन्द कवि ने शिवस्तुति की।[9] शशि व्रता पृथ्वीराज का मिलन शिव मन्दिर में हुआ था।[10] नाहरराय समय में सोमेश्वर के द्वारा शिव जी की प्रार्थना का उल्लेख है। सोमेश्वर के साथ पृथ्वीराज ने शिव की वन्दना की है।[11]

शक्ति प्रशस्ति

कैमास को लगाने के लिए चन्द कवि ने चामुण्डादुर्गा की स्तुति की। चार पद्यों में कवि शक्ति की प्रशंसा की।[12] पृथ्वीराज रासो में अनेक प्रसंगों में शक्ति की प्रशस्ति मिल जाती है।[13]

हरिहरोपासना

पृथ्वीराज रासो में शिवकेशव में अभेदता की स्थापना का प्रयास किया गया। दक्षिण भारत में वैष्णव आल्वारों एवं शैवनायनमारों में शिवकेशव में तरतमभेद को लेकर वैचारिक मन्थन हुआ कम्बन, विल्लिपुत्तूरार आदि वैष्णव कवियों ने शिव स्तुति करके शिवकेशव में अभेदता को सिद्ध किया। इसी प्रकार का संघर्ष उत्तर-

भारत में भी हुआ होगा। इसलिए रासो काव्य में चन्दवरदाई ने समन्वय का रास्ता बताया।

परात्परतरं यान्ति नारायण परायणः।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ये दुह्यन्ति महेश्वरः ॥[14]

अर्थात् नारायण की पूजा करने वाले उत्तमगति पाते हैं। इसका तात्पर्य यह तो नहीं कि महादेव की निन्दा करो। इसी प्रकार नारायण की पूजा करते हुए शिवजी की निन्दा करने वाले उत्तमगति को प्राप्त करते हैं। इसके आगे भी चन्दकवि ने शिव केशव की तुलना की दोनों में अद्वैत की स्थापना की।[15]

पंचदेवोपासना

पृथ्वीराज रासो के मंगलाचरण में शिवकेशव के अतिरिक्त सरस्वती, ब्रह्मा आदि अन्य देवताओं की वन्दना की गई। सरस्वती[16] तथा गणेश[17] की वन्दना की गई। बीसलदेव रासो में आरम्भ के दो पद्यों में गणेश की वन्दना [18] तथा तीन पद्यों में सरस्वती[19] की प्रशस्ति की गई।

इसके अतिरिक्त मुसलमान भी धार्मिक स्वतन्त्रता का पूर्ण अधिकार रखते थे। युद्ध प्रस्थान के समय में मुसलमान भी देवता स्मरण करते थे।[20] कुरान पढ़ने के पश्चात् ही वे युद्धक्षेत्र में प्रवेश करते थे[21] गुरुराम पुरोहित ने पृथ्वीराज रासो की मृत्यु से पहले ही हिन्दू संस्कृति के अनुसार जालपा देवी का मन्त्रजप करके शरीर त्याग दिया।[22]

वीरगाथाकाल में किसी को भी अपनी इच्छा के अनुसार अपने मत का आचरण करने की स्वतन्त्रता थी। पृथ्वीराज के सामन्तों में कोई शंकर, कोई दुर्गा, कोई सूर्य, कोई चौसठ योगिनियाँ, कोई बावन वीर और हनुमान का उपासक था।[23] स्पष्ट है कि इस युग में पंचदेवों की उपासना समविन्त रूप में या पृथक रूप में की जाती थी अर्थात् सभी देवताओं के मूल में एक परब्रह्म अवस्थित है। इसके आचरण पक्ष में कोई मतभेद दिखाई नहीं पड़ता। सभी एक धर्म के होकर अपने-अपने सम्प्रदायों के अनुसार स्वतन्त्रता का अनुभव करते थे।

विद्यापति

मैथिल कोकिल नाम से प्रसिद्ध ये कवि बंगालियों के प्रिय कवि हुए। चण्डीदास के समान आप बंगला, साहित्य के आदि कवि माने गये। विद्यापति की भाषा "मैथिली" है जो बंगला से भिन्न है। आश्रयदाताओं तथा मिथिला प्रान्त के स्थानों के उल्लेख आदि अन्तःसाक्ष्य से सिद्ध होता है कि आप मिथिला निवासी थे।

विद्यापति का जन्म सन् 1360 माना जाता है और निधन सन् 1450। आप राजाशिवसिंह के दरबारी कवि हुए।

रचनाएँ :–विद्यापति ने अनेक पुस्तकों की रचना की है। भाषा की दृष्टि से इन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। संस्कृत की रचनाएँ, अवहट्ठ की

रचनाएँ और मैथिली की रचनाएँ।

भूपरिक्रमा, पुरुष-परीक्षा, लिखनावली, शैव सर्वस्वसार, शैव सर्वस्वसार-प्रमाण-भूतपुराण संग्रह. गंगावाक्यावली, विभागसार दानवाक्यावली दुर्गाभक्ति रंगिणी, गायपत्तलक, वर्षकृत्य संस्कृत की, कीर्तिलता, कीर्तिपताका अवहट्ठ की और पदावली तथा गोरक्ष-विजय मैथिली की रचनाएँ हैं।

सूरदास

भक्तप्रवर सूरदास जी शुद्धाद्वैत दर्शन के प्रणेता प्रातःस्मरणीय आचार्य श्री वल्लभ के शिष्य हुए और पुष्टि सम्प्रदाय के जहाज कहलाये। आपका जन्म सम्वत् 1535 वैशाख सुदी पंचमी, मंगलवार को दिल्ली के समीप सीही गाँव में सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपका निधन सन् 1640 माना जाता है। सूरदास जी के बहुत समय गऊघाट और रुनकता में बिताने का प्रमाण मिलता है। आप जन्मान्ध माने जाते हैं। आप बड़े ही वैरागी पुरुष तथा मधुर गायक हुए। सूर-सागर, सूर सारावली, साहित्य-लहरी आपके प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म संवत् 1554 श्रावण शुक्लासप्तमी माना जाता है और गोलोकवास संवत् 1680 श्रावण कृष्ण तीजशनी माना गया। तुलसी का जन्मस्थान सोरों या राजापुर माना जाता है। आपके पिता आत्माराम दुबे, और माता हुलसी थीं। तुलसी का बचपन अनाथावस्था में बीता। नरहरि नामक गुरु ने आपको पढाया लिखाया है। बड़े होकर आप रामानन्द की परम्परा में दीक्षित हुए। तुलसी का विवाह रत्नावली से हुआ। रत्नावली विदुषी महिला थीं। गृहस्थ जीवन बिताते हुए एक दिन रत्नावली ने तुलसी की आत्मा को जगाया। भगवान रामचन्द्र में प्रवृत्त होने के लिए आपने प्रेरित किया था। तुलसी संस्कृत तथा शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे। वैराग्य के जगते ही आपने रामभक्ति से पूर्णजीवन को अपनाया और अपने जीवन को रामकथा गान में समर्पित किया। एकाध रचना को छोड़कर आपने सब काव्यों को अवधी भाषा में रचा। विशेष रूप से विद्वानों में 12 रचनाएँ प्रमाणित मानी गयीं।

1. रामचरित मानस	2. गीतावली	3. कवितावली
4. वैराग्य संदीपनी	5. रामाज्ञा प्रश्न	6. दोहावली
7. जानकी मंगल	8. पार्वती मंगल	9. रामलला नहछू
10. श्रीकृष्ण गीतावली	11. बरवै रामायण	12. विनय पत्रिका

रामचरितमानस तुलसी की सर्वोत्तम रचना है। दोहा-चौपाई शैली में लोकभाषा अवधी में विरचित जनप्रिय काव्य है। गीतावली स्फुट गेय पदों का संग्रह है। कवितावली में कवित्त छन्द में रामकथा के मार्मिक प्रसंगों का वर्णन किया

गया। वैराग्य संदीपनी में दोहा-चौपाई तथा सोरठा छन्दों में सन्तमत का समर्थन मिलता है। रामाज्ञा प्रश्न में प्रश्न निकालने का विधान और अंकचक्र दिया गया, जिसमें 345 दोहे हैं। सात सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में सात-सात दोहों के सात-सात सप्तक हैं। दोहावली में संकलित दोहे हैं। जो स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं माना जाता। पार्वती मंगल में शिव पार्वती के विवाह प्रसंगों में अनेक रीति-रिवाजों का वर्णन मिलता है। रामलला नहछू में विवाह संस्कार के साथ होने वाले उपसंस्कार तथा रीति-रस्मों का वर्णन हुआ है। जानकी मंगल में श्रीराम और जानकी के विवाह का वर्णन मंगल छन्द में हुआ। श्रीकृष्ण गीतावली में विभिन्न राग रागिनियों में ब्रजभाषा में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन है। बरवै रामायण में रामकाव्य बरवै छन्द में है। इसमें 69 छन्द हैं। विनय पत्रिका में विविध राग-रागिनियों में संगीतात्मक रचना है जिसमें 279 पद हैं।

तुलसी ने शिवजी के द्वारा रामकथा कहलायी और पार्वती को श्रोता बनाया। हरिहर भक्ति तथा अद्वैत दर्शन के अनेक प्रसंग तुलसी काव्य में मिल जाते हैं।

संत नामदेव

संत नामदेव का जन्म संवत 1326 को सातारा जिले के नरसी वमनी [वहमनी] गाँव में हुआ था। बचपन में ही साधु सेवा एवं सत्संग में समय बिताते थे। इनके गुरु संत बिसोवा खेचर थे। इनके अनेक चमत्कारों की कथाएँ प्रसिद्ध हैं। इनकी मृत्यु सं. 1407 में हुई। नामदेव निर्गुणोपासक थे, किन्तु सगुणोपासना को भी उन्होंने अपना रखा था। उनकी अधिकांश कृतियाँ मराठी भाषा में उनके अभंगों के रूप में हैं उनकी शेष रचनाएँ हिन्दी भाषा में उपलब्ध हैं। आदि ग्रंथ के अन्तर्गत 60 से भी अधिक पद संग्रहीत हैं जिनकी भाषा हिन्दी है।

संत पलटू साहब

संत पलटू साहब 13 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जीवित थे। भीखा साहब के शिष्य गोविन्द साहब थे। आप गोविन्द साहब के शिष्य थे। आपका जन्म नगपुर जलालपुर गाँव (जिला फैजाबाद) में हुआ। ये कांदू बनिया जाति के माने जाते हैं। पलटू साहब मस्तमौला संत थे। इनका सत्संग वेदान्ती लोगों तथा सूफियों के साथ रह चुका था। इसलिए ये उनसे भी बहुत कुछ प्रभावित हुए। आपकी बहुत सी रचनाएँ हैं जिनमें से इनकी कुंडलियाँ अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके पदों, रेखतों, झूलनों, अरिल्लों, कुण्डलियों तथा साखियों का एक अच्छा संग्रह "बेलवेडियर प्रेस" प्रयाग द्वारा तीन भागों में प्रकाशित हुआ। आपकी भाषा पर फारसी-अरबी का प्रभाव दीख पड़ता है।

संत कबीर

संत कबीर की जन्म तिथि संवत् 1455 माना जाता है। कबीर जुलाहा जाति के थे। उनका निवास स्थान काशी था। कबीर जी के गुरु स्वामी रामानन्द थे। उनका प्रधान उद्देश्य अपने शरीर को स्वस्थ रखते हुए आध्यात्मिक जीवन का आनन्द उठाना था। वे इसी के उपदेश देते रहे। वे कुछ समय के बाद काशी छोड़कर मगहर नामक गाँव चले गए थे, जहाँ उनकी मृत्यु संवत् 16 वीं शताब्दी के प्रथम चरण में हो गई। वहाँ पर उनकी समाधि आज तक वर्तमान है। कबीर पंथ के अनुयायियों ने 'बीजक' नामक संग्रह को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। सिखों के 'आदिग्रंथ' में भी कबीर के लगभग सवा दो सौ पद एवं ढाई सौ साखियाँ संग्रहीत हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित "कबीर ग्रंथावली" एक तीसरा संग्रह है, जिसमें लगभग 50 साखियाँ एवं 15 पद हैं। साखियों को आदि ग्रंथ में सलोक नाम दिया गया है।

गुरुनानक देव

गुरुनानक देव का जन्म सं. 1526 में राइमोडी की तलवंडी नामक गाँव में हुआ था। यह गाँव नानकाना के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हें बचपन में पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत एवं फारसी की शिक्षा दी गई। सिंहल द्वीप के राजा के लिए इन्होंने 'प्राणसंगली' की रचना की थी। अन्त में कर्तारपुर में रहकर भजन करने लगे थे। जहाँ सं. 1595 की आश्विन सुदी के दिन इनका देहान्त हो गया।

गुरुनानक देव सिख धर्म के मूल प्रवर्तक थे। उनको आदि गुरु माना जाता था। आज इनके बदले में गुरुग्रंथ साहब को गुरु का महत्त्व दिया गया। इनकी रचनाएँ – जपुजी, असादीवार, रहिरास, एवं सोहिला का संग्रह हैं। एकेश्वरवाद, परमात्मा की सर्व-व्यापकता के प्रति एकांत निष्ठा, विश्व-प्रेम नाम की महत्ता आदि में पूर्ण विश्वास है। उनके पदों में पंजाबी शब्दों का प्रयोग अधिक है।

संत धर्मदास

धर्मदास कबीर पंथ की छत्तीस गढ़ी शाखा के मूल प्रवर्तक थे। आपका निवास स्थान बाँधोगढ़ था। धर्मदास में कबीरदास को एक प्रकार का अवतारी महापुरुष का मान था। वे कसौंधन बनिया जाति के थे। ये विक्रम की 17 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में थे। उनके पद भिन्न-भिन्न संग्रहों में मिलते हैं। कबीर साहब का पौराणिक वृत्त तथा कबीर पंथ की पूजन-प्रणाली में पद दीख पड़ते हैं। ये पद स्तुति, प्रार्थना आदि से सम्बद्ध हैं।

संदर्भ सूची

1. गुण्टूरि शेषेन्द्र शर्मा–साहित्य कौमुदी, पृ. 82
2. श्री मदान्ध्र महाभारतमु आदिकवि–प्रथम आश्वास, पद्य संख्या 5-31-32 (आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकादमी, हैदराबाद)

3. उत्तर हरिवंशमु–2-178, (नाचन सोमनाथ)
4. प्रो. दिवाकर्ल वेंकटावधानी–आन्ध्र वाङ्मय चरित, पृ. 57
5. घटिकाचल माहात्म्य–2/224 (आ. प्र. सा. अकादमी, हैदराबाद)
6. घटिकाचल माहात्म्य–3/28
7. नरतैं जनम पाई कहकीनो ? और इत उत देखत जनम गयौ ॥ (सूरसागर)
8. पृथ्वीराज रासो आदि कथा–2
9. वही–1, 16 और 18
10. वही–शशिव्रता समय, 107
11. वही–नाहरराय कथा, 7-8
12. वही–भोलाराय समय, 97–100
13. वही–धीरपुण्डरी–4 और कनवज्ज–139
14. वही–आदिकथा – 19
15. वही – वही – 20
16. वही–13
17. वही–15
18. बीसलदेव रासो–1-2
19. वही–3-5
20. पृथ्वीराज रासो–हाँसी युद्ध द्वितीय 2
21. वही–अन्तिम युद्ध–29
22. वही–43
23. वही–कनवज्ज–79

तृतीय अध्याय

तेलुगु के पुराण साहित्य में श्री हरिहरोपासना

तेलुगु में पुराणों का अनुवाद हुआ। संस्कृत के पुराण साहित्य में हरिहर तत्त्व त्रिदेव में अद्वैत सिद्धि तथा परब्रह्म की व्याख्या हुई। तेलुगु कविवरों ने अनुवाद करने में उन्हीं तत्त्वों को प्रकट किया। महर्षि व्यास ने अष्टादश पुराण, ब्रह्मसूत्र, श्री महाभारत आदि में अद्वितीय ब्रह्म का प्रतिपादन किया तथा व्याख्या की। शैव पुराण, तथा वैष्णव पुराणों में शिव-विष्णु की महिमा स्थूल रूप में जानने पर भी आन्तरिक रूप में अभेदता सिद्ध होती है। हरिहरनाथ तत्त्व ब्रह्म सूत्रों में प्रकट हुआ। इस प्रकार महर्षि व्यास ने विविध पुराणों में अनेकता को प्रकट करते हुए भी परमतत्त्व की एकता में विशिष्टता व्यक्त की। भारतीय तत्त्व चिन्तन, संस्कृति, साहित्य तथा जीवन-विधान में विभिन्नता में अभिन्नता, अनेकता में एकता के दर्शन होने का मुख्य कारण समन्वय सूत्र है। महर्षि व्यास को परम गुरु मानकर तेलुगु के क्रान्तदर्शी कवियों ने उस तत्त्व का आकलन कर आन्ध्र जनता के लिए पुराणों द्वारा परमार्थ की व्याख्या की।

हरिहराद्वैत नृसिंह पुराण

नृसिंहपुराण में शिव केशव के परस्पर कलह का वर्णन है। युद्धानन्तर ब्रह्मा आकर कलह का निवारण करते हैं। ब्रह्मा ने उन दोनों से कहा कि शिवकेशव दोनों एक हैं। जल से जल, दुग्ध से दुग्ध, पारद से पारद मिले-जुले जैसा एकीभूत हो हरिहर रूप धारण कर शोभित होने का वर माँगा। वर प्रदान में दोनों ने स्वीकृति दी कि एक तत्त्व में दोनों समाहित रहेंगे। उस एक मूर्ति का वर्णन इस प्रकार है–

मन्दार दामम्बुनु इन्दु खण्डम्बुनु
मौलि भागम्बुन गीलितमुग
मणि कुण्डलम्मुनु फणिकुण्डलम्मुनु
गण्ड मण्डलमुल मेण्डकोनग ।।

चक्रांक शूलांक शयमुल माणिक्य
कंकण भुजग कंकणमु लमर
गनक कौशेयम्बु गजराज चर्मम्बु
मुनुकोनि कटि भागमुल घटिल्ल ।।
रमयु नुमयुनु नुभय पार्श्वमुल नलर
बुलुगु रेडुनु नन्दियुगोलिचि मेलग
वैष्णव श्रेष्ठुलुनु शैव वरुलु बोगड
हरिहर स्फूर्ति येकदेहमून निलिचे ।।[1]

अर्थात् सर पर मन्दार माला है और चन्द्र बिम्ब भी । कानों में मणि और फणि कुण्डल हैं । चक्र और त्रिशूल विलसित हैं । माणिक्य कंकण और भुजंग-कंकण से कर सुशोभित हैं । पीत वस्त्र और गजराज चर्म से कटि तट विलसित हैं । रमा और उमा दोनों पार्श्वों में विराजमान हैं । गरुड़ और नन्दि सेवारत हैं । वैष्णव और शैव सदा स्तुतिगान करते हैं । इस प्रकार हरिहर स्फूर्ति से युक्त हो एक देह में बस गये ।

गर्ग संहिता में शिव जी से विष्णु कहते हैं कि दोनों में अन्तर नहीं है । यदि कोई मूर्खतावश भेद-भाव रखता है तो नरक की गति प्राप्त करेगा ।

अनग कृपालुडैन हरि यट्लयिनन् सरि नीकु नाकु ने
मनुजुडु तारतम्यमुनु मौर्यमुनन् रचियिंचुनोयतं
डु नरक मोंदुगावुन निटुल्वग गूडदु नीजंनुण्डे ना
जनुडटे नीकुगूड नगु शंकर ! मानुम जंकु कोंकुलन्[2]

भेद दृष्टि का निषेध स्कान्द पुराण

स्कान्द पुराण कौमारिका खण्ड में विष्णु द्वारा शिवमहात्म्य सुनने के लिए आये हुए कुमार स्वामी से परमेश्वर ने इस प्रकार कहा –

विनुनेनन्न सरोज नेत्रुडगु
ना विष्णुडनन् नेनेगा-
मायिर्वु रंदु भेदं
भेयेडलं गानराद देन्नुमु मदिलो ।।

अर्थात् सुनो ! मैं कहने पर सरोज नेत्र वाला विष्णु होगा, विष्णु कहने का तात्पर्य मैं स्वयं हूँ । मुझमें और कमलनयन वाले विष्णु में दोनों में कोई भेद नहीं है । किसी भी रीति में अपने मन में भेद भाव मत रखो ।

हरिरिपुगा दलंचु नतडात्मनु नन्नटुले तलंचिन
ट्लरयग नौनु नाकु ननुयायिग नुण्डेडुवाडु भार्गवी
श्वरु ननु यायियेयगुनु, सत्यमे यौनिदि येव्वडात्मलो

निरति दलंचुवाडे यगु निर्मलचित्तडु नाकु भक्तुडुन् ।।
अट्लुगाक भिन्नमैन मार्गम्बुनु
बट्टनतडु नाकु भक्तुडेपुडु गाडु ।।[3]

अर्थात् हरि का दुश्मन मेरा दुश्मन होगा और हरि का अनुयायी मेरा अनुयायी होगा। यह सत्य है जो कोई इसे *आत्मा में सदा पहचानता है वही मेरा* निर्मल चित्त वाला भक्त होगा। ऐसा न होकर भिन्न मार्ग में चलने वाला कभी मेरा भक्त नहीं हो सकता।

स्कान्द पुराण के धर्म खण्ड में एक ब्राह्मण ने काशीनगर की यात्रा करते हुए मार्ग मध्य में किसी अधम जाति की सुन्दरी पर मोहित हो, उससे विवाह कर लिया। उसने अपने आपको ब्राह्मणी बताया। उन दोनों ने काशीनगर में संसार बसाया और अतिथि पूजा में निरत हो कुछ वर्ष सुख पूर्वक बिताया। अनन्तरकाल में पता चला कि वह ब्राह्मणी नहीं है। उसके हाथ का छुवा खाने के कारण और उसके साथ कुछ दिन बिताने के कारण काशी के पण्डितों ने प्रायश्चित्त माँगा। एक पण्डित ने राम नाम स्मरण करने से सर्व पाप का विनाश बताया। किन्तु कुछ पण्डितों ने स्वीकार नहीं किया। तब लक्ष्मीश्वर ने प्रत्यक्ष हो राम नाम के माहात्म्य को समझाया और अंत में इस प्रकार कहा –

शिवनाममु मन्नाममु
भवतारण कारणमुलु पंचजनुनकुन्
भुवि विष्णुडे शिवुण्डगु
शिवुडे विष्णुड मौनि शेखरुलारा ! ।।
ननु गोल्चुचु हरु निन्दिं
चुनतण्डुनु हरुनि गोल्चचु नन्नु दूषिं
चु नतण्डु निरयवासत
दनुश्वर कर शिशिरकरुलु गलियंदाकन् ।।[4]

अर्थात् हे मुनिशेखर ! शिव नाम मेरा नाम है। इस भाव को पार करने के कारण पंचजन को इस धरती पर विष्णु ही शिव है और शिव ही विष्णु है। मेरी पूजा करते हुए शिव की निन्दा करने वाले शिव की पूजा करते हुए मेरा दूषण करने वाले कलियुग की समाप्ति तक पीड़ाग्रस्त होंगे।

निन्दा का निरासन वामन पुराण

वामन पुराण में श्री हरि के साथ मिलकर देवताओं ने शिव-दर्शन के लिए मन्दर गिरि पर प्रस्थान किया। वहाँ शिव जी अदृश्य हैं। तब श्रीहर ने एक व्रत का आचरण करवाया। पश्चात् विष्णु ने शिव जी को अपने में ही दिखाया। शिव-केशव की एकाकारता सिद्ध हुई।

सार्धद्वयनयन मण्डितम्बै बङ्गारु कुण्डलम्मु
लतोडन् जटा गुडाकेश गरुड ध्वजम्बुलतो वे
लसि माधवयुतमै हार सर्प भूषणम्बुल राजिल्लि
गौराजिनाच्छादित कटि स्थलमुन नोप्पि सुदर्शनासिहल
शाङ्ग राजितंबयि पिनाकशूला जगवम्बुल देजरिल्लि,
कपर्द खट्वाङ्ग कपाल शङ्खाराव सहितमगु ना हरि
हरमय स्वरूपम्बु जूचि देवतलच्चेरुवन्दिरि ।।[5]

अर्थात् नयन युगल सुशोभित हो, स्वर्ण कुण्डल से सुविराजित हो जटाओं, खुले केशों से मण्डित हो, गरुड़ ध्वजवाले हो, मणि हार तथा सर्वहारों से विलसित हो गौर तथा अजिनावलि से कटितट आच्छादित किये हुए सुदर्शन चक्र, शार्ङ्ग पिनाक तथा त्रिशूल के तेज से विराजित हो जटाओं खट्वाँग कपाल तथा शंखारव से मण्डित होने वाले उस हरिहर स्वरूप के दर्शन कर देवतागण आश्चर्यचकित हुए ।

आगे चलकर श्रीहरि ने देवताओं को शिव का माहात्म्य समझाया । दोनों में भेद की कल्पना करना गलत माना । सदा एकाकार में रहना परमार्थ कहा । ऐसी मूर्ति के दर्शन करना ज्ञानी को साध्य होगा । तभी वह परमज्ञानी माना जाएगा । इसी प्रकार शिव ने कहा कि श्रीहरि और अपने में कोई अन्तर नहीं है । विष्णु भक्ति रहित हो शिव साधना करने वालों की अपेक्षा उभय में श्रेष्ठता मानने वाले ही शिव जी को प्यारे लगते हैं। एक बारमहा पाशुपत तथा गणेश वर्ग शिव संदर्शन के लिए निकले । तब शिव ने पाशुपतों की आवभगत की । गणेश वर्ग का आलिंगन नहीं किया । शैलादि योगी ने पूछा तो बताया कि गणेश वर्ग ने कभी हरि निन्दा की थी, इसलिए वे अप्रिय हो गये ।

हरुडनौ ननु भक्ति नर्चिचि वैष्णव
भव्यपदम्बु गर्वम्बु तोड
नलरि निन्दिंचितिरट्टि दौ ज्ञानम्बु
चेत सादृश्यम्बु चेडेनु मीकु ।।
नजुडुन भगवन्तुडगु हरिनेनौदु
नित्युडनैनट्टि नेने चक्रिनगुदु
मा यिरुवुरि यन्दु लेदु विशेष
मेसगे रेंडुग निट्टु लेकमूर्ति ।।
कान भक्ति भाव गण्युलु नर्तसिहु
लैन भूत गणमलार ! नेनु
तेलिय बडिति जक्रि तिविरि मीचे देलि
यंग वडनिवाड् नयुयेजुड ।।

हरि विनिन्दितुण्डुनय्ये मीचेनट्टि
कारणमुन मीकु ज्ञानशून्य
मय्ये नन्दुवलन नालिङ्गनम्बु
नावलन लेनिदय्ये वास्तवमुग ।।[6]

अर्थात् मैं हर हूँ। भक्ति के साथ मेरा अर्चन कर गर्व के साथ वैष्णव भव्य पद की निन्दा जो करते हैं उनकी सादृश्यता बिगड़ जाती है। मैं अज भगवान होने के कारण हरि नित्य तथा चक्री मैं स्वयं हूँ। हम दोनों में विशेष भेद नहीं है। नर्रसिंह स्वरूपी मुझे जान लिया। किन्तु मुझ में स्थित चक्रि को जान न पाये। आप लोगों से हरि निन्दा हो गई। आप ज्ञान शून्य हुए। इस कारण आप लोगों से मैंने आलिंगन नहीं किया। यही वास्तविकता है। उनकी प्रार्थना सुनकर शिवजी ने फिर से इस प्रकार समझाया।

कनबडु नस्मद्विग्रह
मुन मधुसूदनुडु दिव्य पुरुषुण्डु महा
दनुज हरुडैन श्रीहरि
घनतरमगु दीप्तितोड़ गणवरुलारा !!
विनुडी लोकमु चेप्पुने
कन नेवरिकिनै न भेदगतिवे ल्गोडि न्रो
वनु——? विस्मयमगु मीकर
मुन नर्धमु निडनु भेदमुन नलरुट चेन् ।।[7]

अर्थात् हे गणवर ! मेरी मूर्ति का प्रकट रूप आपने देखा जिसमें मधुसूदन जो दिव्य पुरुष हैं, महा राक्षस संहारक श्रीहरि घनतर दीप्तियों से विराजमान हैं, और सुनो ! इस लोक में भेद गति में प्रवर्तित रूप का अभेद रूप विस्मय कारक है, जो आपके सम्मुख विलसित है। प्रकट में भेद है और अव्यक्त में अभेद है। इसी तत्व को जानने में सुज्ञान है।

ऐसा कहकर परमशिव ने अपना रूप दिखाया। आपने कहा "अर्ध विष्णु कालारि विग्रहाकलितमैन मूर्ति गनिरि:" अर्थात् अर्ध विष्णु सहित शिव की मूर्ति के दर्शन किये। परमेश्वर को भेद रहित जाना।

इस कथा के बाद पुलस्त्य मुनि ने नारद से इस प्रकार कहा–

कमललोचन पार्वती कान्तुलेक
रूपमुन नोप्पि नित्यमु रूढ़ि वेलय
देलिवि लेनट्टि मनुजु लीतेरगु नेरुग
रैरि भिन्नत्व सरणुल नलरु मतुल ।।[8]

अर्थात् कमलापति तथा पार्वतीपति को एक रूप में विलसते देख मनुष्य

लोग मूर्ख न होकर परमेश्वर के विभिन्न शैलियों में दर्शन जानकर प्रबुद्ध होने चाहिए।

शिवाद्वैत – शिव पुराण

श्री शिवपुराण में शिव ने दक्ष पर करुणा कर इस प्रकार उपदेश दिया।

वेन्नु नोल्लक नन् गोल्चुचुन्नवाडु
नन्नलिगि वेन्नुमिन् गोल्चुचुन्नवाडु
वीर लिर्वुरु जमु वीट वेगुचुन्दु
रम्बुज हितुण्डु जन्द्रुडुन्नन्त दनक।
कावुन नीविक भेदबंद्धिन् बासि ज्ञानिवै युपासिम्पुमु ।।[9]

अर्थात् विष्णु को छोड़कर मेरे भजन करने वाले और मेरी उपेक्षा कर शिव की पूजा करने वाले, जब तक सूर्य और चन्द्र रहेंगे तब तक यम के बाण से पीड़ित होंगे। इसलिए भेद बुद्धि को छोड़कर तुम ज्ञानी हो उपासना करो।

एकाकारता का निरूपण–हरिवंश पुराण

तिक्कना ने हरिवंश में हरिहर का एकार्थ को मूल में प्रयुक्त किया। कैलाश गिरि पर शिव-केशव के समागम सन्दर्भ में मुनियों ने एक मूर्ति के दर्शन किये। दोनों ने परस्पर स्तुति कर ली।

नमो हराय हिषाय, नमो हरिहराय च।
नमो अघोराय घोराय, घोर-घोर प्रियाय च ।।[10]
नमस्ते देवदेवाय नम आकाश मूर्तये।
हराय हरि रूपाय नमस्ते तिम्म तेजसे ।।[11]

इन दोनों श्लोकों में श्री कृष्ण ने शिव की स्तुति की। इसी प्रकार शिव ने श्री कृष्ण की प्रशंसा की।

अचिन्त्याय सुचिन्त्याय तस्मै चिन्त्यात्म नेनमः।
हराय हरि रूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मदायिने।।[12]

प्रथम श्लोक में हरिहर शब्द एक पद में सम्बन्ध हुआ है। शिवकेशव का अभेद सिद्ध करने में हरिहर शब्द को घटित करने हेतु हरिवंश की रचना की। हरिवंश में शिवकेशव की एकाकारता का निरूपण किया गया।

पद्मपुराण

पद्मपुराण में विष्णुभक्ति का माहात्म्य प्रकट करते हुए सूत-महर्षि ने मुनिवरों से इस प्रकार कहा।

हरिहरुल नभेदम्बुग
नरसेडि पुण्यात्मुलगुदु र पुनर्भवुल।
परम रहस्यमु देलियक

हरिहरुलकु भेदमेन्तु रज्ञुलु जगतिन् ।।
हरि कण्टे हरुनिवेरग
बरिकिंचेडि वारु नरक पतितुलगु दु
र्भर यातनलनु गुड्तुरु
हरि हरुलं दोकडु गूड नरयडु वारिन् ।।[13]

अर्थात् हरिहर में अभेद जानकर पुण्यात्मा लोग पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं। इस रहस्य से अनभिज्ञ रहकर हरिहर का भेद इस जगत में लोग मानते हैं। हरि को हर से अलग मानने वाले नरक में जाकर दुर्भर यातनाओं को भोगते हैं। उनकी रक्षा करने हरिहर में कोई नहीं जाता।

लिंग पुराण

इसी प्रकार लिंग पुराण तथा नृसिंह पुराण में नृसिंह शरभ तेज से हार गया। उस सन्दर्भ में कहा गया।

नीरमन्दुन नीरम्बु क्षीरमन्दुन क्षीरमुनु
घृतमुन्दुन घृतमुवोले
सर्वगुण्डगु विष्णुण्डु शम्भुनन्दु
गलिसि भेदम्बु लेकये चेलगुचण्ड् ।।[14]

अर्थात् नीर में नीर हो क्षीर में क्षीर हो, घी में घी हो सर्वान्तर्यामी विष्णु एक साथ हो भेद रहित हो शम्भु के साथ विचरता है।

एकतत्त्व क्रियाभेद-ब्रह्मपुराण

ब्रह्मपुराण में विष्णु और मार्कण्डेय संवाद प्रसंग में एक तत्त्व की व्याख्या हुई।

हरुनिन् स्थापिंचिन
मुरहरुनिन् नन्नुगूडमुदमुन स्थापिं
चि र्हि बूर्जिचिन यट्लुरु
फलमुं बोंदु मत्युंडौ मुनिनाथा ।।
मा यिरुवुरकुं भेदं
बे येडलन् लेदु सुम्म हीनमती ! मा
यिर्वुंर भावमु ला
म्नाय विधिन् दलप नेकमनि येरुगनगुन् ।।

अर्थात् हे मुनि नाथा ! हर की स्थापना के साथ मुरहर की भी स्थापना कर पूजा करने पर मृत्यु के बाद दोनों का फल एक साथ प्राप्त करेगा। हम दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है। हीनमति ! आम्नाय की विधि से विचार कर हम दोनों का भाव एक है जानो !

ओक तत्त्वमे द्विविधिमुग
नोक कार्यमु कोरकु जेयु नोप्पु द्विविधमै
नकलज्ञुडोकडे रुद्रुं
डोकडतडे विष्णुवात डोगि रुद्रुडनन् ।।
अनिलाकशमुलकु वले वनजाक्ष महेश्वरुलकु वरलदु भेदं ।
बनि येरुगवय्य ज्ञानम्बुन नोप्पिनिवारु मन्दबुद्रुलु जगतिन् ।।[15]

अर्थात् एक ही तत्त्व दो प्रकार विलसित थे। एक ही तत्त्व सिद्धि के लिए दो तत्त्वों में प्रकट हुआ। सर्वज्ञ एक ही है। कहीं रुद्र का रूप धरता तो कहीं विष्णु का। अनिल और आकाश के समान विष्णु और महेश्वर में भेद नहीं होता। इस तत्त्व को ज्ञानी लोग जानते हैं जो नहीं जानते वे इस जगत में मन्दमति कहलाते हैं।

त्रिदेवता में अद्वैत सिद्धि-भागवत पुराण

भागवत पुराण में शिव जी को प्रसन्न करने हेतु विध्वंस हुआ। दक्षयज्ञ में श्री नारायण ने भाग लिया और दक्षादि से प्रशंसित हुए। आगे कहा कि ब्रह्मा, रुद्र, आदि से अलग नहीं है।

ऐसी भेद-बुद्धि रखने वाले –

जगमुनकु मूलहेतुवु साक्षि नात्म
नीशुड नमेयुड स्वयं, प्रकाशुडनगु
नेन ब्रह्मनु शर्वुण्ड निक्कुवम्बु
विंटे दक्ष प्रजापती ! द्विज वरेण्य !
अद्वितीयमु गेवल ममलमैन
या परब्रह्ममुन नज्ञुडैन वाडु
ब्रह्म रुद्रल भूत वर्गमुलदानु
भेद भावम्बुनं जूचु विप्रवर्य !
क्रम गतिन् सर्वभूतात्मुलमुनु नेक
भावुलमुनै चेलंगु मा मूवुरकुनु
भेद मेव्वडु गनकुंडु विप्रवर्य !
यातडु कृतार्थुडै शान्ति नधिगमिंचु ।।[16]

अर्थात् जगत् का मूलकारण साक्षीभूत आत्मा, ईश, अमेय, स्वयं प्रकाश मैं हूँ। ब्रह्मा और शिव सचमुच मैं हूँ। दक्ष प्रजापति ! द्विजवरेण्य सुनो ! अद्वितीय केवल अमल उस प्रकाशमान परब्रह्म के प्रति कोई ब्रह्मा, रुद्र तथा भूतवर्ग मानते हुए भेद-भाव नहीं रखना चाहिए। क्रम गति से सर्व भूतात्मा होकर एक भाव में हम तीन विचरण करते हैं। जो विप्रवर इस भेद को नहीं मानता, कृतार्थ ो शान्ति को प्राप्त करता है।

विष्णुपुराण

विष्णुपुराण में श्री पराशर ने मैत्रेय को जगत् की सृष्टि-स्थिति-लय का मूलाधार पुरुष के सम्बन्ध में विदित किया। सर्गादि में श्रीमन्नारायण स्वयं सृष्टि हेतु रजोगुण को धारण कर ऋग्वेदमय वाला चतुर्मुख ब्रह्मा बनता है। लोक रक्षण के लिए सत्यगुण को धारण कर यज्ञ मूर्ति हो विष्णु बनता है। संहार हेतु तमो गुण को धारण कर शम स्वरूप में रुद्र बनता है। इस प्रकार परब्रह्म तत्त्व के रूप में विष्णु को मानकर विविध कार्य के निर्वाह हेतु विविध रूप धारण करने का विधान स्पष्ट करता है।[17]

धर्माद्वैत-सत्यधर्म — मार्कण्डेय पुराण

अष्टादश पुराणों में सातवाँ पुराण मार्कण्डेय पुराण है, जो शैव, वैष्णवादि किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित न होकर समस्त जन का आदरणीय बना हुआ है। पुराण कर्ता मारना ने अपने गुरु तिक्कना के निर्देशित आदर्शों का अनुगमन करते हुए सब मतों के समन्वय को ध्येय माना। इस ग्रंथ में देवी-स्तुति प्रसंग में महिसासुर मर्दन घटना के वर्णन में परदेवता के माहात्म्य को प्रस्तुत किया गया। महिषासुर मर्दनी, दुर्गा, शक्ति आदि के प्रयोग से इसे शैव सम्प्रदाय का नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वह देवी त्रिमूर्ति की पत्नियों से परे का स्थान ग्रहण करने वाली पराशक्ति है, जिसके नारायणी, वैष्णवी आदि वैष्णव साम्प्रदाय विशेषपरक नाम भी व्यवहृत है। महिषासुर मर्दन की कथा इस पुराण में वर्णित होने मात्र से यह ग्रंथ शैव या शाक्तेय पुराणों में परिगणित नहीं होता।[18]

मार्कण्डेय पुराण तेलुगु में अनूदित प्रथम महापुराण है। मारना तिक्कना-सोमयाजी का शिष्य है। वैदिक धर्म के अन्तर्गत धर्माद्वैत का प्रचार करने वाली एक विशिष्ट प्रणाली कालक्रम में मार्कण्डेय पुराण में रूपायित हुई है।

मार्कण्डेय पुराण ब्रह्मर्षि के नाम से अवतरित एक मात्र पुराण है। वह किसी देवता की प्रधानता पर बल न देते हुए विशेष रूप से ज्ञान प्रधान रहा। इसमें हरिहर चतुरानन, अग्नि, दुर्गा, वनजा, सरस्वती, इत्यादि देवताओं के माहात्म्य का प्रसंगानुकूल वर्णन किया गया। इस पुराण की रचना से तिक्कना के हरिहरद्वैत को अपार बल मिला। चातुरवर्ग, चतुराश्रम की व्यवस्थाएँ सदाचारों का विधान, पुण्य-पापों का विवेचन, वेदविहित कर्माचरण, अष्टांग योग-विधि, ब्रह्म ज्ञान साधन के दार्शनिक आधार, धर्मशास्त्र कर्ता मनु आदि विषयों के चरित आदि प्रसंग इस पुराण में अभिवर्णित हुए जो वैदिक धर्म का प्रबोध करते हैं।

वर्ण व्यवस्था, वैदिक आचार तथा कर्मकाण्ड की अवहेलना करने वाले वीरशैव आदि कट्टर सम्प्रदायों के प्रभाव से तत्कालीन जनता का उद्धार करने के लिए इस पुराण की रचना की गई। इसके अतिरिक्त काकतीय वंश के शासनकाल में देवी की उपासना प्रबल हुई। देवी भक्तों को वैदिक धर्माचरण की ओर आकर्षित करने के लिए देवी स्तुति तथा देवी प्रशस्ति को मार्कण्डेय पुराण में

महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया । इस प्रकार 14 वीं शती के प्रथम-चरण में काकतीय राज्य के धार्मिक, सामाजिक, परिस्थितियों को वैदिक धर्म की ओर अभिमुख करने हेतु जनता में धर्मनिष्ठा का प्रचार करते हुए सामंजस्य पूर्ण वातावरण के निर्माण में इस पुराण ने अपना योगदान दिया जो तिक्कना द्वारा प्रचारित धर्माद्वैत तत्त्व का पोषक सिद्ध हुआ । इसकी पुष्टि प्रो. विलसन के विचारों से हो जाती है । प्रो. विलसन ने विष्णुपुराण के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में मार्कण्डेय पुराण के माहात्म्य को प्रकट किया ।

हरिहर अभेदतत्त्व के प्रचार प्रसार में निष्ठा रखने वाले गन्न सेनापति को वह समर्पित हुआ । गन्न सेनापति काकतीय राज्य के द्वितीय प्रतापरुद्र देव का कटक-पालक था । निरहंकारी कला चतुर बुधजन बन्धु के रूप में वर्णित सुन्दर सेनापति होने के साथ दान कर्ण के रूप में प्रसिद्ध हुए । 'गन्न' शब्द कर्ण का विकृत रूप माना जाता है । मेरे विचार में 'गन्न' शब्द कृष्ण का विकृत रुप है, जो आज भी कन्नया के रूप में प्रचलित है । ऐतिह्य कहता है कि रानी रुद्रमदेवी के शासन काल में गोन गन्नारेड्डी नामक सेनापति था जो वन प्रान्त में रहते हुए सीमा रक्षा की जिम्मेदारी सर पर लिये हुए था । आप जनता में ठगी के रूप में प्रसिद्ध हुए किन्तु शत्रु भयंकर, माने गये । शत्रु सेना को वन में भटकाकर राज्य में प्रवेश करने से रोकते थे और राज्य में यदा कदा होने वाले आन्तरिक युद्धों (सिविल वार) का प्रतिरोध करने वाले वीर योद्धा थे । नाना प्रकार के वेष धारण करते हुए जनता के बीच में रहते हुए जनमानस को उनके विचारों को स्वस्थ रखने के लिए यह प्रच्छन्न सेनानी थे । आप जैसे समन्वयकारी, प्रकृति वाले महापुरुष का हरिहर के प्रति भक्ति भाव रखना सहज है और कविवर मारना के द्वारा अनेक प्रकार से कीर्तित होने में आश्चर्य नहीं । आपकी अद्वैत भावना को पुष्ट करने वाले प्रमाण द्रष्टव्य हैं ।

"विष्णुभक्ति परिग्रहा" ।[19]
नितान्त भक्ति समुपासितरुद्र ।[20]
गाढ भाजन सप्रसन्न गरुडवृषांका ।[21]
विहारहारि मराला लोक स्तुत्य सुशीला ।[22]
श्रीकण्ठ श्रीशभृत्य ।[23]

गन्नया सेनापति की भक्ति का परिणत क्रम मारना के सम्बन्ध से स्पष्ट होता है, जो एक भक्त की परिणाम स्थिति विदित करती है । भक्ति परिग्रहण, नितान्त भक्ति भावना, तीव्र भजनासक्ति, भाव समाधि, देवता-प्रसन्नता एवं भक्ति की फलसिद्धि आदि सोपान हैं जिनके द्वारा कोई भी श्रीकण्ठ श्रीशभृत्य भक्त, अद्वैत सिद्धि को प्राप्त करता है ।

मार्कण्डेय पुराण में उपाख्यानों के प्रसंगों के अनुसार अद्वैत दर्शन का प्रबोध

किया गया। सर्वधर्म के मूल में स्थित सत्यधर्म का प्रबोध हरिश्चन्द्रोपाख्यान तथा द्रौपदेयोप कथा के द्वारा किया गया।

सत्यमुन नुन्न दीधर
सत्यमुन वेलुगु धरणि सत्यमुनो ता
नित्यमयि स्वर्गममरुनु
सत्यमु धर्ममुललो ब्रशस्तम् बनधा !

अर्थात् हे अनघ ! यह धरा सत्य पर टिकी हुई है। धरती सत्य से प्रकाशित होती है। सत्य के द्वारा ही नित्यमयी हो स्वर्ग प्रशस्त होता है। सभी धर्मों में सत्य ही महान् है ।

समीक्षा

पुराणों के अध्ययन से विदित होता है कि शिव-केशव अलग-अलग तत्त्व नहीं हैं। वामन पुराण में शिव-केशव दोनों ने अपने अनुयायियों को अपनी एकरूपता का तत्त्व समझाया। भेद-भाव केवल अज्ञान का विलास बताया। नारसिंह एवं लिंग पुराण में हरिहर एक रूप में वर्णित हुए। कौमारिका खण्ड, शिव पुराण में शिव जी ने विष्णु के साथ अपनी एकात्मता को प्रकट किया। गर्ग भागवत, ब्रह्म, धर्म खण्ड में विष्णु ने शिव के साथ अपनी अभेदता व्यक्त की है। पद्मपुराण में शिव-केशव के भेदभाव का खण्डन किया गया। भागवत में विष्णु स्वयं कहते हैं कि मैं त्रिमूर्त्यात्मक हूं। इन तीनों में भेदभाव करना अनुचित है। विष्णुपुराण में स्पष्ट हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र अवतार श्रीमन्नारायण के त्रिगुणात्मक-लीला विशेष मात्र हैं। पुराण शिव-केशव के नाम से व्यवहृत होकर भी वर्णन के द्वारा हरिहर में अभेदता सिद्ध करते हैं। विचित्र बात यह है कि शिव को विष्णु रूप में विष्णु को शिव रूप में दर्शाते हैं। किन्तु ब्रह्मा को विशेष नहीं दर्शाते। त्रिमूर्ति में अद्वितीय तत्त्व प्रकट हुआ। जो भी हो पुराणों में शिव-केशव का अर्चा रूप नहीं होना ही इसका मूल कारण हो सकता है।

इस लोक का जीवन सुखमय हो। आनन्ददायक हो ऐसी इच्छा से लोकरक्षक विष्णु से कोई भक्ति करता है। इस संसार से मुक्ति दिलाने के लिए इन पीड़ाओं बन्धनों से बचाकर ज्ञानोदय करने के लिये प्रार्थना कर उस परवशता में लय चाहता है। तब वह शिव की पूजा करता है। अब तीसरी रीति में पूजा नहीं दिखाई देती। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सृष्टि, स्थिति, लयकारक हैं। तीसरी स्थिति में ब्रह्मा की प्रार्थना क्यों करें ? इसलिए कि उसे पुनर्जन्म मिले और फिर से दुःख उठाए। ऐसा कोई नहीं करता। प्रायः यही कारण है कि शिव और विष्णु की पूजा होती है। ब्रह्मा की अर्चना उपेक्षित है। पुराणों का इस सन्दर्भ में सारांश यही है कि हरिहराभेद परमात्मा परक है। शिव, केशव को एक मूर्ति में और आगे चलकर तीनों तत्त्वों का

एक परतत्त्व में दर्शन करना पुराणों का उद्देश्य रहा, परन्तु हर पुराण में देव विशेष की विशिष्टता को प्रकट करते हुए मूलतत्त्व को अन्तिम सत्य के रूप में जानने के लिए प्रेरित किया गया।

संदर्भ सूची

1. नृसिंहपुराणमु–उत्तर भागमु; आश्वास 1, पद्य 225, 226, 227
2. गर्ग संहिता–अश्वमेध खण्ड, पद्य 774
3. श्री मदान्ध्र स्कान्द महापुराण–कौमारिका खण्ड; आश्वास 3, पद्य 43, 44, 45
4. स्कान्द पुराणमु–आश्वास 4, पद्य 279, 280
5. तेलुगु वामन पुराणमु–अष्टम स्कन्धमु, व. 17
6. वही–पद्य 357, 358, 363, 365
7. वही–पद्य 369, 370
8. वही–पद्य 376
9. शिव पुराणमु–सती खण्डमु; आश्वास 1, पद्य 417, 419
10. हरिवंशमु, आश्वास 87, श्लोक 17
11. हरिवंशमु; आश्वास 89, श्लोक 21
12. हरिवंशमु; आश्वास 87, श्लोक 16
13. श्री मदान्ध्र पद्मपुराणमु–आदि खण्ड, पद्य 590, 591
14. श्री मदान्ध्र लिंगपुराणमु–आश्वास 7, प. 247
15. तेलुगु वामन पुराण–अष्टम् स्कन्ध, प. 376
16. श्री मदान्ध्र भागवतमु–श्रीराम नृसिंहमूर्ति कवुलु स्कन्ध 4, प. 214, 216, 218
17. विष्णुपुराण (भावनारायण) द्वितीयांश वचन 155
18. श्री पिंगलि लक्ष्मीकान्तम्–आन्ध्र साहित्य चरित्र, पृ. 262 (गंगाधर पब्लिकेशन्स, विजयवाड़ा–1985)
19. मार्कण्डेय पुराण–आश्वास–2, प. 343
20. वही, आ. 3, प. 393
21. वही, प. 394
22. वही, आ. 4, प. 1
23. वही, आ. 8, प. 289

चतुर्थ अध्याय

हरिहर का स्वरूप

तिक्कना

तिक्कना ने हरिहरनाथ की सन्निधि में अपने आपको सर्वात्मना समर्पित किया और शरणागति का महत्त्व समझाया।

शरणागत संश्रित भय
हरणा ! सूर निकर शेखरानार्घ मणि
स्फुरणा परिचय रंजित।
चरणा ! वन बालिका भुजंगाभरणा ![1]

संकीर्तन के समान इन्द्रियों को विश्रान्ति प्रदान करते हैं। शब्द और अर्थ दोनों मैं पहले – मैं पहले कहते हुए दौड़ लगाते हैं–

श्री गौरी पल्लव पुट
योगाश्रम मज्जरी समुज्ज्वल मूर्ती !
योगीन्द्र सन्ततान्त
र्याग परीपाक रूप हरिहरनाथा ![2]

कविवर तिक्कना ने अपने मन में प्रतिष्ठित हरिहर मूर्ति का वर्णन निम्न प्रकार किया –

श्रीयन गौरिनाबरगु चेल्वकु चित्तमु पल्लविप भ
द्रायित मूर्तियै हरिहरंबगु रूपमु दाल्चि विष्णु रू
पाय नमः शिवाय यनि पल्केडु भक्तजनंबु वैदिक
ध्यायित किच्चमेच्चु पर तत्त्वमु गोल्चेद निष्ट सिद्धिकिन्।[3]

भाव यह है कि श्री (लक्ष्मी) अर्थात् गौरी नाम से विलसित देवी का चित्त पल्लवित हुए जैसा भद्रता प्रदान करने वाले हरिहर-रूप धारण करने वाले का, विष्णु रूपाय नमः शिवाय कहते हुए वैदिक मूर्ति का ध्यान करने वाले भक्तजन की अभीष्ट प्रदान करने वाले की अर्चना करता हूँ।

दोनों रूपों में प्रतिभासित होते हुए भी परे हो दर्शन देने वाले उस करुणा रस मूर्ति का अवलोकन करें –

करुणारसमु पोंगि तोरगेडु चाड्पुन
शशिरेख नमृतंबु जालुवार

हरिनील पात्रिक सुरभि चंदनमुन
गति नाभि धवलपंकजमु मेरय ।
गुरियैन चेलुवुन नेरसिन लोक र
क्षण मनंग गलंबु चाय दोप
प्रथमाद्रि दोतेंचु भानु बिंबमु ना
नुरम्मुन गौस्तुभ नेत्न मोप्प
सुरनदियुनु कालिंदियु बेरसिनट्टि
कांतिपूरंबु शोभिल्लु शान्तमूर्ति
नामनंबु नानंद मग्नमुग जेय
नेलमि सन्निधि सेसे सर्वेश्वरुंडु ।।[4]

तात्पर्य यह है कि करुणारस उच्छालित हो शशिरेखा द्वारा अमृत की धारा प्रवाहित है। हरिनी लचषक में सुरभि चन्दन की गति नाभि में धवल कमल सुशोभित है। असीम विश्वास एवं स्नेह विलसित हो, लोक रक्षण हेतु जिसका कण्ठ नीला बना हुआ है। पूर्वाद्रि से उदित होने वाले भानु बिम्ब के समान वक्षस्थल पर कौस्तुभ रत्न सुशोभित हो रहा है। गंगा और यमुना के सम्मिलित कांतिपुंज से विलसित होने वाले शान्त मूर्ति हो, आनन्द भरने हेतु मेरे मन को निलय बना लिया हो, उस सर्वेश्वर का नमन करता हूँ। सुर नदी तथा कालिन्दी के सम्मिलन से बनी कान्तिपुंज समान शोभित होने वाले शान्ति मूर्ति हो। हरिहर स्वामी ! यहाँ दो नदियाँ शैव तथा वैष्णव मतों के प्रतीक बन गईं। आप दोनों के शरीर वर्णन भी इसी रीति का है। जब दोनों का सम्मिलन हो गया तो उनकी कान्ति दोनों से भिन्न प्रतीत होती है। इन दोनों में एक भी नहीं, दोनों से परे होती है। इस संगम में यह गंगाजल है और यह यमुना जल है, ऐसा भेद जिस प्रकार नहीं कर सकते। यहाँ न गंगत्व है न यमुनत्व। जलतत्त्व मात्र है। यही हरिहर तत्त्व का दिव्य-तत्त्व विलसित होता है। जलकण में उदजनि है, आम्लजनि (प्राणवायु) है, दोनों के सम्मिलन से जल (एच2ओ) बनता है, वही परब्रह्म तत्त्व है। तब इसमें कान्ति गर्भ होने पर भी शीतल गुणवाला दयाशाली दोनों वायुओं से परे भिन्न रूप बन गया है। यही हरिहरनाथ तत्त्व का शास्त्रीय दृष्टिकोण है।

इस कांतिपुंज रूपी हरिहर तत्त्व में शैव-वैष्णव चिह्नों की विशेषता लुप्त हो गई। इस मूर्ति में वैष्णव श्रृंगार नहीं, शैव का रौद्र नहीं। वह शान्त स्वरूपी जो सर्वरस में परिवर्तित होने वाले तत्त्व में रूपायित हुआ। आनन्द ही इसका फल है। सर्वेश्वर हरिहरनाथ शान्त रस मूर्ति है। तिक्कना का काव्य शान्त रस प्रधान महाभारत है। कवि का चित्त तथा प्रकृति भी इसी प्रकार की है।

साधक एवं पंडित दोनो में अन्तर होता है। साधक के वाक्य में अनुभव

विस्पष्ट बोलता है। उसके वाक्य सीधे तात्त्विक अनुमति को प्रकट करते हैं। हरिहरनाथ की भावना करने पर - योग शास्त्र सम्बन्धी रहस्य विदित होते हैं।

इस शरीर में षट्चक्र हैं। सहस्रार हैं। साधक कुंडलिनी को जागृत कर सुषुम्ना द्वारा सहस्रार तक ले जाता है। यह कुण्डलिनी यहाँ सदा निसृत होने वाली मधु बिन्दुओं का आस्वाद पाकर आत्मानन्द पाता है। करुणा रस से आप्लावित हो शशिरेखा से अमृत बिन्दु टपकती है, ऐसा तात्पर्य व्यंजित होता है। अश्वमेध के पश्चात् महाब्ज, मधुरात्मा, दर्शितानन्द मूर्ति आदि के वर्णन से सहस्रदल कमल, शशिकला ध्वनित होता है।

हरिनीलचषक में सुरभि चन्दन की गति नाभि में धवल–पंकज का तात्पर्य यह है कि नाभि में पंकज का स्थान मणिपूरक चक्र का है। कण्ठ में गरल चिन्ह कहा गया है जो विशुद्ध चक्र है, यह स्थान आकाश सम्बन्धी है। इसी कारण नीलेपन में भी साम्य है। वक्षस्थल अनाहत चक्र का स्थान है। इस चक्र की कर्णिका में सूर्य होता है। यहाँ कौस्तुभ रत्न की तुलना सूर्य से की गयी है। ब्रह्म दण्ड में सुषुम्ना के साथ इड़ा, पिंगला नाड़ियाँ होती हैं। इन्हीं को गंगा, यमुना कहते हैं। सुषम्ना को सरस्वती माना गया। ये तीन नदियों का भ्रूमध्य में संगम होता है। इसे त्रिवेणी संगम कहते हैं। यह आज्ञा चक्र का स्थान है। सुरनदी, कालिन्दी के सम्मिलन से बनी 'कांतिपुंज' से सुशोभित शान्त मूर्तियों का सही संकेत है। दूसरी जगह त्रियुग कलाय वीथी दीप्ति संचार लीला, कहकर पूर्णरूप से षट्चक्रों के योगदान को सिद्ध किया है।

तिक्कना का उद्देश्य विष्णु की प्रशस्ति या शिव की प्रशस्ति को प्रकट करना नहीं है। दोनों से परे शिव केशवाद्वैत तत्व को प्रशस्त करना है। कई प्रसंगों में इसका स्पष्टीकरण किया गया।

> शिवुडवु नीव् जगमुनकु
> शिवमोनरिंपग वलदे चेयुमुक्रोध
> प्रविहति विष्णुडनगा
> शिवुडननोकडौट दिव्यचित्तम येरुगुन् ।।[5]

अर्थात् आप जग के लिए शिव हैं तब मंगलमय होना निश्चित है, यह क्रोध कैसा ? विष्णु से तात्पर्य ही शिव होता है। दिव्य चित्तवाले शिवकेशव को एक जानते हैं।

> निनु नेव्व डेरिगे नातडु
> ननु नेरिगिनवाड़ निन्नु नेम्मिग सेविं
> चिन नदियु नन्नु गोल्चुट
> यनुवादित लेदु भेद मरयग मनकुन् ।[6]

तब विष्णु ने कहा जो आपको जानता है मुझे भी जानने वाला हो जायेगा। आपकी सेवा श्रद्धापूर्वक जो करेगा तो मेरी सेवा हो जायेगी। हम दोनों के बीच में विचार करने पर कोई भेद नहीं है।

उपर्युक्त शिव और विष्णु की चर्चा विश्वामित्र तथा चण्डाल के बीच वृत्त को नाटकीय रूप में वर्णित देखते हैं। इन्हीं परिस्थितियों में आधुनिक भारत घेरा हुआ है। अपने जीवन परिणाम को बढ़ा रहे हैं या सम्पदाओं का भोग कर रहे हैं। इस प्रकार का विचार आत्मघातक सिद्ध होगा। हम धर्मच्युत को सम्पदा प्राप्त करना और उससे सुख की प्राप्ति होना असम्भव है। इसके अतिरिक्त महाभारत में वर्णित परमार्थ तत्त्व अद्वैत है या विशिष्टाद्वैत है ? प्रश्न उठता है। मध्वाचार्य जी ने अपने "भारत तात्पर्य निर्णय" नामक ग्रन्थ में सिद्ध किया कि भारत की रचना का परमार्थ विष्णु का पारम्य है। किन्तु ध्यान पूर्वक चिन्तन करने पर विदित होता है कि तिक्कना का भाव शिव विष्णु की एकता की सिद्धि है। इसका प्रमाण महाभारत में अनेक प्रसंगों के द्वारा मिल जाता है।

श्री हरिहरनाथ को शिव केशव की मूर्ति के रूप में भावना करना आराधना, गम्यता हेतु है। तब वह भक्ति गम्य होता है। जब वह योग गम्य होता है तो आकार रहित होता है और जो महर्षि व्यास के समस्त वाङ्मय का लक्ष्य हरिहर नाम है।

श्री संपादि पदांबुज
नासाग्र निवास रसिक नादामृतध।
रासार रूप वेद
व्यास व्यंजित विहार हरिहरनाथा !

वेदव्यास के वचन से तात्पर्य है, ब्रह्मसूत्रों का सार है। ब्रह्मसूत्रों में जिस परतत्व को निर्देशित किया गया। वही तिक्कना का लक्ष्य हरिहरनाथ तत्व है। वही उपनिषदों में प्रतिपादित ज्ञानगम्य ज्ञान का सार है। इसके अतिरिक्त वह भगवान "क्रत्भूषण मणि" हो नित्याग्नि होत्र करने वाले परतन्त्र यज्ञ परायण सुजनों के लिए वेद निर्धारित नित्यानुष्ठान का फल प्रदान करने वाले यज्ञ पुरुष हैं। इस प्रकार आप पूर्व मीमांसा द्वारा प्रस्थापित तत्व भी हैं।

भक्त के रूप में जब योगी कर जोड़ता है। उसके नासाग्र में प्रतिष्ठित हरिहरनाथतत्व शिवकेशवात्मक हो साक्षात्कार होते हैं। धर्मग्लानि की बेलाओं में आपका भूलोक में अवतरित होना विहित है जिसमें कृष्णावतार तिक्कना को प्रिय है। श्रीविष्णु और श्रीकृष्ण में तिक्कना ने कोई अन्तर नहीं माना और परमशिव में एकता की स्थापना की। यशोदा स्तन्य का पान करने वाले यदुनन्दन तथा हलाहल भक्षण करने वाले परमशिव को एक मानकर स्तुति की। कौस्तुभधारी वैकुण्ठवासी

महाविष्णु और अस्थिमाला शोभित हो कैलासवासी महादेव में भूलोक में अवतरित श्रीकृष्ण के बीच कोई अन्तर नहीं है।

किमस्थि मालाम् किमु कौस्तुभम्
परिष्क्रियायाम्, बहुमन्य से त्वम्।
किम् कालकूटः किमु वा यशोदा
स्तन्यम् तवस्वादु-वद प्रभो मे ।।

इसके अतिरिक्त शिव केशव में अभेद के प्रतिपादन में तिक्कना ने अपूर्व कल्पना की। अर्जुन के सैन्धव-वध की प्रतिज्ञा अर्जुन के करने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने आदेश दिया कि उस रात में निश्चिन्त हो विश्राम करें। निद्रा में स्वप्न के मिस अर्जुन को कैलासगिरि ले जाकर शिवजी के दर्शन करवाये। जागृत अवस्था में अर्जुन ने विष्णु को जिन गन्ध पुष्प पूजा द्रव्य का समर्पण किया था। स्वप्नावस्था में वे समस्त शिवजी के शरीर पर समलंकृत दिखाई पड़े। इस महाद्भुत दृश्य को देखने पर अर्जुन को अभेद तत्त्व सुबोध हुआ।

शिवाय विष्णु रूपाय शिव रूपाय विष्णवे।
शिवस्य हृदयम् विष्णुः विष्णोश्च हृदयगम् शिवः ।।

उपर्युक्त महामन्त्र की कल्पना तिक्कना ने अपूर्व रीति में की। जो आन्ध्र प्रान्त में परिव्याप्त विषय मतमतान्तर की परिस्थिति में जनता को विकलता से बचाने एकता के सूत्र में बाँधने का तिक्कना का प्रयास समयोचित है।

हरिहरनाथ तिक्कना की कपोल कल्पना नहीं है। महर्षि व्यास के विरचित महाभारत में अनेक तत्त्वों में एक तत्त्व के रूप में वर्णित है। विष्णु के अष्टोत्तर शत नामावली में 'हरिहर रूपैक मूर्तये नमः' कहते हुए परब्रह्म के अनेक रूपों में एक के रूप में स्तुत्य हुआ। इसी तत्त्व को सर्वदेवताद्वैत मूर्ति तत्त्व को तिक्कना ने धर्माद्वैत मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। भारत में कृतिपति हरिहर स्वामी ने किसी ग्राम में अपने लिए मन्दिर नहीं बनवाया। सृष्टि, स्थिति, लय के मूल कारण विश्वमय है। तात्पर्य यह है कि श्री हरिहरनाथ शैव, वैष्णव, कर्मिष्ठ, ज्ञानी, भक्त, योगी, मन्त्रोपासक, तपस्वी, सुलभ ही प्राप्त होने वाले कृपालु हैं इहलोक की इष्टसिद्धि, आमुष्मिक सुख, मोक्षपद, योग सिद्धि इत्यादि को प्रदान करने वाले हैं। तिक्कना ने अपने भारत की रचना के शुभारम्भ में श्री हरिहरनाथ जी के दर्शन देने पर विनती की थी कि जन्म जन्मान्तर के दुःख दूर कर कृतार्थ करें। ब्रह्मानन्द स्थिति को किया और सर्वेश्वर ने मोक्षपद दिया था। तेटगीतिः–

जनन मरणादुलैन संसार दुरित
मुलकु नगपड कुंग दोलगु तेरुवु
गनु वेलुगु नीकिच्चिति ।।

अर्थात् संसार में दुःख कारक जनन मरणादि से परे प्रकाश को मैंने प्रणाम किया। जीवन को सार्थक मानकर कर्म सन्यास न लेते हुए लोक मंगल के लिए भारत रचना को तिक्कना उद्यत हुए जिसमें धर्माद्वैत तत्त्व की पूर्णरूप से व्याख्या प्रस्तुत की जिसका विवेचन आगे किया जायेगा।

हरिहराद्वैत

तिक्कना–तिक्कनामात्य ने हरिहर की समन्वित मूर्ति के दर्शन कर भोग प्रसाद देना चाहा। किन्तु उनको पता न लगा कि इष्टदेव क्या चाहता है। आप परात्पर से पूछ बैठे–

> किमस्थि मालाम् किमुकौस्तुभम् वा
> परिष्क्रियायाम् बहुमन्यसेत्वम् ?
> किं कालकूट: किमु वा यशोदा
> स्तन्यम् तव स्वादु वद प्रभो ? में।[7]

अर्थात् अलंकरण में आप अस्थिमाला को पसन्द करते हैं या कौस्तुभमणि को ? आपको कालकूट विष रुचिकर है या यशोदा स्तन्य ? प्रभु ! आप यह बताओ कि आपकी रुचि किसमें है।

शिव केशव से अभिन्न तथा परे हैं जो परतत्त्व तिक्कना ने उस रूप को सम्भावित किया। शिवजी को कौस्तुभमणि का सौन्दर्य अविदित है और केशव जी को अस्थिमाला की छवि ! इन दोनों को उन दोनों का ज्ञान नहीं है। कालकूट विष तथा यशोदा स्तन्य का भी रुचि भेद नहीं जानते। इसलिये इस श्लोक में किया गया प्रश्न न शिवजी से है न विष्णु से। या उनसे अन्य किसी और से उद्दिष्ट प्रभो ! कहता एक वचन में सम्बोधन किया। यह प्रश्न शिवकेशव से अभिन्न तथा भिन्न तथा उभयात्मक है जो परमस्वामी से उद्दिष्ट है। आप हरि भी हैं, और हर भी।

तिक्कना के मन में शिव केशव का अभेद स्थापित होने के कारण चित्त निर्मल हो गया। कर्म, ज्ञान तथा भक्ति के त्रिवेणी-संगम से आप पुण्य-स्नात हुए। तिक्कना की अध्यात्म प्रवत्ति का वर्णन निम्न रीति में है–

> वैदिकमार्ग निष्ठगमु वर्तनमुंदग निर्वहिचुंचुन्
> भेदमुलेनि भक्ति मति निर्मल वृतिगजेयुचुंडम
> त्पादनिरन्तर स्मरण तत्पर भावमुकतिम नात्म स
> म्मोदमु बोंद गाव्यरसमुं कोनियाडुचुनुण्डु देप्पुडुन् ।।[8]

तात्पर्य यह है कि वैदिक मार्ग में निष्ठापूर्वक प्रवर्तित हो भेद रहित भक्ति का निर्वाह करते हुए निर्मल वृत्ति के साथ तेरे चरणों का स्मरण करता हूँ और

काव्यरस में तेरी स्तुति सदा करता हूँ, जिससे मेरी आत्मा में तत्पर भाव से आनन्द-मय हो सुविलसित हो जाये।

विद्यापति–विद्यापति संस्कृत के पारसी विद्वान थे। पुराणों के पूर्ण ज्ञाता थे। आर्य-धर्म के रहस्यों को जानते थे। इसलिए आप के मन में किसी देव या सम्प्रदाय सिद्धान्त के प्रति हठधर्म नहीं था। न किसी की ओर रुझान, भेदभाव या पक्षपात था। समानश्रद्धा से सबकी उपासना करते थे। शिवकेशव के विभिन्न स्वरूप का आपने वर्णन किया–

"भल हरि भल हर भल तुअ कला,
खन पित बसन खनाई बघछला।"

इसी प्रकार मातृ रूप में इन्होंने ब्रह्म का वर्णन करते हुए लिखा है।

विदिता देवी विदिता हो, अविरल केस सोहन्ती।
एकानेक सहस्र को धारिनि, अतिरंग पुरनन्ती।।
कजल-रूप तुअ काली कहिअउ, उजल-रूप तुअ बानी।
रवि-मण्डल परचण्डा कहिए, गंगा कहिए पानी।।
ब्रह्मा-घर ब्रह्मानी कहिए, हर-घर कहिए गौरी।
नारायण-घर कमला कहिए, के जान उतपति तोरी।।[9]

विद्यापति ने शिवजी के प्रति शरणागत होकर भाव-विमोर होकर वर्णन किया–

करवन हरब दुःख मोर हे, भोलानाथ।
दुखहि जनम मेल दुखहि गमा एव
सुख सपनहु नहीं मेल, हे भोलानाथ।
आछत चानन अवर गंगाजल
बेलपति तोहि देव, हे भोलानाथ
यहि भवसागर थाह कतहु नहि
भैरव घरु कर आए, है भोलानाथ।
मन विद्यापति मोर भोलानाथ पति
देहु अभय वर मोहि, हे भोलानाथ।[10]

विद्यापति ने व्याजस्तुति में शिवजी की स्तुति की है–

"जो हम जनित हूँ भोला मेला ठगना।
होइतहुँ राम गुलाम गोसाई।।[11]

एर्रना–एर्रना ने अपने आपको श्री शंकर स्वामी संयमीश्वर का शिष्य माना। आपकी रचनाएँ सब विष्णु परक होने पर भी आप शम्भदास कहलाये। रचना शैली की दृष्टि में आपको समीक्षकों ने "प्रबन्ध-परमेश्वर" कहा अर्थात् एर्रना

ने शिवकेशव के प्रति समान रूप से अपनी भक्ति प्रकट की।

गिरीश पदभक्ति रस त
त्पर भावम् कलिमि शम्मुदासुण्डनग
बरगियु गोविन्द गणा
दर सम्भृत सौमनस्य धन्युड वेन्दुन् ॥[12]

अर्थात् गिरीश के पद भक्ति रस में तत्परता भाव रखने के कारण शम्भुदास कहलाया। और गोविन्द के गुणों की संस्तुति करते हुए समान भाव रखते हुए धन्य हुए।

नृसिहपुराण के द्वितीयाश्वास में पट्टाभिषिक्त होकर हिरण्य कश्यप के दिक्पालों को अपमानित करने के प्रसंग में शिवजी के प्रति अनादर भाव प्रकट हुआ। इसके साथ शिवजी के प्रति भक्ति भाव भी प्रकट होता है।[13] इस प्रकार श्वेत द्वीप के वर्णन प्रसंग में श्वेत द्वीप को कैलाश गिरि और क्षीर सागर के मध्य विष्णु निलय के साथ सांग रूपक में वर्णन करते हैं।[14] और हरिहरनाथ के प्रति प्रसंगानुसार अपनी भक्ति समान रूप से प्रकट करते हैं।

श्रीनाथ—श्रीनाथ ब्राह्मीदत्त युक्त एवं ईश्वर की अर्चना में निष्ठावान ही नहीं शैव-मंत्रोपासक भी थे। आपकी रचनाओं से पता चलता है कि श्रीनाथ के पूर्व सब कवि ईश्वरार्चना—कलाशील शैवोपासक ही थे। तब तक श्री रामानुज के सिद्धान्त का प्रचार नहीं हुआ था।

शिव, विष्णु स्तुतियों के अतिरिक्त श्रीनाथ ने हरिहराभेद तत्त्व का प्रतिपादन किया। विष्णु पट्टाभिषेक के प्रसंग पर शिवजी कहते हैं कि मैं विष्णु हूँ। विष्णु और मुझमें कोई अन्तर नहीं हैं।[15] दोनों में एकता की स्थापना कर श्रीनाथ कविवर ने हरिहर ब्रह्म के दर्शन किये।

कविवर श्रीनाथ ने "काशीखण्डमु" काव्य में शिवकेशव के 108 पर्यायवाची नामों से स्तोत्र रचा।

वचन—आदिकाल में तृतान्त ने निज और किंकरों से इस प्रकार कहा—

गोविन्द ! भूतेश, गोप: गंगाधर
चाणूरमर्दन चण्डिकेश
कंसप्रणाशन कर्पूरगौर गो
पीपति शंकर पीतवसन।
गिरीश गोवर्धनोद्धरण बाल मृगांक
वर्ण माधव भव वासुदेव
विषमेक्षण मुरारी, वृषभध्वज हृषीक
पति भूतपति शौरि फालनेत्र

गीतम्:
कृष्ण हर गरुड़ध्वज कृत्तिवसन
कल्मषारि गौरीपति कमठ शूलि
यनुचु बठियिन्तु रेव्वरा धनुलु मीकु
वन्दनीयुलु चेनकंग वरदुवारि।।

सीसमु
हरि रजनीश कलावतंस रमेश्व
र पिनाकपाणि श्रीराम भर्ग
यनिरुद्ध शूलपाणि नृसिंह त्रिपथगा
द्रं जटाकलाप मुरहर यीश
राघव युरणाभरण पद्मनाभ यु
ग्र मधुसूदन पिनाकपति याद्य
प्रमथाधिनाथ नारायण मृत्युंज
य पुरुषोत्तम ! त्रिदशैकनाथ।।

गीतम्:
यच्युता ! काम शत्रुव यब्जपाणि
दिग्वसन चक्रपाणि भूतेश यनुचु
दलतु रेव्वारु वारलुत्तमुलु भुवन
पावनात्मकु लन्दरु प्रभुलु मीकु !

सीसमु:
ब्रह्मण्यदेव शर्व मुकुन्द विश्वेश्व
र सनातन त्रिणेत्र रावणारि
श्रीकण्ठ धर्मधुरीण शम्भुव कम
लाधीश यीशान यदुपति मृड
धरणीधर हर यन्धकहर, शार्गपा
णि ! पुरारि विष्णुव नीलकण्ठ
वैकुण्ठ देवदेव मधुरिपुड ! त्रिलो
चन कैटभरिवुण्ड चन्द्रचूड।।

गीतमु:
केशिनाश गिरीश लक्ष्मीपति त्रिपु
रारि वसुदेव सूनुड त्र्यक्ष यनुचु
जपमु चेयुचु रेव्वरव्विपुल पुण्य
धनुल गदिसिनप्पुडु मी कुगल्मवच्चु।।

वचन: और सुनिए–श्रीकान्त शिव यसुर निवर्हण मन्मथरिपुड जनार्दन खण्ड परशुड शंखपाणि शशिशेखर दामोदर रिपुसूदन यम्बुधर नील स्थाणुव यानन्दकन्द सर्वेश्वर आदि दिव्य नाम स्मरण करने वाले आपको मान्य हैं।[16] यह स्तुति कोई अद्वैती ही कर सकता है, न कोई वैष्णव या शैव। अर्थात् यह स्पष्ट है कि श्रीनाथ के अंतरंग में शिव-केशवाभेद तत्त्व और अद्वैत तत्त्व कूट-कूट कर भरा है।

पोतना–पोतनामात्य अद्वैतमत के अनुयायी थे। उनकी अद्वैत मूलक भक्ति में

शिव, राम, कृष्ण आदि सभी रूप व गुण समाविष्ट हैं। सब में एक अखण्ड अभेदता है। पोतना के पूर्वज शैव थे। परन्तु पोतनामात्य ने तत्कालीन परिस्थितियों को देखकर शिव-केशव की अभेदता की स्थापना की। इस विषय में श्री गडियारम–वेंकट शेष शास्त्री जी लिखते हैं–"भागवत की रचना के आधार पर यह पता चलता है कि पोतनामात्य वैष्णवाचार सम्पन्न ऊर्ध्वपुण्ड्र तुलसी माला शोभित थे। परन्तु पोतना और उनके पितामह और परवर्ती वंशज परम शैव थे। पोतना की भक्ति शिव केशव अभेद-अद्वैत मूलक है। "विष्णु रूपाय नयः शिवाय" कहकर महाकवि तिक्कना ने हरिहर की अद्वैतता प्रकट की, पर पोतना ने अपने हृदय में उस मूर्ति की स्थापना की।[17] सूरदास ने पृष्टि मार्ग के अनुयायी होते हुए भी अद्वैत तत्त्व के दर्शन किये। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर को उन्होंने एक ही परम तत्त्व माना है। पोतनामात्य का समन्वयात्मक दृष्टिकोण स्पृहनीय है।

चेतुलारंग शिवुनि पूजिंपडेनि
नोरु नोव्वंग हरि कीर्ति नुडुवडेनि
दययु सत्यम्बु लोनुगा दलुपडेनि
कलुग नेटिकि तल्लुल कडुपुचेटु।[18]

अर्थात् जो हाथों के थकने तक शिव की पूजा नहीं करता, मुख को श्रम देकर संकीर्तन नहीं करता, दया तथा सत्य आदि गुणशाली नहीं होता, वह जन्म ही क्यों लेता है। उसका जन्म लेना माता के कोख को दुःख देने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इस पद्य में पोतना ने शिव तथा केशव की पूजा एक समझ कर की है–

तनुवुन नंटिन धरणी परागंबु पूसिन नेरि भूति गाग,
मुन्दट वेलुगोंदु मुक्ता ललामम्बु तोगल संगाडिकानि तुनक गाग,
फाल भागम्बु पैं बरगु गावलि बोट्टु कामुनि गोल्चिनकन्नु गाग,
कण्ठ मालिक लोनि घन नील-रत्नंबु कमनीयमगु मेडकप्पु गाग
हारवल्लु लुरग हार वल्लुलु गाग बालु लील प्रौढ बालकुंडु
शिवुनि पगिदि नोप्पे शिवुनिर्कि दनकुनु वेरुलेमि देलुप वेलयु नट्ल॥[19]

अर्थात् बालकृष्ण के अंग पर लगा हुआ धरणी पराग शिव की विभूति की भाँति है। कृष्ण के माथे पर चमकीली मोतियों की माला चन्द्रमौलि की चन्द्रमा की भाँति है। कृष्ण का तिलक शिव जी का काम-नाशकारी नेत्र जैसा है। कृष्ण की कण्ठमाला के घन नील रत्न गरल कण्ठ नाम का नील कण्ठ है। बालकृष्ण की उर मालाएँ शिव के उरगहार जैसे हैं। इस प्रकार बालकृष्ण शिव की भाँति शोभायमान हैं, मानों वे कह रहे हैं कि शिव और मुझमें क्या अन्तर है।

पोतनामात्य "श्रीमन्नारायण कथा की रचना का संकल्प लेकर शुभ्र चाँदनी

में पवित्र-गंगा तट पर स्नान कर महेश्वर ध्यान मग्न हुए। शिव पूजा करते समय रामचन्द्र जी ने प्रत्यक्ष होकर भागवत कथा रचना का आदेश दिया, पोतना ने इस घटना का स्वयं उल्लेख किया है, जिसको अन्त: साक्ष्य ही नहीं परिपूर्ण हृदय से अद्वैत दर्शन कह सकते हैं।[20]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है। कि भक्त पोतना ने भक्ति साहित्य में परमात्मा के रूप में अभेदता की स्थापना की। इनसे पहले नाचन सोमनाथ ने "उत्तर हरवंश के आन्ध्रानुवाद में हरिहर भेद भावना का खण्डन करते हुए शिव–केशव की अभेदता का सुन्दर प्रतिपादन किया। इसी सिद्धांत को महाकवि पोतना ने परिवर्धिति कर सुदृढ़ रूप में प्रतिष्ठित किया। श्री पुट्टपति नारायणाचार्य जी लिखते हैं---- "तेलुगु में हरिहराद्वैत की स्था ना भागवत में हुई।"[21] किन्तु यह स्पष्ट है कि पोतना ने अपनी तपस्या के बल से रामकृष्णाद्वैत के साथ हरि-हराद्वैत की स्थापना की। तेलुगु जनता को पूर्ण अद्वैत तत्त्व तथा परब्रह्म तत्त्व को प्रसादित करने वाले परम भागवत पोतना धन्य हैं। पोतना के पालकुरिकि सोमनाथ तथा तिक्कना के आध्यात्मिक दिव्य सन्देश व सिद्धान्त को दिव्य–काव्य में परिवर्तित कर सुन्दर रूप में विभूषित किया।

पोतना ने तिक्कना के प्रति अत्यन्त श्रद्धा प्रकट की--" हरिहर चरणारविंद वन्दनाभिलाषि दिक्क मनीषिन् भूषिंचि ········" अर्थात् हरिहर के चरण कमलों की वन्दना में रुचि रखनेवाले मनीषि तिक्कना का स्मरण कर। यहाँ पर मनीषी शब्द सार्थक है जो वीरशैव वीर वैष्णव भावना से ऊपर विशुद्ध सात्विक भक्ति का द्योतक है।

सूरदास– सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाल-छवि का वर्णन करते हुए शिव-केशव के अभेद स्वरूप के दर्शन किये हैं। भक्त का यह स्वभाव होता है कि वह अपने परम आराध्य में अन्य देवताओं को पा जाये। इसी भाव भूमि में महात्मा सूर ने बालकृष्ण तथा भगवान शिव में अभेदता का अनुभव किया।

बरनौं बाल-वेष मुरारी
थकित जित–तित अमर-मुनि-गन नन्दलाल, निहारि ।।
केस सिर बिन वपन के चहूँदिसा छिटके झारि।
सीस पर धरि जटा, मनु सिसु रूप कियौ त्रिपुरारि
तिलक ललित ललाट केसरि बिन्दु सोभाकारि ।।
शेष अरुन तृतीय लोचन, रह्यौ जनु रिपुजारि ।।
कंठ कठुला नीलमनि, अंभोज माल संवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर इहिं भाइ भए मदनारि ।।

——— ——— ———

त्रिदस पति-पति असन कौं अति जननि सौं करै आरि।

सूरदास विरंचि जा कौं जपत निज मुख जारि ॥ [22]

और

हरिहर संकर नमो नमो ।
अहिवासी, अहि, अंग विभूषन, अमित दम्भ, बलविष हारी ॥

सूर काव्य में वैराग्यपूर्ण भक्ति के साथ श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं, गोपी-लीलाओं का मधुर वर्णन हुआ है। वात्सल्य वर्णन तथा मधुरा भक्ति के चित्रण में सूरदास जी सिद्ध-हस्त हैं। साहिती जगत और संगीतलोक में सूरदास जी बेजोड़ कवि हुए।

सूर ने एक साथ कृष्ण और शंकर भगवान का ध्यान किया है।

देखि अंग अनंग झझक्यौ नन्द सुत हर जान ।
सूर के हिरदै बसौनित, श्याम-शिव ध्यान ॥ [23]

डॉ. दक्षिणामूर्ति ने भविष्य पुराण से उल्लेख प्रस्तुत कर यह सिद्ध किया है कि "श्यामशिव" में अभेदता है। [24]

नीलकण्ठ बरनील कलेवर, प्रेम परस्पर कृत हारी ।
चन्द्रचूड़ सिखि चन्द्र सरोरुह, जमुना प्रिय, गंगाधारी ॥
सुरभि रेनु तन भस्म विभूषित वृष वाहन, बन वृषचारी ।
सूरदास सम, रूप-नाम गुन अन्तर अनुचर अनुसारी ॥

कहने की आवश्यकता नहीं है कि सूर ने शिव तथा कृष्ण में "गिरा अरथ जल–बीच सम कहियत भिन्न न भिन्न" की भावना देखी। अनेक रूपों में दर्शन देने वाले भगवान के इस निगूढ़ तत्त्व को सूर ने समझा। सूरदास के कृष्ण कभी शिव रूप में और कभी विष्णु रूप में देकर, यह सिद्ध करते हैं, मैं दोनों होते हुए भी दोनों नहीं। इस भावाद्वैत की स्थिति में परतत्त्व के दर्शन करना परम भागवत सूर-दास को संभव हुआ।

रामकृष्ण कवि का काव्य-श्रीहरिहरोपासना

आपका पहला नाम रामलिंग था। रामलिंग शब्द राम से पूजित लिंग है। इस अर्थ में न लेकर राम और लिंग अर्थात् विष्णु और शिव इन दोनों के समाहार से हरिहर बनता है। रामलिंग का हरिहर शब्द ही समुचित लगता है। माँ, बाप ने आपका नाम रामलिंग रखा। 1405 में जन्म हुआ। और रामलिंग का नाम 1543 में रामकृष्ण नाम व्याप्त हुआ। तब तक शैव था वैष्णव तत्त्व स्वीकार करने पर भी वीर वैष्णव नहीं बना। और शैवों से द्वेष नहीं किया। रामकृष्ण बनने के बाद आपने पाण्डुरंग महात्म्य की रचना की। इसमें आपने शिव और विष्णु में अभेद माना। पाण्डुरंग माहात्म्य में पहले श्रीकृष्ण की प्रार्थना, लक्ष्मी की प्रार्थना, ब्रह्मा की स्तुति, तत्पश्चात् शिव पार्वती की वन्दना की। कथा का प्रारम्भ

काशीपुरम् के वर्णन से होता है। क्षेत्र, तीर्थ, दैव, इन तीनों से पुण्य-क्षेत्र बनता है। पौण्डरीक क्षेत्र के बारे में शिवजी ने स्वयं पार्वती को सुनाया। शिवजी के मुख से वैष्णव क्षेत्र का महात्म्य कहलाने में रामकृष्ण कवि का कोई संकुचित तत्त्व व्यक्त नहीं होता। ऐसा गिरा हुआ मनस्तत्त्व रामकृष्ण कवि का नहीं मानना चाहिए। वास्तव में श्रीकृष्ण देवरायलु ने अपनी रचना आमुक्त माल्यदा के कथा-प्रारम्भ में शिव पार्वतियों की स्तुति नहीं की। तब श्रीरायल और रामकृष्ण दोनों वैष्णव मतानुयायी थे। अपने काव्य में शिव स्तुति नहीं करने के कारण श्रीरायल को शिव द्वेषी नहीं कह सकते। आप में परमत की सहिष्णुता अपार थी। आपके दरबार में अनेकों शैव-कवि सुपूजित थे। शिव कवि दूर्जटि को आज भी भूल नहीं सकते।

रामकृष्ण ने वैष्णव धर्म स्वीकार तो किया, परन्तु आजन्म-सिद्ध शैव को त्याग नहीं दिया। अतएव आपकी तात्त्विक दृष्टि अद्वैततत्त्व रहित विशिष्टाद्वैत नहीं बनी। इसी कारण पाण्डुरंग माहात्म्य को मध्य-वैष्णव व शिथिल-वैष्णव माना जाता है। प्रबल वैष्णव का आवेश घटिकाचल माहात्म्य में प्राप्त होता है। इसमें वृन्दावन, गोपिकाएँ, नन्द तथा यमुना का स्मरण किया गया है।[25] घटिकाचल माहात्म्य की वैष्णव-भक्ति भी कुछ शिथिल है क्योंकि उसमें भी वैभव आचारों के वर्णन में लोभ का संवरण न कर पाये।[26] डॉ. केतवरपु रामकोटि शास्त्री जी के शब्दों में "रामकृष्ण को धार्मिक अभिनिवेश नहीं है, न उन्होंने उसे खड़ा रखने के लिए काव्य को साधन ही बनाया। वे जन्म से स्मार्त अर्थात् अद्वैती और भक्ति के कारण शैव तथा सम्प्रदाय स्वीकृति से वैष्णव हुए, तब आपका वैष्णव-तत्त्व किस विधि का होगा।[27] आचार्य श्री राल्लपल्लि अनन्त कृष्ण शर्मा के शब्दों में रामकृष्ण ने पाण्डुरंग माहात्म्य शिव केशव में अभेद तत्त्व के दर्शन किये हैं।[28]

विट्ठल तथा शिव में अभेद

वास्तव में यह पाण्डुरंग कौन है। वैष्णव देव है या और कोई ? हेमचन्द्र के मत में पाण्डुरंग पाण्डुर अंग वाला शिवजी हैं। पाण्डुरंग शुद्ध, सत्त्व का प्रतीक माना जाता है। युग बीत गए। आपकी आयु पाँच वर्ष मात्र है। तेनालि रामकृष्ण कवि ने पण्डरी में जिस विठल के दर्शन किये जो दारू मूर्ति था। अब शिलामूर्ति है। विठल नाम कैसे पड़ा, यह बड़ी विचित्र कहानी है। एक दिन पुंडरीक नामक भक्त माता पिता की सेवा में लीन था। वह कृष्ण के दर्शनों की लालसा लिये हुए था। मौका जानकर कृष्ण पधारते हैं। घर आये मेहमान की सेवा करनी चाहिए। ऊपर से इष्टदेव हैं। किन्तु पिता की सेवा छोड़ नहीं सकता। पुंडरीक दुविधा में पड़ा। वहाँ एक ईंट डालकर थोड़ी देर के लिए उस पर ठहरने के लिए कहा। मराठी में विट् अर्थात् ईंट है (इष्टीक-ईंट) ठल अर्थात् ठहरो। पाण्डुरंग उस ईंट पर ठहर गए। अनजाने में भगवान की परीक्षा हो गई। यह ईंट कहाँ की है।

कभी वृत्त नामक राक्षस ने इन्द्र को ईंट होने का अभिशाप दिया। उनके अनुसार डिण्डीरवन में इन्द्र ईंट बना हुआ था। उसी ईंट पर आकर ठहरने से पाण्डुरंग विट्ठल कहलाए। इन्द्र शापमुक्त हुआ।

पाण्डुरंग माहात्म्य में निम्बार्काचार्य का सनक सम्प्रदाय दृष्टिगत होता है। निम्बार्क ने द्वैत विशिष्टाद्वैत में समझौता करवाया। रामानुज मत के विपरीत शुद्ध भक्ति को प्रधानता दी। आपके अनुसार जीवात्मा और परमात्मा एक होते हुए भी परमात्मा अपनी विशेषता को नहीं खो देता, यही सनक मत कहलाता है। राधा-माधव प्रणय का प्रबोध निम्बार्क ने किया।

रामकृष्ण वैष्णव होने पर भी शिव द्वेषी नहीं बना। वैष्णव भक्ति से प्रपूर्ण अपने, घटिकाचल माहात्म्य में सप्त ऋषियों को योग लक्ष्मी सहित नरसिंह स्वामी दर्शन देते हैं। उनके साथ शिव जी भी दर्शन देते हैं। अर्थात् शिव विष्णु में अभेदता की कवि ने स्थापना की। रामलिंग पहले शैव था फिर भी विष्णु को भूला नहीं। बाद में वैष्णव बना तब भी शिवजी को भूला नहीं।

पण्डरीपुर क्षेत्र रामानुज सम्प्रदाय का नहीं माना जाता यह द्वैत सम्प्रदाय का माधव क्षेत्र है। पाण्डुरंग माहात्म्य का कृतिपति और कृतिकर्ता दोनों वैष्णव होकर भी इस अवैष्णव क्षेत्र के प्रति आकृष्ट हुए। इसका सबल कारण उन दिनों में देश में व्याप्त विठोबा का वैभव है। मुसलमानों के अभियानों से विठलेश्वर को क्षति पहुँचेगी, इस भय से श्रीकृष्ण देवरायल स्वामी को विजयनगर ले गये, ऐसा इतिहास बताता है। इसीलिए संत ज्ञानेश्वर के समकालीन भक्त कवि नामदेव ने विठल को कन्नड देवता कहा–

"कानडा विठ्ठलवो उभाभिवरेतीरे"

अर्थात् कन्नड विठ्ठल भीमी नदी तट पर विराजमान है। वास्तव में कर्नाटक के नरेन्द्र होयसल वंशज ने पण्डरीपुर में विठोबा की स्थापना करवायी। विष्णुवर्द्धन राजा (बिट्टिदेव-होयसल वंशज हैं) उसने जैनमत छोड़कर रामानुज के प्रबोध से वैष्णव मत स्वीकार किया। उसका भाई बीरबल्लाल ने भीमा नदी तट तक होयसल राज्य का विस्तार किया। विष्णुवर्द्धन राजा ने पण्ढरीपुर को भक्त पुण्डरीक से मिलकर उसकी इच्छा पर विठ्ठलदेव मन्दिर का निर्माण करवाया होगा। विष्णुवर्द्धन (बिट्टिदेव) राजा के नाम से उस स्वामी का नाम भी विठल नाम व्यवहार में आया।

विठोबा की मूर्ति ऊँची शिला वेदिका पर निर्मित विराटमूर्ति थी जो तीन फुट की थी जिसमें कोमल शिल्पकला थी। स्वामी के सर पर शिवलिंग बना है कण्ठ सीमा में कौस्तुभ माला सुशोभित है। वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न है। सर पर शिवलिंग पगड़ी के समान है वह मुकुट जैसा नहीं है। कानों में बड़े-बड़े मकर

कुण्डल हैं। वाम कर में शंख, दक्षिण कर में कमलनाल सुशोभित है। दोनों हाथ कमर पर रखे हुए हैं। इस प्रकार यह मूर्ति विष्णु रूप में शिव दर्शन देते हैं। रामकृष्ण कवि ने पाण्डुरंग महात्म्य कथा को शिवजी के मुख से सुनाया। कथा का प्रारम्भ काशी वर्णन से होता है। सभी ओर से विचार करने पर विदित होता है कि रामकृष्ण कवि शिव केशव में अभेद को मानते हैं।

तुलसीदास

तुलसीदास जी कहते हैं कि शिवजी के चरण कमलों में जिनकी प्रीति नहीं है, वे श्रीरामचन्द्र जी को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। विश्वनाथ शिवजी के चरणों में विशुद्ध प्रेम होना ही रामभक्त का लक्षण है।

शिवपद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं।
बिन छल विश्वनाथ पद नेहू। रामभगत कर लच्छन एहू ॥[29]

आगे कहते हैं शिवजी के समान रघुपति के व्रतधारी कोई और नहीं क्योंकि आपने बिना पाप के सती जैसी पार्वती को त्याग दिया था और प्रण कर रघुनाथ जी की भक्ति का निरूपण किया। अर्थात् हे भाई! श्रीरामचन्द्र जी को शिवजी के समान और कौन प्यारा हो सकता है।

"सिव राम को रघुपति व्रतधारी। बिनु अघतजी सती असि नारी ॥
पनुकरि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई ॥"[30]

पौराणिकों को विदित है कि शिवजी ने हनुमान के रूप में श्रीरामचन्द्र की सेवा की थी और श्रीराम ने रामेश्वरम् में सेतुबन्धन के अवसर पर भारत में प्रथम शिवलिंग की स्थापना की थी। भारत में रामायणकाल से पहले कोई मन्दिर नहीं था।

तुलसीदास ने पार्थिव शिवलिंग के महत्त्व को स्वीकार किया और बनगमन के सन्दर्भ में राम से पार्थिव लिंग की पूजा करवायी।

"तब मज्जनुकरि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा ॥"[31]

राम ने रामेश्वर में प्रथम शिवलिंग की स्थापना की और तुलसीदास जी ने उसके महत्त्व का वर्णन किया।

"जे रामेश्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं।[32]

रामेश्वर का तात्पर्य राम + ईश = अर्थात् तत्त्वतः हरिहर ही है। तुलसी ने शिव हो या राम हो अभेद मानकर दीनदयालुता, परमोदारता की याचना की।

दानी संकट-सम नाहीं।
दीनदयाल दिवोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं ॥[33]
देव बड़ं, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे ॥[34]

तुलसी ने विनयपत्रिका के आरम्भ में गणेश, सूर्य, शिव की वन्दना की है।

"गाइये गणपति जन वन्दन ॥"[35]

तुलसीदास ने स्मार्ततत्त्व के अनुकूल सभी देवी देवताओं की स्तुति की है। मानस के आरम्भ में भवानी शंकर की प्रशंसा की है।

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम् ॥
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥[36]

कृष्णमाचार्य

कृष्णमाचार्य जी परमवैष्णव होने पर भी किसी सम्प्रदाय विशेष में सीमित नहीं होते। आपके चौदहवें वचन में कहते हैं कि हे देव! 'आकाशात् पतितम् तोयम्' तथा 'गच्छति सागरम्' के समान सभी सम्प्रदायों में समता है। "सर्वदेव नमस्कारः केशवम् प्रति गच्छति" स्मृतिवाच्य को स्मृति स्वीकार करते हैं।[37] आगे चलकर आप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों में पुरुषसूक्त का अस्तित्व मानते हैं।

"शूद्राश्च भगवद्भक्ता विप्रा भागवता स्मृता ॥"

आप कहते हैं कि किसी भक्त का दुषण नहीं करना चाहिये। सब व्यक्ति में भगवान का आवास है। इसलिए किसी से द्वेष करना नहीं चाहिए। शिवकेशव में अभेद मानते हैं। शिव भक्त को विष्णु का द्वेष विष्णु भक्त को शिव द्वेष नहीं रखना चाहिए।

"मद्भक्त शंकर द्वेष, मद्द्वेषी शंकरप्रियः।
तावुभौ नरकं यातः यावच्चन्द्र दिवाकरौ ॥"[38]

कोरवि गोपराजु

कोरवि गोपराजु हरिहर भक्ति सम्प्रदाय में तिक्कना के अनुयायी हुए। काव्यारम्भ में आपने 18 प्रकार के वर्णनों का विवरण देते हुए स्वीकार किया कि कथा का मूल कारण हरिहर स्वामी है।

वचन– अनि विन्नविंचि कृतकृत्युण्डनै सिंहासन द्वात्रिंशिका
कथाकथन मूलकारणंबैन यम्बिकार मणुण्डनु
मत्किविता सम्पत्ति सन्धायकुण्डगु लक्ष्मीनायकुण्डुनु
नायकुलुगा नियमिचुट जेसि ‥ ।[39]

अर्थात् ऐसा निवेदन कर कृतकृत्य हो सिंहासन द्वात्रिंशिका के कथाकथन के मूल कारण बने हुए अम्बिकारमण और मेरी कविता सम्पदा के संसाधक बने हुए लक्ष्मी-नायक के रूप में सुविराजित होने के कारण–

सीसमु– पाप पेण्डेमुगाक पसिडि यण्दिययुनु
नडुगु दामरलपै नमरुवाडु

पेद्दमेकमुतोलु निद्दमरु बट्टुनु
मोलदिण्डुगा गट्टिट मुरियुवाडु ।।
एमुकपूसलुनु मुत्यमुलु जेरुलुगागा
नक्कुन दाल्चि पेंपेक्कुवाडु
पुनकयुंबेनु गुल्लयुनु गेलुदम्मुल
नंचलमाडिक बार्टिचुवाडु ।।

गीतम्–
सगमु पोडवुनदेल्पु नासगमु नल्पु
नट्यु येडनोक्क वन्निय यगुचु मेनु
लेनय मुक्कंटियुनु वेन्नुडुनु ननंग
बोल्चु नावेल्पु कब्बम्बु ब्रोचु गात ।।[40]

अर्थात् श्री हरिहरनाथ स्वामी के एक चरण कमल मे नागसर्प है तो दूसरे चरण में स्वर्ण कंकण सुशोभित हो रहा है। एक तरफ बाघचर्म है, दूसरी तरफ कमर मे पीतपट कसकर पहने हुए सुभगवेष में हैं। हृदय पर अस्थियों की मनकाएँ तथा मोतियो की मालाएँ पहनकर सुशोभित हो रहे हैं। कर में कपाल तथा शंख धारण कर अचंचल तत्त्व को प्रकट कर रहे हैं। आधे भाग श्वेतवर्ण में, आधा कृष्णवर्ण में और गर्दन दूसरे वर्ण में देह सुविराजित हो रही है। आप कह रहे हो जैसा कि त्रिनेत्र-धारी और चक्रधारी मुझे पहचानो। इस भव्यरूप में विलसित होने वाला स्वामी मेरी कविता की रक्षा करे और आगे कलम चलाने की कृपा करे। इस प्रकार कोरवि गोपराजु के मन में हरि और हर एक साथ बसे हुए है।

अन्नमाचार्य–कन्नड के भक्तकवि पाण्डुरंग विठल पर पद रचना करने वाले पुरंदरदास से आपकी भेंट हुई। आपसे प्रभावित होकर पुरंदरदास ने हरिहर स्वामी पर कीर्तन रचे थे।

अन्नमाचार्य का कीर्तन–

शरणु शरणु सुरेन्द्र सन्नुत शरणु श्री सतिवल्लभा।
शरणु राक्षस गर्वसंहर शरणु वेंकटनायका - - - ।।

पुरन्दरदास का कीर्तन -

शरणु शरणु नुरेन्द्रवन्दित शरणु श्रीपति सेवित।
शरणु पार्वती तनय मारुति शरणु सिद्धि विनायक - - - ।।

पुरन्दरदास ने हरिहर के साथ पंचदेव की वन्दना की।

विभेद का निराकरण

तुलसीदास- श्रीरामचन्द्र ने रामेश्वर जी के दर्शन करने और गंगाजल क शिवजी पर चढ़ाने का फल सायुज्य मुक्ति बताया।

"जे रामेश्वर दरसनु करिहहिं । ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं ।
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि । सो सायुज्य मुकित नर पाइहि ।।[41]

आगे चलकर कहा जाता है कि भगवान विष्णु और महादेव में अन्तर नहीं है । दोनों धर्म की मूर्ति स्वप्न में भी आपके साथ कोई विमुख हो या आपसे विमुख हो तो धर्म से विमुख माना जाता है ।

हरिहर विमुख धर्म रति धर्म । ते नर तहँ सपने हु नहिं जाहीं ।।[42]

आगे चलकर तुलसीदास जी राम वचन के रूप में कहते हैं कि शिव जी के समान मुझे दूसरा कोई प्रिय नहीं है जो शिव से द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है । वह मनुष्य स्वप्न में भी मुझे नहीं पाता । शंकर जी से विमुख होकर जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकगामी मूर्ख और अल्प बुद्धि होता है ।

सिव द्रोही मम भगत कहावा । सो नर सपने हुँ मोहि न पावा ।
शंकर विमुख भगति चह मोरी । सो नारकी मूढ़मति थोरी ।।[43]

तुलसीदास जी ने अपने आराध्य की भक्ति प्राप्त करने के लिए शिव की स्तुति की है । उन्होंने शिव का गुणगान करते समय उनके अनेक नामों का उल्लेख किया ।

अहिभूषन, दूषन-रिपु-सेवक देव-देव त्रिपुरारी ।
मोह निहार दिवाकर संकर, सरन सोक भयहारी ।।[44]

तुलसीदास जी ने अपने आपको शिव जी के चरणों में दास के रूप में समर्पित किया ।

मंकरं सम्प्रदं सज्जनानंदनं, सैल-कन्या-वरं परमरम्यं ।
काम, मद-मोचनं तामरस-लोचनं, वामदेवं भजे भावगम्यं ।।

× × ×

प्रचुरभव-भंजनं, प्रनत जन रंजनं, दास तुलसी सरनानुकूलु ।।[45]
गये सरन आरत के लीन्हें, निरखि निहाल निमिष महँ कीन्हें ।
तुलसीदास जाचक जस गावे, विमल भगति रघुपति की पावे ।।[46]

शिव और शक्ति में अद्वैत सिद्धि

तुलसीदास–हिन्दी काव्य में अद्वैत तत्त्व तथा त्रिदेवता में अद्वैतसिद्धि की साधना होती रही है । आधुनिक काल तक यह परम्परा चली आयी । महाराजा नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह जो दिलीपपुर के महाराजा थे, शैव थे । आपकी रचना शिवाशिव शतक ई. 1875 में विरचित हुई जो पार्वती और परमेश्वर की स्तुति में है । इसमें 104 छन्द हैं । ब्रजभाषा का यह शतक है । अर्धनारीश्वर के वर्णन के प्रसंग में कवि ने उमा महेश्वर को त्रिदेवताओं में अद्वैत तत्त्व ही नहीं समस्त देवताओं का मूल तत्त्व माना जिसमें भारतीय सभी दर्शन सम्प्रदाय भक्ति व विश्वासों

के मूल रूप परब्रह्म प्रतिष्ठित है।

तुलसीदास ने शिव के नाम के साथ नामी का स्वरूप अपनी आँखों में बसा लिया है। तुलसीदास ने भव के साथ भवानी की वन्दना की है। सीता जी के द्वारा भवानी की पूजा करवायी।

गिरिजा पूजन जननि पठाई।
संग सखी सब सुभग सयानी, गावहिं गीत मनोहर बानी।
सर समीप गिरिजा गृह सोहा, वरनि न जाइ देख मन मोहा।
मज्जनुकरि सर सखिन्ह समेता, गई मुदित मनगौरि निकेता।
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा, निज अनुरूप सुभग वर माँगा।[47]

युगल तत्त्व

विद्यापति–विद्यापति ने जब अपनी उपासना का रूप स्थिर किया और शिव को अपना इष्टदेव बनाया। तब शाक्त और विशिष्टाद्वैत मतों से प्रभावान्वित होने के कारण केवल शिव को अपना इष्टदेव नहीं रखकर युगलमूर्ति (गौरीशंकर) को अपना इष्टदेव बनाया।

"लोढ़व कुसय तोड़ब बेलपात। पूजब सदा शिव गौरिक सात।"[48]
जय जय शंकर, जय त्रिपुरारि ! जय अध पुरुष जयति अध नारि।।
आध धवल तनु आधागोरा। आध सहज कुच आध कटोरा।।
× × ×
मने कविरतन, विधाता जाने। दुह कए बौटल, एक पुराने।।[49]

डॉ. ग्रियर्सन ने विद्यापति के सभी पदों को वैष्णव प्रार्थनाएँ या भजन माना।

त्रिदेवता–अद्वैत सिद्धि

विद्यापति–कई विद्वान विद्यापति को शाक्त मानते हैं, क्योंकि आपने "पुरुष-परीक्षा" के मंगलाचरण में आदि शक्ति को शिव की पूज्या, विष्णु की ध्येया और ब्रह्मा की प्रगम्या बताया है–

"ब्रह्मापि माप्नोति नुतः सुराणां, यामर्चितो अप्यर्चयतीन्दुमौलिः
यां ध्यायति ध्यातातोऽपि विष्णु स्तानादि शक्ति शिरसा प्रपद्ये।।"

विद्यापति के पदों में "हरि विरंचि-महेश शेखर चुम्ब्यमानपदें और जगति पालन-जनमारण रूप-कार्य-सहस्र कारण" शक्ति का विशेषण "हरि हर ब्रह्मा पूछइत मुझे एक ओ न जाव तुअ" आदि शक्ति के वर्णन विद्यापति के शाक्त होने के साक्षी हैं।

कई विद्वान विद्यापति को शैव मानते हैं। आपके पिता का शैव होना और आप का अनेकानेक शिवगीत या नचारियों की रचना करना प्रमाण मानते हैं। विद्यापति के आश्रयदाता राजा का शैव होना और कवि की चिता पर अभी तक

शिव मन्दिर का विद्यमान होना इस बात की पुष्टि करते हैं ।

विद्यापति ने शिव पूजा के विषय में शैवसर्वस्वसार, शिव जटावलम्बिनी, गंगा के विषय में "गंगावाक्यावली" और शिव की अर्द्धांगिनी दुर्गा की पूजा के विषय में "दुर्गाभक्ति तरंगिणी" लिखी, किन्तु विष्णु की आराधना पर किसी ग्रंथ की रचना नहीं की ।

तेनालि रामकृष्ण–तेनालि रामकृष्ण कवि ने अपने काव्य उद्‌भटाराध्य चरित्र के प्रथम आश्वास में तीसरे पद्य में विष्णु की वन्दना की और सातवें पद्य में लक्ष्मी की स्तुति की । तृतीयाश्वास में मुंजभोज के मुख से शिव, केशव तथा ब्रह्मा में अभेदता की स्थापना करवाया है । आपकी दृष्टि में तीन मूर्तियों में अन्तर्निहित परब्रह्म एक है ।

"विष्णुडन रुद्रुडनग वग्विभुडनंग
दगिन नामांतरंबुलु दाल्चि नीवु
भ्रममु समकूर्तु वेरगनि प्राकृतुल्लकु
नी महत्त्वम्बु चित्रम्बु, नीलकण्ठ ! ॥"

अर्थात् विष्णु, रुद्र, और ब्रह्मा तुम स्वयं नामान्तर से भ्रम पैदा करते हो । प्रकृतिगत प्राणियों को तेरा महत्त्व हे नीलकण्ठ ! किस प्रकार विदित होगा । त्रिमूर्त्यात्मक परब्रह्म की उपासना रामकृष्ण ने की । रामकृष्ण धार्मिक प्रवक्ता नहीं माना जाता । आजकल किसी भी व्यक्ति को कोई न कोई राजनैतिक दल से सम्बन्धित दल से होना जिस प्रकार अनिवार्य समझा जाता है । उसी प्रकार उन दिनों में धर्म या सम्प्रदाय से बचे रहना दुष्कर था । रामकृष्ण कवि ने अपने उद्‌भटाराध्य चरित्र में शैव सिद्धान्त का प्रबोध किया । किन्तु, पाण्डुरंग महात्म्य, घटिकाचल माहात्म्य में वैष्णव-भक्तों की कथाएँ सुनायीं । पहले आप कवि हैं । आपकी कविता में शिव हो या विष्णु पूर्णरूप से अवतरित हो जाते हैं ।

सूर और पोतना–भक्त के अथक परिश्रम एवं निरन्तर साधना के फल स्वरूप उसे परमतत्त्व प्रसाद के रूप में प्राप्त होता है । सहज ही उन्हें भक्ति की प्राप्ति हो जाती है । वह अनन्य भाव से अपने इष्टदेव की सेवा तथा ध्यान करता है । भक्ति की चरमावस्था में वह अपने इष्टदेव में सब कुछ पा लेता है । जब भक्ति विकसित होती जाती है, तो भक्त सचराचर जगत में भगवान की लीला का स्वर सुनता है । कण-कण में भगवान के दर्शन करता है । सर्वं खल्विदं ब्रह्म की स्थिति पर पहुँच जाता है । उसे विश्व में भगवान के अतिरिक्त कोई वस्तु दिखाई नहीं देती । यह "नेह नानास्ति किंचन" का समझना भक्ति की पराकाष्ठा है । वहाँ पर भक्त द्वैत अद्वैत-भावना अथवा पुष्टिमार्गीय निजी भावना से ऊँची एक अनिर्वचनीय आध्यात्मिक भावभूमि पर पहुँच जाता है । ऐसी परिस्थिति में भक्त परम पुरुष में

लीन होकर परमानन्द प्राप्त करता है। यह भक्ति की अन्तिम, स्थिति ब्रह्मानन्द स्थिति है जिसके आगे और कुछ नहीं है। इसलिए भक्ति स्वयं साध्य मानी गयी है। इस स्थिति में भक्त रामकृष्ण, शिव-केशव तथा अन्य देवी देवताओं में अन्तर नहीं देखता। सबको अपने परम आराध्य में पाता है। इसी भाव भूमि को अद्वैत सिद्धि कहते हैं। इस दृष्टि से सूर और पोतना की भक्ति अद्वैत मूलक है।

सूर और पोतना की भक्ति में ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीन देवता परब्रह्म के स्वरूप कहे गये हैं। पौराणिक प्रसंगों को लेकर सूर ने त्रिदेवों में एकता को स्पष्ट किया। "बाल वत्सहरण" प्रसंग में ब्रह्मा बालवत्सों का हरण कर उस अन्तर्यामी की परीक्षा लेना चाहता है। कौतूहल के लिए ही नहीं भगवान के परमतत्त्व के दिग्दर्शन के लिए वे ऐसा करते हैं।

> विधि मनहीं मन सोज परयौ।
> गोकुल की रचना सब देखत, अति जिय माहि डरयौ ।[50]
> बालक बच्छ ब्रह्म हरि ले गयौ, ताकौ गर्व नसाये ।।[51]
> ब्रह्म बालक बच्छ हरे।
> आदि अन्त प्रभु अन्तरजामी, मनसा तैं जु करे।
> सोइ रूप वै बालक गोसुत, गोकुल जाइ भरे।
> एक बरस निसि-बासर रहि संग, काहु न जानि परे ।।[52]

परब्रह्म के अवतार कृष्ण पुनः सृष्टि करके उनका गर्वहरण करते हैं। ब्रह्मा पश्चात्ताप कर क्षमायाचना करते हैं और वृन्दावन की रेणु की तरह रहने में परम शान्ति मानते हैं।

> तब हरि हर्यौ विधि कौ गर्व ।।[53]
> बिनवै चतुरानन कर जोरे।
> तुव प्रताप जान्यौ नहि प्रभु जू करै अस्तुति लट छोरे ।[54]

पोतनामात्य ने ठीक इसी प्रकार ब्रह्मा का पश्चात्ताप का वर्णन किया है। प्राणी संतति का सृजन ब्रह्मा के द्वारा होता है। मैं ही ब्रह्म हूँ और नहीं है। मेरे सृजन के अतिरिक्त और बालवत्स किस ब्रह्मा से उद्भूत हुए। किसी मोह के वश में न होने वाले. को मोहित करने के प्रयत्न में विधाता स्वयं मोहित हुए। दिन में खद्योत प्रकाश फीका पड़ जाता है और रातों में अन्धकार हिम की तरह अदृश्य होता है। उसी प्रकार विष्णु पर किसी की माया चलती नहीं, केवल अपनी बुद्धि को प्रकट कर आत्मज्ञान की प्राप्ति करने के अतिरिक्त और क्या है।

> ब्रह्म पंपुन गानि पुट्टुदु प्राणि संतति येप्पुडुन्
> ब्रह्म नोक्कडगानि वेरोक ब्रह्म लेडु सृजिपगा

ब्रह्म नेनु सृजिप नोंडोक बाल वत्स कदंब में
ब्रह्ममंदुर्जनिचे नोक्कट ब्रह्ममैनदि चूडगन् ।।[55]
मोहमु लेक जगंबुल मोहिपग जेयनेपुं मोनसिन विष्णुन्
मोहिंपिचेद ननियेडि, मोहमुनविधात ताने मोहितु डय्येन् ।।[56]
पगलु खद्योत रुचि चेडुपमिदि रात्रि
मंजु ची कटि लीन मैं मायु माड्क
विष्णु पैं नन्यमायलु विशद मगुने
चेडि निजेशुल गरिमंबु जेरूचुगाक ।।[57]

पोतना के हृदय में ब्रह्मा के प्रति भक्ति है, इसीलिए उन्होंने ग्रंथारम्भ में ही उनकी वन्दना की।

आतत सेव सेसेद समस्त चराचर भूतसृष्टि वि
ज्ञातुक भारती हृदय सौख्य विधातकु वेदराशि नि
र्णेतकु देवतानिकर नेतकु गल्मषजेतकुन् नत
त्रातकु धातकुन् निखिल तापस लोक शुभ प्रदातकुन् ।।[58]

भक्त शिरोमणि सूरदास ने परम पुरुष के तीन तत्त्वों के रूप में त्रिदेवों को मानकर उनकी एकता का वर्णन किया है–

विष्णु रुद्र विधि एकहि रूप, इन्हें जान मत भिन्न स्वरूप ।।[59]

पोतना ने सूर की भाँति त्रिदेवों में एक परम तत्त्व के दर्शन किये हैं। भगवान विष्णु स्वयं कहते हैं–"मैं, ब्रह्मा, शिव, तीन इस जगत के कारण भूत हैं। सृष्टि, स्थिति, लय कार्य के हेतु भिन्न नाम से व्यवहृत होते हैं। हम तीनों में जो भेदभाव नहीं रखता वही कृतार्थ है।[60]

पोतना कृष्ण की बाल लीलाओं में त्रिमूर्ति के ही नहीं परब्रह्म के दर्शन करते हैं।

चेयुवुल् सेयु तरिन् विधात कर्णिग्र जेन्नोंदु संतोष दु
ष्टि युतुंडै नगुचून् जनार्द्रनुनि माड्किन् बोल्चु रोषिंचि यु
न्न येडन् रुद्रुनिभंगि नोप्पुनु सुखानंदंबुनुं बोंदित
न्मयुडै ब्रह्ममु भाति बालुडमरुन् बाहुल्य बाल्यंबुनन् ।।[61]

बालकृष्ण बाल सुलभ चेष्टाएँ करते समय विधाता के रूप में संतोष दृष्टियुत हो हँसते समय जनार्दन के रूप में दोष दिखाते समय रुद्र की भाँति, सुखानन्द स्थिति में परब्रह्म स्वरूप में भासित होते हैं। बलि चक्रवर्ति की सभा में प्रवेश करने वाले बटुक वामन में पोतना त्रिदेव ही नहीं सभी देवताओं के दर्शन एकतत्त्व में करते हैं।

शंभुंडो हरियो, पयोजभवुडो चंडांशुंडो वह्नियो,
दंभाकारत वच्चेगाक धरणि धात्री सुरुडेव्वडी

शुंभद्‌द्योतनुडी मनोज्ञतनुडंचुन् विस्मय भ्रांतुलै
संभाषिंचिरि ब्रह्मचारि गनि तत्सभ्युल् रहस्यंबुनन् ।।[62]

ब्रह्मचारी को देख सभासद सब विस्मय विभ्रांत होकर रहस्य में वार्तालाप करने लगे कि यह कोई शंभु, हरि, ब्रह्मा, सूर्य, अग्नि तो नहीं है ? यह अमित प्रभा भासित हो मनोज्ञ स्वरूप में, दम्भाकार में प्रवेश करने वाला ब्राह्मण ही है। (सत्य ही सभासदों में पोतना भी बैठे हुए हों और उन्होंने वामन मूर्ति में सर्वदेवताओं के दर्शन किये हों)।

पोतना सूर की अपेक्षा अद्वैत तत्त्व की दृष्टि से एक कदम आगे बढ़ गये हैं। पोतना में सर्वदेवों में परब्रह्म तत्त्व को देखने की सहज दृष्टि है तो सूर में केवल कृष्ण में सब देवताओं के दर्शन करने की युक्ति है।

श्रीकृष्ण को परब्रह्म मानते हुए भी सूर का मन कृष्ण-लीलाओं में रम गया है। दोनों के इष्टदेव और उनके अद्वैत तत्त्व के सम्बन्धी विचार आगे किया जाएगा।

कृष्णमाचार्य—श्री कृष्णमाचार्य ने त्रिमूर्तियों में एकता सिद्ध की है। सबके भीतर परब्रह्म का आवास मानते हैं। सब कुछ निर्गुणात्मक परमात्मा है जो सगुण रूप में विराट पुरुष विलसित है। मुमुक्षु को मुक्ति कैलास, वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक प्राप्त होते हैं जो सिंहगिरि नरहरि के स्वेच्छा विहार स्थान हैं। इस प्रकार कृष्णमा-चार्य अपने इष्टदेव में सभी देवताओं के दर्शन कर धन्य हो जाते हैं।

पंचदेवोपासना–स्मार्ततत्त्व

विद्यापति—विद्यापति के धार्मिक व आध्यात्मिक चिन्तन धारा के सम्बन्ध में विद्वानों में एकमत नहीं है। कोई कहता है कि वैष्णव तो कोई शैव या शाक्तेय (शाक्त) या एकेश्वरवादी या पंचदेवोपासक समन्वय स्वरूप डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया। जो लोग विद्यापति के बारे में कहा करते हैं कि शैव थे। अतएव वैष्णव भक्त नहीं जानते। समूचा उत्तर भारत प्रधान रूप से स्मार्त था। शिव के प्रति अखण्ड भक्ति बनी हुई थी, परन्तु उसमें अपूर्व सहनशीलता का विकास हुआ था और विष्णु को भी वह उतना ही महत्त्वपूर्ण देवता मानता था। शिव सिद्धि दाता थे, विष्णुभक्ति के आश्रय। महा महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने 'कीर्तिलता' की भूमिका लिखते हुए आपको पंचदेवोपासक माना है।

विद्यापति स्मार्त्त थे और स्मृति के अनुसार सूर्य, गणपति अग्नि (विष्णु) दुर्गा और शिव इन पाँचों देवताओं की उपासना आवश्यक मानते थे। विद्यापति ने इन समस्त देवताओं की अपनी रचनाओं में यथा अवसर स्तुतियाँ की हैं। इससे स्पष्ट है कि ये पंचदेवोपासक थे।

डॉ. श्यामसुन्दर दास विद्यापति के पदों को माध्व सम्प्रदाय, विष्णु स्वामी तथा निम्बार्काचार्य के मतों का प्रभाव स्वीकार करते हैं। यह सत्य है कि विद्यापति के

समय में वैष्णव विचारधारा समस्त उत्तर भारत में फैल चुकी थी। विद्यापति पर जयदेव का प्रभाव परिलक्षित होता है। जयदेव का काव्य विद्यापति के लिए प्रेरक रहा हो, किन्तु निम्बार्क, विष्णु स्वामी तथा वल्लभाचार्य द्वारा विकसित राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति की उपासना के प्रबल होने से पहले ही विद्यापति की पदावली का प्रणयन हो गया होगा। चैतन्यप्रभु विद्यापति के पद गा-गाकर भावावेश में मूर्छित हो जाते थे। विद्यापति के काव्य में प्रस्फुटित राधा कृष्ण का युगल-प्रेम, वैष्णव-सम्प्रदाय प्रेरित न होकर शाक्त-सम्प्रदाय से कहा जा सकता है, जो बीजरूप में था, विद्यापति ने उसे युगलमूर्ति का तथा प्रेम तत्त्व में प्रस्तुत किया। विद्यापति के समय में वज्रयान और सहजयान शाखाएँ प्रचलित थीं। उनमें प्रांतिक साधनाओं के अन्तर्गत स्त्री, निबन्ध एवं पूज्या मानी जाती थी। मातृ-सत्तात्मक समाज में योनि-पूजा का अत्यधिक महत्त्व माना जाता था। आगे चलकर योनि के साथ लिंग पूजा का आरम्भ हुआ और विकसित होकर गौरीशंकर, अर्धनारीश्वर प्रकृति पुरुष की उपासना के रूप में शक्ति और शिव का समन्वय हुआ। आगे चलकर वाम मार्गियों में पड़कर युगलमूर्ति की भावना विलासिता का माध्यम बनी और नैतिकता का लोप हो गया था। इसी के विरोध में हठयोगियों, नाथ पंथियों ने संघर्ष छेड़ा था।[63]

विद्यापति को पंचदेवोपासक भी नहीं माना जा सकता। इन्होंने जो पंचदेवों की स्तुति की है, वह सम्भवतः पुराणों का और तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का ही हल्का-सा प्रभाव परिलक्षित होता है। पुराणों में बताया गया है कि किसी भी आराधक को अपने आराध्य की पूजा करने का तभी अधिकार मिलता है। जब वह पहले सूर्य, गणेश, दुर्गा, अग्नि, विष्णु और इन छः देवों की प्रार्थना कर लेता है–

"गणेशं च दिनेशं च वह्नि विष्णुं शिवं शिवम् ।
समपूज्य देव षट्कं च सोऽधिकारी च पूज्यत ।"

विद्यापति पुराणों के निष्णात विद्वान थे। अतः इस आदेश का पालन करना उनके लिए स्वाभाविक ही था। उस समय मिथिला में पंचदेवोपासना प्रचलित भी थी। विद्यापति पर इसका भी प्रभाव पड़ा। पर ऐसा गम्भीर नहीं, जैसा किसी अनुगामी के लिए अपेक्षित होता है। इस विषय में पं. शिवनन्दन ठाकुर ने लिखा है।

"मिथिला में इस समय भी प्रथा है कि किसी तरह की पूजा हो, शैव, वैष्णव या शाक्त कोई भी पूजक हो, पहले पंचदेवता की पूजा कर ली जाती है। सम्भव है, विद्यापति के समय में भी यही प्रथा हो।"

विद्यापति को एकेश्वरोपासक भी नहीं मान सकते, क्योंकि आप ने सभी देवी-देवताओं की स्तुति की। उन सभी के माहात्म्य का समान आस्था एवं विश्वास

के साथ गायन किया।

एर्रना–एर्रना ने वैकुण्ठ मन्दिर के वर्णन प्रसंग में पंचायतन के अनुसार समस्त देवताओं को विविध द्वारों पर सुप्रतिष्ठित किया। अनेक देवी-देवताओं के साथ गणपति, पद्माक्ष, पद्मा, दुर्गा इत्यादि को सुशोभित रखा। स्पष्ट है कि एर्रना के मानस मन्दिर में देवी-देवता का नाम रूप कोई भी हो, परमपुरुष, परब्रह्म ही प्रतिष्ठित है।

श्रीनाथ–श्रीनाथ की रचना कही जाने वाली कृति 'वल्लभाभ्युदय' जो अप्राप्य है, विष्णु परक काव्य माना जा सकता है। इसमें श्री काकुलम में स्थित आन्ध्र वल्लभ की महिमा का गायन किया होगा। आन्ध्रवल्लभ विष्णु के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं होगा। इसके अतिरिक्त लक्षण काव्यों में यत्र-तत्र उद्धृत नन्दनन्दन चरित्र श्रीनाथ की रचना मानी जाती है। श्रीनाथ की विष्णु भक्ति को 'भीमखण्डमु' में वर्णित राधा माधव स्तव में देख सकते हैं। श्रीनाथ ने इष्ट देवताओं की स्तुति अपने काव्यों में प्रसंगानुसार किया। 'शृंगारनैषध' में लक्ष्मीनारायण स्तव (1–1), काशीखण्डमु में केशव की प्रशंसा (1–2), शिवरात्रि माहात्म्यमु में विष्णु स्तव (1–2), पलनाटि वीरचरित में लक्ष्मीनारायण की प्रार्थना (2) आदि दृष्टव्य हैं। स्तुति स्तव के अतिरिक्त देवी-देवताओं का विस्तारपूर्वक वर्णन भी प्राप्त होते हैं। काशीखण्डमु में विष्णु को क्षीरसागर के मध्य शेषतल्प पर वर्णन किया है। काशी खण्डम् में शिवजी द्वारा सुन्दर आसन का निर्माण करवाकर छत्रचामर सहित शत-कोटि प्रकाश सुशोभित रत्नखण्डों से सुसज्जित सिंहासन पर विष्णु भगवान को सुखासीन करवाने का प्रसंग रखा। इसमें विघ्नेश्वर के साथ विष्णु के छत्र धारण का वर्णन है। पार्वती देवी से विष्णु की सेवा का प्रसंग है। इसमें सरस्वती ने विष्णु की अर्चना करते हुए दिखाया। शचीदेवी ने आरती उतारी।[64] इसके अतिरिक्त चामुण्डी ने द्विताल दिया। भृंगीश्वर ने नाट्य किया। सूर्य चन्द्रादि ने चमर डुलाये। यमराज कंचुकी बने। सरस्वती ने गद्य एवं पद्य उक्तियों में वन्दना की। इस प्रकार मुनिजन अमर गण से संस्तुत होते हुए सकल लोकों में ब्रह्माण्ड के आधिपत्य स्वरूप सिंहासन पर आसीन हो विष्णु की भव्य सभा सुशोभित हुई।

सीसमुः चामुण्डि योर्नारिचु जम्पेतालमुनकु
भृंगीश्वरुं डाडे ब्रेंकणम्बु
वेनुक दिक्कुन नुण्डि कनक भूषलुम्रोय
सूर्युण्डु शशियु वीचेपुपु लिडिरि
वेण्डि कट्टुल तोड वेत्र दण्डमु पूनि
सुन्दडि नेड गल्ग जडिसे जमुडु

कालोचितम्बुगा कैवार मोनरिंचे
बलुकु दोय्यलि गद्य पद्य सरणि ।

तेटगीतिः अखिल लोकमुलकुनु ब्रह्माण्डमुलकु
आधिपत्यम्बु पूनि सिंहासनमुन
मुनुलचे वेलुपुल चेत म्रोक्कु गोनुचु
नच्युत्तुण्डोल गम्बुम्न यव सरमुन ।[65]

इस वर्णन के द्वारा श्रीनाथ ने मन में भक्ति रसावेश में अभेदतत्त्व को साध्य किया ।

पार्वती परमेश्वर के समान लक्ष्मीनारायण की स्तुति श्रीनाथ ने अनेक प्रकार से की । शिव भक्तों के समान विष्णु भक्तों को परम भागवतों के रूप में वर्णन किया । सुन्दर गोपीचन्दन गन्ध धारण कर ऊर्ध्व पुंड्र धारी हो वक्षस्थल पर वन-जाक्ष मालिकाओं से सुशोभित हो, कांधे में कोमल कृष्ण तुलसी प्रवाल समलंकृत हो जिह्वा पर कमल लोचन के दिव्य नाम संकीर्तन सुशोभित हो । द्वारका पुरी में मुक्ति कान्ता के साथ मण्डपों में विहार करते हुए निर्मल विवेक युक्त हो । निर्द्वन्द्व भाव से कृपागुण वारधि के गुणगान में होनेवाले महाभागवत परम भाग्यशाली है ।

सूरदास—सूरदास जी ने शिव के साथ अम्बिका और गणेश की पूजा का वर्णन किया है ।

नन्द सब गोपी ग्वाल समेत
गए सरस्वती के तट एक दिन
शिव अम्बिका पूजा हेत ।[66]

प्राय: कन्याएँ गौरीपति की पूजा उपयुक्त वर प्राप्ति के लिए करती हैं । सूरदास ने इसका सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया ।

"गौरीपति पूजत ब्रजनारि
नेम धरम ते रहत क्रियाजुल बहुत कर मनुहारी
इहै कहत पति उमापति गिरधर नंदकुमार ।।"[67]

पंचदेवोपासना—स्मार्त चिन्तन

सुब्रह्मण्य कवि, तुलसीदास— तुलसीदास और सुब्रह्मण्य कवि दोनों ने अपने काव्य में अद्वैत तत्त्व का प्रतिष्ठापन किया । तुलसी ने राम के साथ शिव की स्तुति 24 छन्दों में (149-172) भवानी की वन्दना तीन छन्दों में (148, 173, 174) और गंगामायी की वन्दना तीन छन्दों में (145, 146, 147) की । सुब्रह्मण्य कवि ने राम के साथ शिवजी, श्रीकालहस्तीश्वर (शिवजी) नामक देवता पर कीर्तन बनाये । ग्रन्थादि में शिवजी की स्तुति इस प्रकार है ।

नमश्शिवाय ते नमोभवाय

समानाधिक रहिताय शान्ताय स्वप्रकाशाय
प्रमोद पूर्णाय भक्तौघपालनाय (नमश्शिवाय)।
तरुणेन्दु शेखराय परम पुरुषाय भव
हरणाय श्रीकाल हस्तीश्वराय। ···· [68]

सुब्रह्मण्य कवि ने भवानी की वन्दना इस प्रकार की है–

भजेहम् भवानी हृदाभावितम् बुधसेवितम्।
निजाश्रित भवदवानल विनिर्मल नामधेयम्॥[69]

सुब्रह्मण्य कवि ने अध्यात्म रामायण की रचना कर अपने अद्वैततत्त्व के अनुरूप ही श्रीशेषाचलवासी बालाजी सहित सभी देवी–देवताओं के नाम पर समर्पित किया है। इस तथ्य का निरूपण 46वें कीर्तन के द्वारा होता है।

श्री शेषाचल वेंकटाख्य लक्ष्मीरमणुनि पेर ईश ब्रह्मादि लक्ष्मी सर्वेशित्व शालि पेर नु
कोशातीत निरीश सत्य ज्ञान गुरुडौ विष्णुनि पेरनु कृष्णुनि पेरनु
ई. शुभाध्यात्म रामायणमु तेनुगु कीर्तनलुग नेर्परिचेन्।[70]

× × ×

श्रीरामुनि श्रीमच्चरितमु श्री ज्ञान सून विनवे॥

अर्थात् श्री शेषाचलवासी श्री लक्ष्मीनारायण के नाम पर ईश ब्रह्मादि लक्ष्मी और सर्वशक्तिमान के नाम पर कोशातीत सत्य विमल ज्ञान रूपी गुरुजी विष्णु के नाम पर, कृष्ण के नाम पर इस शुभ अध्यात्म रामायण को तेलुगु में कीर्तन बनाये। श्री ज्ञान प्रसूना! (पार्वती) श्रीराम के श्रीचरित्र को सुना अस्तु तुलसी और सुब्रह्मण्य कवि ने हृदय में सभी देवी-देवता समान रूप प्रतिष्ठित हैं।

संगीत की गरिमा

कवितावली और अध्यात्म रामायण के गीतों की रचना संगीत के अनुकूल हुई है। कई राग रागनियों में इनको गाया जाता है। कहा जाता है कि रामायण के 104 कीर्तनों के लिए 58 रागों का प्रयोग किया गया है। तुलसी और सुब्रह्मण्य कवि दोनों महापुरुषों ने आध्यात्म तत्त्व एवं भक्ति में निष्ठा गरिष्ठ होते हुए भी जीवन में शृंगार एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का अनुभव किया। अत. उनके काव्य में शृंगार रस एवं मधुर भावनाओं की अभिव्यक्ति ललित शब्दों में हुई। लोकगीतों की शैली में संस्कृत तथा ठेठ भाषाओं का प्रयोग करते हुए रामकथा को संगीत की राग रागिनियों में ढालकर दोनों भक्त कवियों ने भक्ति तथा अध्यात्म तत्त्व रूपी फल देकर पण्डित तथा पामर जनों का समान रूप से सत्कार किया। इसीलिए कवितावली और अध्यात्म रामायण भारतीय जनमानस में निरन्तर झंकृत होने वाले माँ भारती की वीणा के दो तार हैं। जिनका राग, अनुराग, स्वर, साधना, झंकार, गुन्जन, तपन तथा प्रभाव एक है। कवितावली और अध्यात्म रामायण के अध्ययन

से सिद्ध होता है कि भारत के किसी भी भाषा के कवि का आवेग, संवेग एक होता है। सम्प्रेषण की प्रक्रिया में वैविध्य होने पर भी भावधारा अनुभूति एवं संवेदनशीलता एक जैसी होती है, आन्तरिक अखण्डता प्रस्फुट होती है जो भारतीयता का विशिष्ट लक्षण है।

धर्माद्वैत साधना–अद्वैत तत्त्व

विद्यापति–प्रो. जनार्दन मिश्र ने विद्यापति को एकेश्वरवादी सिद्ध करते हुए लिखा है–"पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की प्रधानता है। किसी-किसी उप-पुराणों में दुर्गा को भी प्रधानता दी गई है। ब्रह्म की इच्छा से माया और गुणों के संयोग से ही किसी आकृति का आरम्भ होता है। सत्त्व, रज और तम में एक-एक गुण को प्रधान मानकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश और दुर्गा रूप में ब्रह्म की कल्पना की गई है। ·· शंकर के स्वरूप में कल्पना करते समय आदि-ब्रह्म को देवाधिदेव, महादेव इत्यादि कहा गया है। इनकी मूर्ति का अनुमान करना कठिन है, तो भी कहा जा सकता है कि ये व्योम-वेष हैं। आकाश की नीलिमा ही इनके बाल हैं। दृश्य जगत् का सबसे सुन्दर रत्न चन्द्रमा इनका शिरोभूषण है, इसलिए ये चन्द्रेश्वर हैं। इनकी शक्ति के सामने भयंकर काल-रूपी सर्प की कोई गिनती ही नहीं है। इसलिए वह कभी जटा में खेलता है, कभी कलाई पर झूलता है और कभी यज्ञोपवीत बन जाता है। अनन्त विस्तार वाला दिक् भी इतना तुच्छ है कि वह अच्छी तरह इनकी कमर भी नहीं ढक सकता। इसलिए ये दिगम्बर हैं। सती पार्वती महाशक्ति हैं।

इन सिद्धान्तों का मनन करने से सन्तुष्ट हो जाता है कि साकार को अनेक रोचक स्वरूपों के रहते हुए भी सनातन हिन्दू-धर्म एकेश्वरवादी है तथा निराकार और साकार को अभिन्न समझकर दोनों की समान श्रद्धा से उपासना करता है। वैदिक और पौराणिक साहित्य के अध्ययन करने से इस सिद्धान्त के विषय में भ्रम नहीं रह जाता।

सम्प्रदायनिरपेक्षता–धर्माद्वैत

वस्तु स्थिति यह है कि विद्यापति किसी धार्मिक सम्प्रदाय में बँधने वाले तो थे नहीं। आप धर्म व सम्प्रदायों के प्रति उदार-दृष्टिकोण रखने वाले, उदार-चरित वाले समन्वयकारी थे। इसलिए आपके व्यक्तित्व को किसी सम्प्रदाय विशेष की सीमित परिधि में बाँधना समुचित नहीं। वे पूर्ण रूप से मानवतावादी थे। समन्वय स्वरूप श्री नरेन्द्रनाथ का कथन सत्य है–

"हमारी यह धारणा है कि विद्यापति युगलमूर्ति के एक उत्कृष्ट और स्मार्त्त उपासक थे, किसी सम्प्रदाय-विशेष के नहीं थे।"

डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने विद्यापति की सम्प्रदाय निरपेक्ष-भावना का उल्लेख इस प्रकार किया है।

"विद्यापति का व्यक्तित्त्व नाना प्रकार की परस्पर विचारधाराओं का स्तबक है। इस व्यक्तित्त्व में इस प्रकार का परस्पर विरोध सम्भवतः उस युग का परिणाम है जिसमें विभिन्न प्रकार की देशी विदेशी विचारधाराएँ संघर्षरत थीं। विद्यापति वस्तुतः संक्रमणकाल के प्रतिनिधि कवि हैं। वे दरबारी होते हुए भी जन-कवि हैं, शृंगारिक होते हुए भी भक्त हैं, शैव, शाक्त या वैष्णव कुछ भी होते हुए भी वे धर्म निरपेक्ष हैं, संस्कारी ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न होने पर भी विवेक सन्त्रस्त या मर्यादा-वादी नहीं हैं। इस प्रकार विद्यापति का व्यक्तित्त्व अत्यन्त गुम्फित और उलझा हुआ है– यह नाना प्रकार के फूलों की वनस्थली है, एक फूल या गमला नहीं।

विद्यापति विशाल हृदय वाले बहुमुखी प्रतिभाशाली कवि हुए। आपने किसी सम्प्रदाय विशेष की परिधि में न बँधते हुए सभी धार्मिक सम्प्रदायों का समा-दर करते हुए मानवतावादी दृष्टिकोण से चिन्तन मनन कर व्यापक समन्वयवादी धर्माद्वैत तत्त्व को प्रकट किया है, जो सभी चिन्तन धाराओं को समा लेते हुए, सबसे परे–परब्रह्म परतत्त्व को प्रशस्त करता है। अस्तु, विद्यापति कवि को सहृदय कवि ही नहीं, चेतनाशील, चिन्तन प्रधान मेधावी तत्त्व प्रवर्तक धर्माद्वैत साधना करने ले मनीषी कहना समीचीन होगा।

श्रीनाथ–प्रायः श्री शंकराचार्य का अद्वैत सिद्धान्त ही प्रचार में था। इसके बाद ही श्री कृष्ण देवरायल के शासनकाल में अल्लसानिपेद्ना से लेकर तेनालि रामकृष्ण कवि, अय्यलराज् रामभद्र कवि, नरसिंह कवि इत्यादि वैष्णव मतावलम्बी हुए।[71] आपकी रचनाओं में शिवपारम्य होते हुए भी अन्य देवी-देवताओं के प्रति अनादर नहीं था, अपितु, अवसर पाकर प्रसंगानुसार आपने सबकी स्तुति की और आपने सर्वदेव भावना में एक परब्रह्म के दर्शनों का प्रयास किया।

सूरदास–श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान के असंख्य अवतार हैं जैसे अगाध सरोवर में उत्पन्न होने वाले दल अगणित होते हैं।

अवताराह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥[72]

सूरदास ने पृथ्वी के रजकण और आकाश के नक्षत्रों के समान अवतारों का वर्णन किया है।

1. भूमिरेनु कोऊ गनै, नछत्रनि गनि समुझावै।
   कह्यौ चहै अवतार, अन्त सोऊ नहिं पावै॥[73]

2. तब हरि कह्यौ जन्म मेरे बहु वेद न पावै पार।
   भुव की रज नभ के सब तारे तितने हैं अवतार॥[74]

इसी प्रकार पोतना ने भी सर्वेश्वर को अनन्त सत्वारूढ़ माना है।[75] श्रीमद्-भागवत में बाईस अवतारों का उल्लेख है। सनकादि, सूकर, नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञपुरुष, ऋषभदेव, पृथु, मत्स्य, कच्छप, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, व्यास, राम, कृष्ण, बलराम, बुद्ध और कल्कि।[76] सूरदास ने दस प्रमुख अवतार माने हैं और अन्य चौदह अवतारों का उल्लेख किया है।

मच्छ, कच्छ बाराह, बहुरि नरसिंह रूप धरि।
वामन, बहुरौ परसुराम, पुनि राम रूप करि।
बासुदेव सोई भयो, बुद्ध भयौ पुनि सोइ।
सोई कल्की होइहै और न द्वितीया कोई।।[77]
ये दस हरि अवतार, कहे पुनि और चतुरदास।
भक्त बछल भगवान् धरे तन भक्तनि कै बस।
अज अविनासी, अमर जन्मु, जनमै, मरै न सोइ।
नट-वत करत कला सकल, बूझै बिरला कोइ।
सनकादिक पुनि ब्यास, बहुरि भए हंसरूप हरि।
पुनि नारायन रिषभदेव, नारद, धनवंतरि।
दत्तात्रेय अरु पृथु बहुरि जज्ञपुरुष बपु धार।
कपिल, मनू, हयग्रीव पुनि, कीन्हौं ध्रुव अवतार।।[78]

पोतना ने भागवत के अनुसार इक्कीस अवतारों का वर्णन किया है और कल्कि को आगामी अवतार के रूप में स्वीकार किया है।[79] सूर ने मोहिनी, बल-राम अवतारों को हटाकर हंस, मनु, हयग्रीव और ध्रुव को अधिक स्वीकार कर चौबीस अवतार बनाया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि दोनों भक्तों के हृदय ने अवतार लीलाओं में एक परब्रह्म का ही अनुभव किया है तथा उसी की प्राप्ति के लिये दोनों ने साधना की है।

अद्वैततत्त्व

तेनालि रामकृष्ण कवि—गहराई में जाकर विचार करने पर रामकृष्ण कवि ने अपने पाण्डुरंग माहात्म्य में तथा घटिकाचल माहात्म्य में पाण्डुरंग विठल के वर्णन प्रसंग में श्रीमद् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री मच्छंकराचार्य विरचित पाण्डु-रंगाष्टक को ध्यान में रखा, ऐसा स्पष्ट विदित होता है।

वल्लभाचार्य जी तेनालि रामकृष्ण के समकालीन थे। कहा जाता है कि आप श्रीकृष्ण देवरायल के दरबार में कनकाभिषेक से सम्मानित हुए। गोपी-कृष्ण प्रेम या राधा कृष्ण प्रेम तथा मोक्ष प्रदाता है। यह श्री वल्लभ का सिद्धान्त है। तेनालि रामकृष्ण ने श्रीरामानुज सिद्धान्त के अनुयायी होते हुए भी श्री वल्लभा-चार्य के राधा कृष्ण प्रेम को स्वीकार किया। पाण्डुरंग माहात्म्य में वर्णित

मुक्तकेशिनि इसका प्रमाण है। आपने गोपिका के रूप में श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित होकर सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य मोक्ष को प्राप्त किया।

"राध्नोति सकलान् कामान्।
तस्मात् राधोति कीर्तिता॥"

राधा-माधव का संगम प्रकृति पुरुष का संगम है। श्री वैष्णवों द्वारा अस्वीकृत इस राधा-माधव प्रणय को रमणीयता देकर काव्यत्त्व प्रदान कर रामकृष्ण कवि ने अपने व्यक्तित्त्व को सबसे निरपेक्ष रखा।

रामकृष्ण कवि प्रान्तीय सीमाओं को पार कर गया है। तुंगभद्रा नदी के वर्णन में कहता है कि नदियाँ बाह्यताप को दूर करती हैं, किन्तु तुंगभद्रा आन्तरिक तापों को भगाने में समर्थ है। तुंगभद्रा नदी में रामकृष्ण नित्य दर्शन, स्नान के आनन्द से अपने आपको धन्य मानता है। इतना ही नहीं अपने सौन्दर्य की महिमा से तुंगभद्रा अन्य नदियों से अतिशय हो जाती है।

"गंगा संगम मिच्चगिंल्चुने, मदिन् गावेरि देवेरिगा
नंगीकार मोरचुंने, यमुनतो नानन्दमुं-बोन्दुने,
रंगत्तुंगं तरंग हस्तमुल नारत्मा करन्दुण्डु नी
यंगम्बण्टि सुखिच्चियुनेनि, गुणभद्रा। तुंगभद्रा नदी![80]

अर्थात् गंगा संगम को चाहता, मन में कावेरी को देवी के रूप में स्वीकार करता या यमुना से आनन्दित होता। उत्तुंग तरंग करों से वह रत्नाकर तेरे अंग स्पर्शकर किस प्रकार का सुख पायेगा। हे गुणभद्रा! तुंगभद्रा नदी! कहो तो। यहाँ पुष्पदन्ताचार्य कृत शिव महिम्न स्तोत्र का श्लोक ध्यान में आता है जिसमें यही कहा गया है कि सभी नदियाँ रत्नाकर में जाकर पहुँचती हैं।

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजु–कुटिल–नानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।[81]

पाण्डुरंग माहात्म्यम् में तेनालि रामकृष्ण कवि ने चतुर्थ आश्वास के आरम्भ में राधादेवी की तपस्या का वर्णन किया। यहाँ कालिदास के कुमार सम्भव में वर्णित पार्वती की तपस्या का आभास होता है। रामकृष्ण ने ऋतुओं के वर्णन में राधा के रूप के साथ सारूप्यता का वर्णन किया है। कहता है कि नव कोमल कोंपलों की कान्ति रूपी कषाय वस्त्र को धारण कर पराग से आवृत्त हो, भौंरों की विभूति से लिप्त जटाओं से सुशोभित हो, वसन्त लक्ष्मी का आगमन, तपस्या करने वाली राधा के समान है। कवि के अनुसार इस काव्य में राधा एक मानवी है। वह प्रकृति का प्रतीक है। माधव को प्राप्त करने की इच्छा लेकर गोवर्धन गिरि के

समीप उसने ऋण-विमोचन तीर्थ में तपस्या की। इस प्रसंग में कवि ने सब ऋतुओं का वर्णन किया। गोदा देवी तथा नम्मालवार की भक्ति इसी प्रकार की कही जाती। इस प्रकार कवि ने षट्ऋतुओं के वर्णन में राधा सम्बन्ध जोड़कर एक अपूर्व वर्णन विधान को प्रकट किया। प्रकृति में राधा और लक्ष्मी में अभेद की स्थापना की।

पाण्डुरंग माहात्म्य मधुर भक्ति से पूर्ण काव्य है। विशेष रूप से चौथाश्वास और मुक्तकेशी कथा और इसमें वर्णित तत्त्वों के आधार पर आपको शिथिल वैष्णव कहा जाता है। इसमें नायक पाण्डुरंग स्वयं श्री कृष्ण ही हैं। शिवजी पार्वती को कथा सुनाते हैं जिसका प्रधान उद्देश्य कवि के अभिमतानुसार यह है कि विरूरि वेदाद्रि के मन में विष्णुभक्ति की महिमा अतिशय रीति में, प्रस्थापित हो।[82]

तेनालि रामकृष्ण कवि ने शिवजी को विष्णु भक्ति से प्रपूर्ण बताया।[83] फिर भी शिव के महात्म्य में कोई कमी नहीं आ पायी। आप "दनुजरिपु प्रसाद जनित"[84] प्रतिभानिधि होते हुए भी मूर्तित्रय का एक निलय बने हुए हैं।[85] इसलिए कृति की आदि में विश्वक्सेन तथा गरुड़ादि की वन्दना की। गणेश स्तुति न करने पर भी पार्वती परमेश्वर को विस्मरण नहीं किया। इसमें वर्णित महर्षि परमशैवोत्तम सिद्ध हुए।[86] परमभागवत पुण्डरीक का भस्मोद्धूलित पाण्डुरंग है।[87] तपस्विनी राधा को 'भसितलेपन' किया।[88]

जैसा पहले बताया जा चुका है कि तत्कालीन शासक श्रीकृष्ण देवरायल के शासन काल में पाण्डुरंग स्वामी अपनी महिमाओं से जनमानस पर सुप्रतिष्ठित हुए। इस तथ्य के अनेक शिला लेखों द्वारा प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त आज भी अत्यन्त कलावैभव से सम्पन्न विठलेश्वर का मन्दिर सुशोभित हो रहा है। श्री बालाजी के परम भक्त परम वैष्णव रामकृष्ण कवि ने विजयनगर के विट्ठल पर अनेक कीर्तन रचे थे। पंडरीक्षेत्र वैष्णव होते हुए भी रामानुज सम्प्रदायगत नहीं हैं। महाराष्ट्र के माध्वों के लिए यह प्राणपद है। पाण्डुरंग विट्ठल स्वामी का वैभव ही रामानुज माध्व तथा अन्यान्य सम्प्रदाय के भक्तों को आकर्षित करने का मूल कारण है, शिव केशव में अभेदतत्त्व को मन में प्रतिष्ठित करना है। परम भागवत कवि तेनालि रामकृष्ण कवि के लिए वैष्णव क्षेत्र हो या शैव क्षेत्र कोई भी हो, श्रद्धा के केन्द्र बने हुए थे।

अन्नमाचार्य–अन्नमाचार्य ने सभी देवी देवताओं की स्तुति की। अन्नमाचार्य ने माना कि सभी देवी-देवताओं में एक परब्रह्म है। कार्य निर्वाह की सुगमता के लिए भक्तों ने प्रत्येक नाम रूपों में अभिहित किया है। आपका एक श्लोक इसी तत्त्व को स्पष्ट करता है।

तन्दनान आहि, तन्दनान पुरे तन्दनान भला तन्दनान।
ब्रह्ममोकटे परब्रह्म मोकटे परब्रह्म मोकटे, परब्रह्म मोकटे ।।

श्री वेंकटेश्वर स्वामी को अपना इष्टदेव माना और उसी में परब्रह्म के दर्शन किये।

एन्तमात्रमुन नेव्वरु दलचिन अन्तमात्रमे नीवू
अन्तरान्तरमु लेचिचूड, पिण्डन्ते निप्पटि यन्नट्लू . . .
कोलुतुरु मिमु वैष्णवुलु कूरमितो विष्णुण्डनि
पलुकुदुरु मिमु वेदान्तुलु परब्रह्म मनुचु
तलतुरु मिमु शैवुलु तगिन भक्तुलनु शिवुडनुचु
अलरि पोगडुदुरु कापालिकुलु आदिभैरवुडनचु ।। एन्त ।।
सरि नेन्नुदुरु शाक्तेयुलु शक्ति रूपु नीवनुचु
दरिसेनमुल मिमु नानाविधुलनु तलपुलकोलदुल भरितुरु
सिरुल मिम्मु ने यल्पबुद्धि तलचिनवारिकि नल्पं बवुदुवु
गरिमल मिम्मुने घनमनि तलचिन घनबुद्धुलकु घनुडवु ।। एन्त ।।
नीवलन कोरतलेदु, मरि नीरकोलदि तामरवु
आवल भागीरथि बावुल आ जलमे वूरिनयट्लु
श्री वेंकटपति नीवैते चेकोनि उन्नदैवमनि
ईवलने नी शरणनियेद निदिये परतत्त्वमु नाकु ।। एन्त ।।

अर्थात् भक्त जिस भावना से तेरा ध्यान करता है। उसी रूप में, उसी मात्रा में दर्शन देते हैं। कोई भेद न मानते हुए अन्तर न दिखाते हुए अग्निपुंज किरणों के समान पूर्णरूप में तथा विस्फुलिंग रूप में दर्शन देते हैं। वैष्णव भक्त तुम्हें प्रेम से विष्णु कहते हैं और वेदान्ती परब्रह्म ! शैव-भक्तगण तुम्हें शिव कहते तो कापालिक आदि भैरव कहते हुए स्तुति करते हैं। शाक्तेय तुझे शक्तिशाली कहते हुए और विविध रीतियों में भक्तजन तेरे दर्शन तथा ध्यान करते रहते हैं। अल्प बुद्धि वाले तेरे श्री शक्ति की कल्पना न कर पाकर अल्प संकल्प करते और घन बुद्धि शाली तेरी महिमा की गरिमा को पहचानते तो उन-उन रूपों में दर्शन देते रहते हो। भक्तों को तृप्त करने में कोई कसर बाकी नहीं रखते। किसी न किसी प्रकार से उनके उद्धार के प्रयास करते रहते जैसा कि जितना पानी है उतना ही कमल (नाल) विस्तार पाता है। उसके बाद भागीरथी होकर उन कूपों में जल प्रवाह कर देते हैं। तात्पर्य यह है कि जल से आपूरित परमगंगा तुम ही हो और स्वरूप जल से भर जाने वाले कूप भी तुम्हीं हो। तुम श्री वेंकटपति हो, मेरा आधार हो। तुझे परतत्त्व मानकर शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा का भार स्वीकार करो।

क्षेत्रय्या–क्षेत्रय्या ने अनेक तीर्थ स्थानों का पर्यटन किया और कई राजाओं के पास जाकर आदर सम्मान पाया। आपने 18 पुण्यक्षेत्रों के दर्शन किये और चार राज सभाओं में जाकर उन राजाओं की इच्छा के अनुसार कीर्तन रचकर प्रशंसा

पायी। मुख्य रूप से आपने वरहूर में विलसित आदिवराहस्वामी, चिदम्बर में स्थित तिल्लगोविन्दराज स्वामी, कंची के वरदराज स्वामी और चव्वन्दि लिंग स्वामी की स्तुति की। तिरुमल के श्री वेंकटेश (बालाजी) श्रीरंगम के श्रीरंगेश, मधुरा के (मधुरै) सुन्दरेश्वर, श्रीशैलम् के मल्लिकार्जुन स्वामी कोवल्लूर के मुव्वगोपाल स्वामी के दर्शन किये और उन देवताओं की प्रशंसा में कीर्तनों की रचना की। क्षेत्रय्या ने उपर्युक्त सभी देवताओं पर कीर्तन रचते हुए मव्वगोपाल को समर्पित किया। सभी देवताओं तथा मुव्वगोपाल में अभेद पाया। क्षेत्रय्या का इष्टदेव गोपाल होने पर भी शिव केशव में अभेद माना।

क्षेत्रय्या ने एक ही कीर्तन में चेव्वन्दिलिंग स्वामी, कंचिवरद स्वामी, मुव्वगोपाल को सम्बोधित किया। और दूसरे कीर्तन में केशवराय, श्रीशैल मल्लिकार्जुन और मुव्वगोपाल की स्तुति की। शिव केशव के अद्वैत रूप के क्षेत्रय्या को दर्शन हुए।

मुनिपल्ले सुब्रह्मण्य कवि मुनिपल्ले सुब्रह्मण्य कवि ने अध्यात्म रामायण संकीर्तन द्वारा अद्वैततत्त्व का प्रबोध किया। क्षराक्षर रूपी देह में अवस्थित अध्यात्म अक्षर है और देह अधिभूत है. ऐसा गीत तथा उपनिषदों में वर्णन मिलता है। देहधारी सब में चैतन्य का कारण स्वरूप जीवात्मा परमात्मा से अन्य नहीं। इसी अद्वैत चिन्तन का प्रबोध करने वाला ज्ञान अध्यात्म ज्ञान है। रामायण का नायक राम परमात्मा स्वरूप होने पर भी देहधारण कर अवतरित हुआ और लोक व्यवहार की माया में जकड़े रहकर भी आत्मज्ञानी हो दुष्ट संहार किया था। अध्यात्म रामायण का यह तत्त्व सर्व विदित है, जो संस्कृत के ब्रह्माण्डपुराण में पहले प्रबोधित हुआ था। इस तत्त्व का प्रबोध शिव जी ने पार्वती को किया। वाल्मीकि रामायण के अनुरूप ही संस्कृत की अध्यात्म रामायण में सात काण्ड हैं परन्तु सुब्रह्मण्य कवि कृत तेलुगु में अध्यात्म रामायण छः काण्ड में समाप्त होती है। इतिवृत्त, पात्र तथा घटनाओं में परिवर्तन किया गया। वाल्मीकि रामायण में राम का चरित्र एक मानवोत्तम का चरित्र बन गया। सामान्य मानव के समान वह भार्या वियोग में दुःखी होता है। और शत्रु पर आक्रमण करता है। परन्तु अध्यात्म रामायण का राम परब्रह्म स्वरूप है और सीता आदि माया या अविद्या है या प्रकृति स्वरूपिणी है। इसमें रामचरित्र समस्त लीला अभिनय है। इसमें अद्वैत सिद्धान्त को परतत्त्व माना गया और श्रीराम की भक्ति ही भक्ति कही गयी। इस अद्वैत तत्त्व का प्रचारक परमेश्वर स्वयं है।

अध्यात्म रामायण में श्रीराम को परब्रह्म स्वरूप में स्तुति करते हुए अनेक कीर्तन प्राप्त होते हैं। जटायु की मृत्यु के सन्दर्भ में रामस्तव में चूर्णिका द्रष्टव्य है।

श्रीमदगणित गुणमणिगणालंकृत रुचिरचिरतर

–शुभस्वरूपम्। सकल जन भयावह महदज्ञान जनित

–कलिकलुषान्धतामिश्रनिवारकभवतारक दीपम् । ···
–अनुपमाद्‌भुत महत्प्रतापम्, हतदी नजनता मनस्तापम् । ···
–करधृत विदितामोघ शरचापम् । इत्यादि · – चूर्णिका

1. श्री जगन्नाथ हेरघुवर दयानिधे (श्रीजग)
ओजसातेजसाभ्राजसे त्वन्नमो हरे (श्रीजग)

इस कीर्तन में युद्ध काण्ड में सुरवर तथा मुनिजन ने राम स्तुति की थी।

2. वन्दे विष्णुम् विष्णुमशेषस्थित हेतुम् ।
त्वा मध्यात्मज्ञानिभि रन्तर्हृदि भाव्यम् ॥

उपर्युक्त कीर्तन में ब्रह्मा ने श्रीराम की स्तुति की थी।

भजेहं भवानि हृदाभावितम् बुधसेवितम्
निजाश्रित भव दवानल विनिर्मल नामधेयम् ॥

इस कीर्तन में शेषाचलाधीश मुद्रा है। ग्रंथ की आदि में शिवस्तुति की गयी है। एक कीर्तन में सभी देवताओं की वन्दना की गई। चौथे चरण में कालहस्तीश्वराय तथा पाँचवें चरण में शेषशैलाधीश तथा मिन्नाय कहा गया। विष्णु तथा शिव की स्तुति एक कीर्तन में अभिन्न भाव से की गई।

नमश्शिवाय ते नमोभवाय ।
समानाथिकर्हिताय शान्ताय स्वप्रकाशाय ।
प्रमोदपूर्णाय, भक्तौघ, पालनाय नम । (नमश्शिवाय)
नमश्शिवाय ते नमोभवाय ।
निरूनमानदघन, निश्चिताय शाश्वताय ।
वरदाभयंकरणाय, गिरीशाय ।
तरुणेन्दु शेखराय, परम पुरुषाय भव ।
हराणाय श्री काल, हस्तीश्वराय ॥ ॥ नमः ॥

अहल्या के श्रीराम स्तुति से प्रकट होता है कि राम और विष्णु में कोई अन्तर नहीं है। सब को अभिन्न परब्रह्म तत्त्व मानकर वन्दना की गई।

शरणु शरणनि राम, चन्द्रनि नहल्य । सन्नुतिचेनु विनवे ॥
चरणनीरजपरागमुननु, दुरितमेल्लनु, दोलगेनहहा ।
गरिमतोनुगृ, तार्थनंति जगत्प्रभो कमलाविभो हरि ॥ शरणु ॥
शरणु शरणनि रामचन्द्रनि नहल्य । सन्नुतिचेनु विनवे ॥
एविभु पादराजीवरेणुवुलचे, पावनमैनदि भागीरथी महा ॥
श्री रघुवर नीलीललत्यद्‌भुतमु । लेरिकितरमगादिवि तेलियमत्स्याव ॥[89]

अध्यात्म तत्त्व का प्रतिष्ठापन

तुलसीदास ने रामचरित मानस की रचना में अपनी सारी शक्ति को जुटा

कर रामकथामृत का पान कराया। फिर भी उनके हृदय में राम की महिमा के गान की इच्छा बनी रही। कारण यह हो सकता है कि मानस में राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। तुलसी ने कवितावली में राम को परब्रह्म परमेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया जो शतशः अध्यात्म रामायण के अनुकूल है। इसलिए कवितावली में कथाक्रम, घटनाक्रम के वर्णनों की अपेक्षा राम की महिमा पर ध्यान दिया गया है। अस्तु कवितावली अध्यात्म तत्त्व प्रधान तथा अद्वैत तत्त्व चिन्तन का काव्य है। इस दृष्टि से कवितावली तथा सुब्रह्मण्य कवि कृत अध्यात्म रामायण के चिन्तन का धरातल एक कहा जा सकता है।

अध्यात्म तत्त्व के प्रतिपादन की दृष्टि से कवितावली और अध्यात्म रामायण की तुलना की जाती है। तुलसी के अनुसार रामचन्द्र धर्म के सेतु हैं। संसार में मंगल के लिए तथा भूमि भार को दूर करने के लिए उन्होंने मनुष्य का शरीर धारण किया है।

धरम के सेतु जगमंगल के हेतु।
भूमिभार हरिबे को अवतार लियो नर को।।

तुलसी का राम परब्रह्म होने पर भी करुणापूरित हैं। आप ईशों के ईश हैं। (ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन ईश कहे जाते हैं) जनरक्षक महाराजाओं के भी महाराज हैं। देवों के भी देव हैं। प्राणों के भी प्राण हैं। काल जो सबका कारण है, आप उसके काल स्वरूप हैं। महाभूतों को उत्पन्न करने वाले हैं। कर्म के कर्म और कारण के भी कारण हैं। वेदों के लिए अगम्य हैं, पर इतना गहन होने पर भी तुलसी जैसों के लिए सुगम हैं।[90]

सुब्रह्मण्य कवि ने ठीक इसी प्रकार की स्तुति सुतीक्ष्ण ऋषि के द्वारा करवायी है। इससे कवि की भक्ति का आवेग एवं आध्यात्मिक ज्ञान की गम्भीरता प्रकट होती है। कवि कहता है—रूपादि उपाधि से परे रहने वाले तुम मायानाटक से आरोपित, आच्छादित होकर मानव रूप धारण करता है। कोटि मदन के सौन्दर्य से बढ़कर विलसित होने वाले करुणापूरित तुम्हारे भव्य रूप के दर्शन मैंने किये।[91] और आगे कवि परब्रह्म की स्तुति करते हुए कहता है तू देश, काल, कर्म से परे हो, अखिल विज्ञान के ईश्वर हो, तेरा रूप अतिहितकारी तथा निर्मल है। नाश रहित, स्वप्रकाशित तुम्हारा रूप हैं और जो अवकाश है वह तुम्हारे चित् स्वरूप से भरा हुआ है।[92] इस स्वर में स्वर मिलाते हुए तुलसीदास कहते हैं कि मन वचन कर्म से राम नाम का भरोसा जो करता है, वही सच्चा भरोसा करता है।[93] वेद, पुराण, ज्ञान, विज्ञान से अज्ञेय, ध्यान, धारणा, समाधि, साधनों से भी अगम हैं। रामचन्द्र, वह केवल अनन्य विश्वास तथा, नाम स्मरण से जाना जा सकता है।[94] इसी के दर्शन सुब्रह्मण्य कवि ने किये। आप कहते हैं—प्रकृति से परे रहने वाले

परमेश्वर मैंने तुम्हारे दिव्य चरणों के दर्शन किये। तू दृष्टि वाक् आदि इन्द्रिय गोचर नहीं हो, किन्तु हरिनाम के स्मरण करने वाले ज्ञानी भक्तों को तेरे दर्शन होते रहते हैं।[95] स्पष्ट है कि दोनों भक्त कवियों के हृदय राम के प्रति आस्था, विश्वास, नाम-महिमा का ज्ञान व निष्ठा के निलय बने थे। परब्रह्म, परतत्त्व राम के प्रति दोनों में अनन्य भक्ति थी।

तुलसीदास और सुब्रह्मण्य कवि दोनों ने अज्ञान, अविद्या का वर्णन किया है और जिससे छुटकारा पाने के लिए राम की शरण जाना ही एकमात्र उपाय माना है। तुलसीदास कहते हैं कि यह संसार झूठा है, अर्थात् अविद्या का कारण स्वरूप है। सीता राम को जान लिया तो सबका ज्ञान हो जायेगा। अर्थात् अविद्या जन्य अज्ञान मिट जायेगा।[96] सुब्रह्मण्य कवि कहते हैं कि ब्रह्म अविच्छिन्न है। वह पूर्णतमा की एकता से सज्जनों को तत्त्व रूप से, महा वाक्यों के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार ज्ञान की एकता से विमल ज्ञान की प्राप्ति से अविद्या अपने गुणों के साथ अदृश्य हो जाती है।[97] इससे आगे बढ़कर सुब्रह्मण्य कवि ने आत्मा, अनात्मा का विवेचन भी प्रस्तुत किया है। भक्त हनुमान को श्रीरामचन्द्र तत्त्वज्ञान का प्रबोध करते हैं। आत्मा अनात्मा और परमात्मा की पहचान के तीन प्रकार हैं। ममता तथा अहंकार पूरित जो है वह आत्मा है, और अनृत जड़ दुखादि में रमण करता हुआ नीरस, अनात्मा है और नित्य, विमय सत्यज्ञानानन्दात्मिका परात्मा है।

समतनु आत्मानात्म परात्मल जाडलु त्रिविधमुलु पवनजु
ममताहंकार कर्तृत्वमुल नमरि नय्यदि यात्म।
रमण ननृत जड़ दुःखमुलनु नीरस मयिनदि यनात्म नित्यु।
विमलमु सत्य ज्ञानानन्दात्मिक मिदिये परात्म।[98]

अध्यात्म रामायण अनुवाद होने के कारण कवितावली की अपेक्षा इसमें तत्त्व चिन्तन की प्रधानता है।

संदर्भ सूची

1. तिक्कना
2. वही
3. वही
4. महाभारत–विराट पर्व, 1–12
5. महाभारत–शान्ति पर्व, 6–446
6. महाभरतमु–शान्ति पर्व, 6–451
7. तिक्कना
8. वही

9. विद्यापति पदावली–डॉ० देशराज सिंह भाटी–देवी स्तुति-1
10. विद्यापति की पदावली–स्तुति पद–18
11. वही–20
12. नृसिंह पुराण–1-18
13. वही–2-125
14. वही–1-39
15. काशी खण्डमु–4-298
16. वही–शिवशर्मोपाख्यानमु, श्रीनाथ
17. विज्ञान सर्वस्वमु–तेलुगु संस्कृति (तेलुगु भाषा समिति) पृ. 933
18. श्री महाभागवतमु–1-12
19. वही–10-296
20. वही–1-13
21. आन्ध्र महाभागवतोपन्यासमुलु–आन्ध्र सारस्वत परिषद, पृ. 154
22. सूरसागर–10-787
23. वही–10-788
24. सूरदास इति, ज्ञेयः कृष्ण लीलाकरः कविः ।
    शुम्भुर्वेचन्द्र भट्स्थ कुली जातो हरि प्रियः ।।
    –भविष्य पुराण, प्रति सर्गवद तीसरा भाग 22, 30
    (हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन पृ. 178 पर उद्धृत)
25. घटिकाचल माहात्म्य–2-163
26. वही–उपोद्घात, पृ. 71
27. वही
28. श्री पाण्डुरंग माहात्म्यमु–पीठिका, पृ. 28
29. रामचरित मानस–बालकाण्ड, 103-3
30. वही–103-4
31. वही–अयोध्याकाण्ड, 102-1
32. वही–लंका काण्ड, 2-1
33. विनय पत्रिका–(वियोगी हरि द्वारा सम्पादित), पद-4
34. वही–पद-8
35. वही–पद-1
36. रामचरित मानस–बाल काण्ड, 2, 3. (मंगलाचरण श्लोक)
37. सिंहगिरि–वचनमुलु–14 वचन, पृ. 11
38. वही–26 वचन, पृ. 18
39. आश्वास–1-38

40. आश्वास–1-39
41. रामचरित मानस–लंकाकाण्ड, 2-1
42. वही–3-4
43. वही–1-4
44. विनय पत्रिका-पद-9
45. वही–पद-12
46. वही–पद-6
47. रामचरित मानस–बालकाण्ड, 227-1, 2, 3
48. विद्यापति पदावली–स्तुति, 19
49. वही–शिव स्तुति, 3
50. सूर सागर–10-436
51. वही–10-482
52. वही–10-483
53. वही–10-485
54. वही–10-488
55. श्री महाभागवतम्–10-529
56. वही
57. वही–10-532
58. वही–1-3
59. सूर सागर–399 और

    जब प्रभु प्रगट दरसन दिखायौ।
    विष्णुनि विधि रुद्र मम रूप ये तीन हूँ दच्छ सौं यह बचन कहि सुनायौ।।

    –सूर सागर 4-6

60. श्री महाभागवतम्–4-207 (गद्य)
61. वही–10-194
62. वही–8-533
63. विद्यापति पदावली–डॉ. देशराज सिंह भाटी–विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-1983
64. काशीखण्डम्–4-294, 295
65. वही–4-298
66. सूर सागर–पद 92
67. वही–पद 21-32
68. अध्यात्म रामायण कीर्तनलु–बालकाण्ड, 1-1, 4

69. अध्यात्म रामायण कीर्तनलु–युद्धकाण्ड, 35 पल्लवि
70. वही–46-3
71. श्री गुरुजाड़ श्री राममूर्ति–कवि जीवितमुलु, पृ. 247
72. श्री मद्भागवत–प्रथम स्कन्ध, तृतीय अध्याय, श्लोक 26
73. सूर सागर–2-36
74. सूर सारावली–609
75. श्री मद्भागवतमु–1-58
76. श्री मद्भागवत–तृतीय अध्याय, श्लोक 6 से 25 तक
77. सूर सागर–2-36
78. वही
79. श्री मद्भागवतमु–1-61
80. पाण्डुरंग माहात्म्यमु–1-139
81. शिव महिम्नस्तोत्रम्–7, पुष्प दन्ताचार्य
82. पाण्डुरंग माहात्म्यमु–आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी सैफाबाद, हैदराबाद (1984), पृ. 1-6
83. वही–पृ. 2-184
84. वही–पृ. 2-207
85. वही–पृ. 1-197
86. वही–पृ. 1-125
87. वही–पृ. 2-54
88. वही–पृ. 4-7
89. अध्यात्म रामायण कीर्तनलु–13, 1, 2
90. ईसन के ईस, महाराजन के महाराज,
देवन के देव, देव । प्रान हूँ के प्रान हौ ।।
काल हूँ के काल, महाभूतन के महाभूत,
कर्म हूँ के कर्म, निदान हूँ के निदान हौ ।।
निगम को अगम, सुगम तुलसी हूँ से को,
एतेमान सील सिन्धु करुनानिधान हौ ।।
91. रूपाद्युपाधि दूरुडवैन माया नटनापादितमौ नी मानव स्वरूपमु नीदि ।
गो पोंडगंटि स्मरकोटि सुन्दरमु शरचापान्वितमु करुणाश्रय नेत्र यनेनु मुनि ।।
–अध्यात्म रामायणमु–अरण्य काण्ड 2-6
92. देशकाल कर्मातीत विज्ञानमखिलेश नीरूपमतिहित ममलमु
नाश रहितमु स्वप्रकाशमु निखिलाव काशमु चिद्घनाकाशमनि पोगडे मुनि ।।
अध्यात्म रामायणमु–अरण्य काण्ड–2-8
93. राम नाम को भरोसो ताहि को भरोसो है ।।

94. वेद न पुरान गान, जानौं न विज्ञान ज्ञान,
ध्यान धारना, समाधि, साधन-प्रवीनता ।।

95. परमेश प्रकृति कि परुडवौ नी दिव्य चरणमुल्गंटिट्टक्स्वान्तमुलकु गो ।
चरुडवु कावैन हरि नी नाम स्मरण परमतुल केपुडु गनु पछ्टुदुवने मौनि ।।
अध्यात्म रामायण–अरण्य काण्ड–2-5

96. झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग
सन्त कूहंत जे अंत लहा है ।।
× × ×
जानकी जनन जान न जान्यों तों
जान कहावत जान्यो कहा है ।।

97. चेलगु नविच्छिन्नत ब्रह्ममु विच्छेदमु कल्पितमु कावुन ।
अलभिन्नलेकु पूर्णात्मकु नैक्यमुवलननु सुजनुल चे
अलघुतत्त्व मस्यादि महावाक्यमुलचे प्रकट मै अलरेडु
वेलयग नैक्य ज्ञानमुल्ग नविद्य माय मौनु गुणमुलतोडनु ।।
–अध्यात्म रामायण कीर्तनलु–बालकाण्ड–5-5

98. अध्यात्म रामायण कीर्तनलु–बालकाण्ड–5-1

पंचम् अध्याय

सन्त काव्य में अद्वैतवाद

मध्य युग में भक्ति सम्प्रदाय में वैष्णव और शैव धाराएँ प्रबल हुईं। वैष्णव धारा में राम और कृष्ण की सगुण भक्ति की प्रधानता थी। शैव धारा में योग दर्शन से अधिक सम्बन्ध के कारण सगुण भक्ति की अपेक्षा निर्गुण भक्ति धारा प्रबल हुई। योग दर्शन के कारण सत्यान्वेषण का बल पकड़ा। उपनिषदों में परमात्मा को निराकार और साकार दोनों रूपों में निरूपित किया। निराकार की मान्यता सिद्धों, नाथों, गोरख पंथियों के द्वारा सन्तमत तक चला आया। गोरखनाथ, कबीर आदि ने उस निराकार भगवान को अलख कहा।

अलख बिनाँणी दोई दीपक रचिले तीन भवन इक जोती।
तास विचारत त्रिभुवन सूझे, चूणिल्यो मांणिक मोती ॥[1]

वैष्णव भक्तों ने इस निराकार रूप को राम को या कृष्ण को परब्रह्म कहने में पाया। कबीर का निर्गुण राम कहना कहने का तात्पर्य यही है।

दशरथ सुत तिहुँलोक बखाना
राम नाम का मर्म न जाना ॥

प्रेममार्गी सूफी कवियों ने भी परब्रह्म को इस अलख शब्द से अभिव्यक्त किया।

अलख अरूप अबरन सो कर्त्ता,
वह वह सब सों, जब ओहि सौ वर्त्तौ ॥[2]

तुलसीदास ने निर्गुण परमेश्वर को अलख शब्द से सम्बन्धित करते हुए कहा है–

राम ब्रह्म परमारथ रूपा, अविगत अलख अनादि अनूपा ॥[3]

सन्त काव्य में प्रयुक्त निरंजन शब्द भी निराकार ब्रह्म का वाचक है। गोरखनाथ ने निरंजन शब्द की व्याख्या करते हुए कहा।

नाथ निरंजन आरती गाऊँ।[4]

ये निरंजन ब्रह्मरंध्र में विद्यमान है जिसकी प्राप्ति पंचतत्त्वों के अधीन करने पर होगी।

पंच तत्त्व सिधा मुड़ाया, तब मेटिले निरंजन निराकार।[5]

गोरखनाथ मानते हैं जीव और ब्रह्म एक है। मायान्मोख जीव ही निरंजन प्रभु का शरीर बना हुआ है।

कबीर ने अलख और निराकार ब्रह्म को निरंजन कहा।

अलख निरंजन लखे न कोई, निरभै निराकार है सोई।[6]

कबीरदास के शब्दों में बालक निरंजन निराकार, निर्विकार, एवं निर्लेप निरंजन है।

अलह अलख निरंजन देव, किहि विधि करों तुम्हारी सेव।[7]

कबीरदास के मत में अलख निरंजन तन मन और समस्त व्याप्त है।

अलख निरंजन सकल शरीरा, तन मन सो मिल रह्या कबीरा॥[8]

कबीर के मत में अलख निरंजन जन्म दाता और विधाता है।

कहे कबीर सरबस सुखदाता, अविगत अलख अभेद विधाता॥[9]

अलख निरंजन का स्वरूप आनन्दमय है। और वह आनन्दमय सर्वतन्त्र स्वतन्त्र्य है।

तहाँ न ऊगे सूर न चंद, आदि निरंजन करे आनन्द।[10]

भागवत पुराण मे निरंजन का आवास पुरंजन माना गया। पुरंजनोपाख्यान में इसकी पूरी व्याख्या हुई है। भक्त तुलसीदास ने परब्रह्म परमेश्वर के लिए निरंजन शब्द का प्रयोग किया।

निर्मम निराकार, निरमोहा, नित्य निरंजन सुख संदोहा।[11]

भक्त मीरा ने निर्गुण ब्रह्म के उपासना मे अपना विश्वास प्रकट किया।

जाको नाम निरंजन कहिये, ताको ध्यान धरूँगी।[12]

मीरा ने निरंजन परमेश्वर के लिए "जोगिया" शब्द का प्रयोग किया।

जोगिया जी आओ ने या देश

नेणज देखूँ नाथ मेरां, ध्याइ करू आदेस।[13]

केशवदास ने उस परब्रह्म परमेश्वर को ज्योति स्वरूप तथा निरीह निरंजन माना।

ज्योति निरीह निरंजन मानी।[14]

जायसी ने आत्मा और परमात्मा में अद्वैत को स्वीकार किया।

हों हों करत सबै मति खोई, जे तु नांहि आहि सब कोई।

आपहि गुरु सो आपहि चेला, आपहि सब जो आप अकेला॥[15]

सन्तधारा में गुरुनानक देव ने आत्मस्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया।

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु कालु न करमा।

अकुल निरंजन अपरपरंपर सगली जोति तुमारी॥[16]

सूरदास ने भी जीव और ब्रह्म में एक तत्त्व को स्वीकार किया।

पहिले हौं ही हों तब एक

अमल, अकल, अज, अभेद विवर्जित, सुनि विधि विमल विवेक

सो हों एक अनेक भाँति करि, सोभित नाना भेष ।।[17]

तुलसीदास ने जीव तथा परमेश्वर और जगत के अद्वैत सम्बन्ध को वारि और बीच के समान माना ।

वारि बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।[18]

ईश्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुख रासी ।।[19]

सन्त काव्य धारा में नामदेव ने सर्वव्यापी गोविन्द का वर्णन इस प्रकार किया–

एक अनेक ब्रिआपक पूरक, जत देषउ तत सोई ।
माइआ चित्र विचित्र विमोहित, बिरला बूझै कोई ।।[20]

सन्त काव्य धारा में कबीर ने सर्वत्र उसी तत्त्व का वर्णन इस प्रकार किया ।

हम तौ एक एक करि जाना
दोइ कहै तिनही कौ दो जग, जिन नाहिन पहिचाना ।। टेक ।।
एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा ।
एक ही खाक घड़े सब भाड़े, एक ही सिरजनहारा ।।[21]

सन्त काव्यधारा में संत दादूदयाल ने व्यापक ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया–

रोम रोम मैं रमि रह्या, सो जीवनि मेरा ।
जीव पीव न्यारा नहीं, सब संगि बसेरा ।।[22]

आपने साम्य भाव का वर्णन इस प्रकार किया ।

अलह राम छूटा भ्रम मोरा ।
हिन्दू तुरक भेद कछु नाहीं, देषों दरसन तोरा ।।[23] ।। टेक ।।

शून्य

परब्रह्म परमेश्वर के निराकार स्वरूप को संतों ने शून्य से अभिहित किया । शून्य आकाश का बोधक है । शिव भक्तों ने निराकार को शिव कहा । कबीर ने इसका प्रयोग किया ।

शक्ति अंधेर जेवड़ी भ्रम चूका निहचल सिव घर बासा ।।[24]

गोरखनाथ ने शून्य शब्द का विश्लेषण किया ।[25] और कहा कि शून्य ही कर्ता, भर्ता और संहर्त्ता है ।[26]

कबीर ने ब्रह्म के स्थूल और शून्य दोनों रूपों को स्वीकार कर शून्य शब्द में सूक्ष्मार्थ की प्रतिष्ठा की ।

वेद विवर्जित भेद विवर्जित, विवर्जित पापरु पुन्य
ग्यानं विवर्जित ध्यान विवर्जित, विवर्जित अस्थूल सुन्यं ।।[27]

सूफी कवि जायसी ने सन्न शब्द का प्रयोग निराकार ब्रह्म के लिए किया ।

सुन्नहि तें है सुन्न उपाती सुन्नहि ते उपजहि बहु भाँति ।।[28]

परिणामवाद

ब्रह्म, जीव और जगत के अस्तित्त्व तथा सम्बन्ध के विषय में दार्शनिकों ने अद्वैतवाद के अन्तर्गत तीन सिद्धान्तों को स्वीकार किया जो विवर्तवाद, परिणामवाद और प्रतिबिम्बवाद कहलाते हैं। परिणामवाद के अन्तर्गत दो भेद और स्वीकार किये गये। विकृत परिणामवाद तथा अविकृत परिणामवाद। कबीर ने अद्वैत तत्त्व को प्रकट करते हुए परिणामवाद को स्वीकार किया। जल और हिम के समान परिणाम से अलग दिखाई देने पर भी तत्त्वतः जीव और ब्रह्म को एक माना।

पाणी ही तैं हिम भया हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोइ भया, अब कह्या न जाइ।[29]

जीव और जगत को परमात्मा का अविकृत परिणाम मानते हैं। आरम्भ में जीव और जगत अस्तित्त्व में आते हैं और तिरोभाव में परमात्मा में समा जाते हैं। अर्थात् अवस्था भेद के कारण भिन्न दृष्टिगत होने पर भी तत्त्वतः एक हैं जैसे कंचन और कुण्डल।

जैसे बहुकंचन के भूषन, एके गालि त्वावंहिगे।
जैसे जलहि तरंग तरंगनी, ऐसे हम दिखलावहिंगे।[30]

प्रेममार्गी सूफ़ी काव्य धारा में प्रतिबिम्बवाद को स्वीकार किया है। क्योंकि प्रतिबिम्बवाद एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद दोनों में समन्वित हो सकता है और परिणामवाद नहीं। प्रतिबिम्ब के अनुसार सब रूपों में परमात्मा का प्रतिबिम्ब विरचित है। अनेक जल पात्रों में एक ही सूर्य का प्रतिबिम्ब जिस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है। अर्थात् नश्वर रूप में समापन से जीव परमात्मा में विलीन हो जाता है। जिस प्रकार प्रतिबिम्ब बिम्ब में समा जाता है। जबकि जल और कुम्भ के विगलित होने पर प्रतिबिम्ब बिम्ब में समा जाता है।

ज्यू बिजहि प्रतिबिम्ब समाना, उदकि कुम्भ बिगराना।[31]

सूफ़ी कवि जायसी ने प्रतिबिम्बवाद को स्पष्ट करते हुए लिखा है।

गगरी सहस पचास जो कोउ पानी भरि धरै।
सूरज दिये अकास, मुहमद सब मँह देखिये।।[32]

जायसी के अनुसार परमात्मा दर्पण है और परमात्मा ही दर्शक। जगत उसका प्रतिबिम्ब है जिसे वे स्वयं देख पाते।

देखि एक कौतुक हो रहा, रहा अंतरपट पेनहिं अहा।
सरवर देख एक में सोई, रहा पानि औ पान न हो।
सरग आई धरती मँह छावा, रहा धरति पे धरत न आवा।।[33]

सगुण भक्ति के कवियों ने परब्रह्म जीव और जगत में अभेद स्वीकार किया। प्रतिबिम्बवाद के अनुसार सूरदास ने कहा कि अनेक घड़ों में एक सूर्य का प्रतिबिम्ब

दिखाई पड़ता है। उसी प्रकार प्रत्येक शरीरधारी में एक ही चेतन तत्त्व विलसित होता है।

चेतन घट-घट है या माइ। ज्यों घट-घट रवि प्रभा लखाइ ॥[34]

केशवदास ने भी इसी तत्त्व को प्रकट किया।

"..... जग ब्रह्म नाम
तिनके अशेष प्रतिबिम्ब जान
तेह जीव जानि जग में कृपाल ॥"[35]

संत काव्यधारा में संत पलटू साहब ने साखी में कहा

जैसे काठ में अगिन है, फूल में है ज्यौं बास।
हरिजन में हरि हरत हैं, ऐसे पलटूदास ॥[36]

आनन्दवाद

साधना के उपरान्त समरस की अवस्था में आनन्द की प्राप्ति होती है। जीव की यह स्वतन्त्र्यावस्था कही जाती है। संकुचित अवस्था में विषमता विलसित होती है। तब सुख और दुःख दोनों रहते हैं। कबीरदास मुक्तावस्था को पूर्णानन्द की अवस्था मानते हैं।

दुखिया मूवा दुःख को, सुखिया सुख को झूरि
सदा अनन्दी राम के, जिनि सुख दुःख मेलहे दूरि ॥[37]

मन को प्रभु में लगा देने से अनन्त सुख अनुभव होता है। सभी क्लेषों का निवारण हो जाता है और जीव अमर हो जाता है।

कहे कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा ॥[38]

जायसी ने मुक्ति अथवा परमानन्द स्थिति को मानते हुए–

"पथिक जो पहुँचै सहिके धामू, दुख बिसरे सुख होई बिसरामू ॥"[39]

तुलसीदास ने मोक्ष की अपेक्षा भक्ति को महत्त्व दिया।

सगुणोपासक मोक्षण लेहि।[40]

तुलसीदास कहते हैं भक्त की आत्म ज्योति परब्रह्म की परम ज्योति में लीन होकर अचल हो जाती है–

सोइ जानइ देहु जनाई। जानत तुमहि होइ जाइ।[41]

और आत्मानुभव के सुख का प्रकाश पाकर पाता है जिससे कि भ्रम का विनाश होता है।

आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा ॥[42]

माया

शैव वैष्णव सभी भक्तों ने माया की शक्ति को माना। शक्ति के बिना शिव शव समान है। वैष्णवी के बिना विष्णु श्री हीन होता है। ब्राह्मणी के बिना ब्रह्मा

सृजन नहीं कर पाते। परम्परा में स्त्री शक्ति का नाम पहले लेकर बाद में पुरुष शक्ति का लिया जाता है जैसा लक्ष्मीनारायण, पार्वती परमेश्वर, सीता राम। माया के दो भेद माने गये–परा और अपरा या विद्या और अविद्या। परा माया से जीव मोक्ष को प्राप्त करता है और अपरा के प्रभाव से ब्रह्मजाल में फँसता है। कबीर ने माया के दो भेद स्वीकार करते हुए कहा।

माया दुइ भाँति की, देखी ठोंक बजाय।
एक मिलावे नाम से, एक नरक ले जाय ॥[43]

तुलसीदास ने सीता को राम की शक्ति (माया के रूप में) ग्रहण करते हुए उद्भव स्थिति तथा संहारकारिणी कहा।

उद्भवस्थिति संहारकारिणीं क्लेशहारिणी म्।
सर्व श्रेयस्करीं सीतां नतोअहं रामवल्लभाम् ॥[44]

तुलसीदास ने कहा कि प्रभु की शक्ति उनकी कृपा से प्रेरित होकर प्रवर्तित होती है।

प्रभु प्रेरित व्यापे तेहि विद्या ॥[45]

और इस विद्या के द्वारा प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं। केशवदास ने माया के विद्या तत्त्व को स्वीकार किया।

अनुमाया अक्षर सहित देखि ॥[46]

मध्यकालीन हिन्दी काव्य में माया के दो रूप आवरण और विक्षेप का विषद वर्णन मिलता है। माया की आवरण शक्ति को सूफ़ी कवियों ने भी स्त्रीकार किया। जायसी ने कहा है–

बालक दर्पण हाथ, मुख देखे, दूसर गने ॥[47]

शब्द

हिन्दी कविता में निराकार ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए शब्द का प्रयोग किया है। उपनिषदों में शब्द की प्रतिष्ठा मिलती है।[48] पतंजली के योग दर्शन में शब्द की साधना की प्रक्रिया मिलती है।

कबीरदास ने शब्द की साधना पर बल दिया।

साधो शब्द साधना कीजै।
जेहि शब्द से प्रकट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै ॥[49]

कबीर ने शब्द को निराकार ब्रह्म मानकर सर्वत्र व्याप्त कहा।

कबीर शब्द सरीर में, बिनि गुण बाजै ताँति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, ताथै छूटि भरंति ॥[50]

शब्द रूप परमेश्वर का वर्णन करते हुए गोरखनाथ ने भी शब्द की प्रतिष्ठा की।

"सबदे ताला सबदे कूँची सबदै सबद जगाया।
सबदे सबद सूं परचा मया, सजदे सबद समाया ।।[51]

सूर, तुलसी, मीरा आदि ने उपनिषद की परम्परा के अनुसार परमेश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों रूप स्वीकार किये। इन सगुण भक्त कवियों ने वर्णन की सुविधा के लिए प्रभु के सगुण रूप का वर्णन अत्यन्त रुचि के साथ किया किन्तु समय-समय पर प्रभु के निर्गुण रूप को व्यक्त किया। सूरदास ने आपका सगुणलीला पद गाने का तर्क भी समझाया। तुलसी ने दोनों रूपों को मानते हुए दोनों में अभिन्न तत्त्व को स्वीकार किया।

अगुनहिं सगुनहिं कछु नहिं भेदा।
उभय हरहिं भव सम्भव खेदा ।।[52]

कबीरदास ने सगुण तत्त्व को स्वीकार किया।

निर्गुण का करो ध्यान सर्गुण की करो उपासना।
निर्गुण सर्गुण से परे तहाँ हमारो ध्यान ।।[53]

केशवदास ने कहा कि ईश्वर भीतर बाहर सर्वत्र व्याप्त है। लोग उसे अपनी सुविधा के अनुसार कभी निर्गुण कभी सगुण मानते हैं।

निर्गुण एक तुम्हें जग जाने, एक सदा गुणावन्त बखाने ।।[54]

संदर्भ सूची

1. गोरखबानी–पृ. 3
2. पद्मावत–जायसी ग्रन्थावली, पृ. 3
3. रामचरित मानस–बालकाण्ड, पद-285, पृ. 265
4. गोरखबानी–पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, पृ. 157
5. वही–पृ. 27
6. कबीर ग्रन्थावली–श्याम सुन्दरदास, पृ. 230
7. वही–पृ. 199
8. वही–पृ. 104
9. वही–पृ. 501
10. वही–पृ. 199
11. रामचरित मानस–उत्तर काण्ड, पृ. 104
12. मीराबाई की पदावली–परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 53
13. वही–पृ. 42
14. रामचन्द्रिका–केशवदास, पृ. 25
15. जायसी ग्रन्थावली–अखरावट, पृ. 340

16. सन्त काव्यधारा–गुरुनानकदेव–आत्मस्वरूप, पद 13
17. सूर विनय पत्रिका–पृ. 264
18. वही
19. रामचरितमानस–उत्तर काण्ड, 116-1
20. सन्त काव्यधारा–सन्त नामदेव–सर्वव्यापी गोविंद का वर्णन, पद-1
21. वही–कबीरदास–सर्वत्र वही, पद-37
22. वही–संत दादूदयाल–व्यापक ब्रह्म, पद-3
23. वही–साम्यभाव, पद-5
24. कबीर ग्रन्थावली–परिशिष्ट, पृ. 291
25. गोरखबानी–पृ. 1
26. वही–पृ. 195
27. कबीर ग्रन्थावली–पृ. 162
28. जायसी ग्रन्थावली–अखरावट, पृ. 324
29. कबीर ग्रन्थावली–पृ. 13
30. वही–पृ. 137
31. वही–पृ. 148
32. जायसी ग्रन्थावली–अखरावट, पृ. 331
33. वही–पद्मावत पृ. 258
34. सूर विनय पत्रिका–पृ. 25
35. केशवदास–रामचन्द्रिका, पृ. 25
36. संत काव्यधारा–संत पलटू साहब, साखी, पद-5
37. कबीर ग्रन्थावली–पृ. 54
38. वही–पृ. 91
39. जायसी–पद्मावत, पृ. 27
40. रामचरित मानस–लंकाकाण्ड, पद 138
41. वही–अयोध्याकाण्ड, 128
42. वही–उत्तरकाण्ड, 202
43. संतबानी संग्रह–भाग-1, पृ. 58
44. रामचरित मानस–बालकाण्ड, मंगलाचरण, श्लोक 5
45. वही–सुन्दरकाण्ड 147/3, 4
46. रामचन्द्रिका-13-81
47. जायसी–अखरावट, पृ. 332
48. कठोपनिषद–1-2-16; प्रश्नोपनिषद, 8-2

49. हजारीप्रसाद द्विवेदी–कबीर, पृ. 268
50. कबीर ग्रन्थावली–श्यामसुन्दरदास, पृ. 63
51. गोरखबानी–पृ. 8
52. तुलसीदास
53. कबीर
54. रामचन्द्रिका–10-15

षष्ठ अध्याय

श्री हरिहरनाथ तत्त्व-धर्माद्वैत दर्शन

हरिहर शब्द निराला है। महर्षि वेद व्यास के द्वारा समासित है। समर्थ शब्दों को एक शब्दान्वित करना समास कहलाता है। यहाँ समर्थ तत्त्व एक तत्त्व हो समासित हुए। वेद व्यास ने हरिवंश में हरिहर शब्द का प्रयोग किया।

"नमो हराय हिप्राय नमो हरि हराय।"

हरिहरनाथ शब्द का प्रयोग चतुर्थी एक वचनान्त में है। इसलिए यह द्वंद्व समास नहीं होता। तब द्विवचनान्त में होना चाहिए था। एक वचन में है, इसलिए समाहार द्वन्द्व समास होता है। आजन्म विरोधी हो या अविनाभाव सम्बन्धी हो तो उनकी सूचना में समाहार द्वन्द्व समास रचते हैं। लोक दृष्टि में हरिहर के बीच आजन्म विरोध है। तत्त्व की दृप्टि में अभिन्न सम्बन्ध है। कविवर तिक्कना के अभिमत में जीवनिष्ठ की अभिरुचि के अनुसार पूर्वपद कर्मधारय भी सिद्ध होता है। यह "विष्णु रूपाय नमः शिवाय" भी विदित होता है।

तिक्कना ने कभी हरिहर समास को उत्तर पदार्थ प्रधान भी माना। एक स्थान पर तिक्कना ने "व्यास समासैक रूप हरिहरनाथा।" कहकर सम्बोधित किया। तत्त्व दृप्टि में हरिहर का कोई करचरणादि अवयव-युक्त रूप नहीं है। कविवर तिक्कना का हरिहरनाथ उनकी अपनी भावना का कल्याणमय रूप है।

किसी देवता का वर्णन आपादमस्तक करना चाहिए। आदि अन्त तथा रूप रहित परमतत्त्व रूप में स्थित हरिहर स्वामी का चरण शिरोभेद नहीं है। आपके चरणों में गंगा है। सर पर गंगा है। उसी प्रकार आपको वाम और दक्षिण भेद भी नहीं है।

अव्यक्त सत्ता व्यक्त हो रूप धारण करता है। कृपावश हो निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप लेता है। सगुण ब्रह्म उपासना हेतु सुलभ होता है। मनोकामना की सिद्धि कराने वाला होता है। श्री गौरी सहित उपस्थित हो श्री लक्ष्मी सम्पन्न हो भक्तजन को धन-बल प्रदान करता है। परतत्त्व को हरि के रूप में भावना कर "हरये नमः" कहते हुए भक्त ध्यान मग्न होता है तो कभी हर के रूप में भावना कर "हराय नमः" कहते हुए भावलीन होता। किन्तु वह ध्यान आगम सम्मत होने पर भी अवैदिक होने के कारण परतत्त्व के रूप में सम्भावित नहीं होता। "विष्णु

रूपाय नमः शिवाय" कहते हुए ध्यान मग्न होने वाले तत्त्वज्ञानी सात्त्विक भक्त होते हैं। उनका वैदिक ध्यायिता है। ध्यान करने वाला ध्यायी है। उनका भाव ध्यायिता है। वैदिक होने पर ध्यायी वैदिक ध्यायिता होता है। वैदिक ध्यायिता परमार्थ गत होने से कारण परतत्त्व उसकी मनोकामना की पूर्ति करता है। "विष्णु रूपाय, शिवाय," कहने पर भी विष्णु की गुणवत्ता एवं शिव की प्रधानता सिद्ध होती है। परतत्त्व शिव होने पर विष्णु उनका गुण हो जाता है।

शिवकेशव का भेद जगत के संक्षोभ का कारण होता है। तब जगत के कल्याण के लिए परतत्त्व हरि रूप धारण करता है जो सर्वदेवताओं का समन्वित रूप होता है। आन्ध्रों ने अपने काव्य में सर्वधर्म समन्वय कर विश्वात्मा के समरस रूप की भावना कर विश्व में अपना स्थान बना लिया।

उत्तर और दक्षिण में व्याप्त धार्मिक दुर्दशा का अवलोकन करने के पश्चात् महाकवि तिक्कना ने इस समस्या का तरुणोपाय सोचा। साम्प्रदायिक झगड़े हो रहे थे। राष्ट्रीय शक्ति विनाश की कगार पर खड़ी थी। राष्ट्र को एक सूत्रता में लाकर मतोन्माद तथा धर्मान्धता को मिटाकर भारतीय समाज को सुव्यस्थित करने के प्रयास किये गये। शैव वैष्णवाभेद तत्त्व को प्रतिपादित कर हरिहरोपासना का प्रचार किया और आगे बढ़कर राष्ट्रीय जीवन को नित्य रणक्षेत्र बनाये हुए धार्मिक झगड़ों को समाप्त कर विप्रतिपन्न शक्तियों में वेदान्त द्वारा शाश्वत रूप से समन्वय स्थापित कर तिक्कना धर्माद्वैत मूर्ति हुए। धर्माद्वैत-तत्त्व को पहले अपने में समाकर महाभारत की रचना को उद्यत हुए। इसी उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए तिक्कना ने लिखा है।

> विद्वत्संस्तवनीय भव्य कविता वेशुंडु विज्ञान सं
> पद्विख्यातुडु संयमिप्रवर सम्भाव्यानु भावुण्डु कृ
> ष्ण द्वैपायनु डर्थि लोक हितनिष्ठन् बूनि कार्विचेध
> र्माद्वैत स्थिति भारताख्यमगु लेख्यम्बैन याम्नायमुन् ॥[1]

अर्थात् विद्वज्जन से स्तुत्य, भव्य कविता के आवेश से सम्पन्न तथा विज्ञान सम्पदा से विख्यात है जो संयमी प्रवर भावी अनुभव को दर्शाने वाले (क्रान्तदर्शी) कृष्णाद्वैपायन ने अर्थी लोकहित में धर्माद्वैत स्थिति में सुशोभित होने वाले भारत नामक वेद (पंचमवेद) की रचना की।

धर्माद्वैत तत्त्व

धर्माद्वैत का तात्पर्य यह है कि वेद एवं उपनिषदों में प्रतिपादित धर्मसूत्र और उनमें निहित धर्म के सूक्ष्म व गूढ़ मर्म को मानना और व्यवहार पक्ष में (जीवन में) उतारना है। उदाहरण के लिए लोक व्यवहार में "सत्यम् वद" और "अहिंसा परमो धर्मः" के पालन में एक दूसरे के घातक बन सकते हैं। यथा कोई

ऋषिवर वन में तप कर रहा है। उसके सामने से एक गाय दौड़ गई। पीछे कसाई दौड़े आया और गाय के बारे में पूछा। गाय का पता बतावें तो हिंसा होगी। नहीं बतावें तो असत्य दोष लगेगा। ऋषि का कर्तव्य क्या है? यहाँ धर्म की स्थिति दुविधा में पड़ गई। द्वैत है। इसका रहस्य तथा समाधान धर्माद्वैत में है जो पंचम-वेद सूचित करता है।

महाभारत के धर्माद्वैत तत्त्व को प्रबोध करने के मूल में स्थित महान आशय को तिक्कना ने स्पष्ट किया–

"वेदमुलकु नखिल स्मृति वादमुलकु बहुपुराण वर्णुबुलकुन्।
वादैन चोटुलनु दामूदल धर्मार्थ काम मोक्ष स्थितिकिन्" ॥

अर्थात् वेदों, समस्त स्मृतियों के वादों, अनेक पुराणों के मूल में गूढ़ रूप में स्थित की वन्दना धर्मार्थ काम तथा मोक्ष प्राप्ति हेतु करता हूँ।

तिक्कना ने धर्माद्वैत के समय हरिहराभेद स्वरूप में अर्थ व अद्वैत तत्त्व को प्रकट करते हुए निरूपित किया कि हरिहरात्मक तत्त्व इन दोनों से परे है। वही परतत्त्व, परमेश्वर है। मैंने भी नन्नया के समान महाभारत को संहिता मानकर अनुवाद प्रस्तुत किया अपने जन्म को कृतार्थ कर लिया।[2]

धर्म के आडम्बर में भेद है। सूक्ष्मता में अभेद है। नाम रूप भेद से अनेक मत सम्प्रदाय बन गये हैं। मूल में एक निराकार, निर्गुण, शुद्ध, सत्त्व विराजमान है। (वागाडम्बरम् विकारो नाम धेयम् मृत्तिकेत्येव सत्यम्" को अनेक रीतियों में विस्तार से अपनी भावना शक्ति से चित्र-विचित्र रूपों में अपने सम्मुख रखता है। वेदान्ती होने पर भी तिक्कना प्रधान रूप से कवि है। वेदान्ती के समान तर्क का आधार नहीं लेता। कविता की भाषा में आकार की कल्पनाओं में मूर्त्त-पदार्थ में आप पाठकों को तत्त्व सुबोध करते हैं। कथ्य विषय महत्त्व की जिज्ञासा ही है। उसके अपने शब्दों में आप प्रकट करते हैं।

ओंकार वाच्युनकु न
हंकार विरूढ़ भावनाराध्युनकुन्।
ह्रींकार मय मनोज्ञा
लंकारोल्लास नित्य लालित्युनकुन् ॥[3]

ब्रह्म ओंकार वाच्य है। निगम स्वरूपी है। अहंकार विवर्जित होने वाले सुजन महामुनियों का आराध्य है। ह्रींकार अर्थात् अगम है। तत्त्व उस ब्रह्म के लिए अलंकरण है। महाकवि की दृष्टि में ह्रींकार का स्थान किंचिन्मात्र है।

कविवर कभी उस सुन्दर रूप का अपमान के साथ भाष्य करता है।

त्रिभुवन शुक दृढ़पंजर विभवमहितुनकु, समस्त विष्टमनिर्मो
क भुजंगपति कखिल जग दभिन्न रूपुनकु भावमाती तुनकुन् ॥

पाठान्तर–

त्रिभुवनशुक दृढ़पंजर
विभव महितुडु
समस्त विष्टम निर्मोक भुजंगपति
अखिल जगदभिन्न रूपुडु ।।[4]

तीन लोक रूपी तोते के लिए दृढ़पंजर वह ब्रह्म ही है । समस्त भुवन आपको सर्प की कुर्पास सदृश है । ब्रह्म रूपी भुजंगपति जगत नामक कुर्पास में छिपा रहता है । अर्थात् हरिहरनाथ तीन लोकों के भीतर और बाहर परिव्याप्त हैं । हरिहरनाथ जगत से अलग नहीं हैं । वेदान्त ने परब्रह्म के बारे में कहा ।

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स ब्रह्माभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरा त्परतः परः ।।[5]

कविवर तिक्कना ने और सरल बनाकर वेदान्त के निगूढ़ तत्त्व को जन साधारण तक पहुँचाया ।

अजगव शांर्गलिकृत
भुजगर्व निरस्त दैत्य भूम स्तुत्या ।
त्रिजगद्धारण नित्या
भुजग समाचरित शयन भूषण कृत्या ।।[6]

अजगव का तात्पर्य पिनाक धनुष से है । पिनाक तथा शार्ङ धनुषों को धर कर राक्षस संहार करता है । भुजग पर शयन कृत्य (अनन्त शयन) करने वाला, भुजग भूषण वाला, त्रिजगतों का उद्धार करने वाला हरिहर मूर्ति व अद्वैत मूर्ति है ।

ब्रह्मै वेदममृतं ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।।[7]

अर्थात् समस्त विश्व ब्रह्ममय है । इस विश्व के आगे पीछे उत्तर दक्षिण और ऊपर नीचे ब्रह्म स्वयं प्रभासित हो रहा है । समस्त जगत ब्रह्म का रूप है । "ईशावास्य उपनिषद्" कहता है–

ॐ ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।[8]

समस्त सृष्टि ईश्वर से व्याप्त है । इसी अर्थ की तिक्कना ने अपने काव्य में व्याख्या की । आप कहते हैं कि वह परिमाण दूर है । इतना उतना कहा नहीं जा सकता । किसी माप में नहीं आता और गमनागमन रहित है ।[9] एक स्थान पर रहते हुए यदि वह दूसरे स्थान पर नहीं रहा तब गमन का प्रश्न उठेगा । सर्वत्र व्याप्त पुरुष के लिए गमनागमन की समस्या नहीं है । वह ब्रह्म विश्व भूतान्तरात्मा है ।

तजेदति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।[10]

तिक्कना सोमयाजी अद्वैतवादी होने पर भी भक्ति मार्ग में निष्ठा रखते हैं। भक्ति के अभाव में ज्ञान समग्र नहीं होता। यह पूर्व सम्प्रदाय नहीं है। आचार्य शंकर भी ज्ञान मार्ग प्रवर्तक होकर भी भक्ति रंजित हृदय वाले हुए। आपकी रचनाएँ शिवानन्द लहरी, भजगोविन्द श्लोक भक्ति के सुरभित सुमन ही तो हैं। तिक्कना की कविता में भी भक्ति-भावना पग-पग पर दर्शन देती है। विराट पर्व के चतुर्थ आश्वास में आपने स्पष्ट कहा–

"प्रणमदवन विद्या प्रौढ़ संरूढ़ कांति।
प्रणुति चरण पद्मापद्म जातित्य सत्पो
षण चतुर दया विस्फारिता लोक लोक
पण निपुण जनांच द्भक्ति विक्रीत मूर्ती॥"[11]

तिक्कना सोमयाजी ने शंकर मत का पूर्णरूप से अवगाहन किया। शंकर के पाँच सौ वर्षों के पश्चात् होकर आपसे बहुत कुछ ग्रहण करते हुए भी आश्चर्य की बात है कि आपने शंकर का नाम कहीं नहीं लिया। ऋषि बादरायण का नाम तो बड़े आदर के साथ लिया–

व्यासादि मुनि प्रोक्त म
हा संदर्भाप्रमेयता रूढ़ गुणो
ल्लासा नैर्गुण्य समु
द्भासि रहस्यानु भाव भक्ताधीना॥[12]

वेद तथा उपनिषदों के नाम अक्सर लेते रहे–

निगम कुसुम गंधोन्मेष मूताभिधाना
सगुण विगुण लीला सौम्य साक्षित्व नाना
जगदवन विधान स्थैर्य दत्तावधाना
नगार्रध निवासानन्द संस्तूय माना॥[13]

तिक्कना ने षट्दर्शनों का अध्ययन किया तथा योग दर्शन, सांख्य दर्शन को समादृत किया

अमृतमयात्म भक्ति सुगमानु
भवोज्ज्वल दिव्यवर्त्य ष
ट्समय तानु भाव
पुरुषत्रयता विवृत स्वभाव॥[14]

इसमें वर्णित षट्समय षट्दर्शन हो सकते हैं या आधारादि षट्चक्र हो सकते हैं। एक स्थान पर आपने अष्टांगयोग का प्रस्तार किया–

अवगर्भित रहस्याष्टांग सम्यक्प्रकारो
त्सव गुरु करुणा विस्तार गाढ़ प्रशांति
प्रवण हृदय पद्मोद्भासि विज्ञान सारा॥[15]

इसी प्रकार शल्य पर्व में योग रहस्य (2–422) को संक्षेप में बताया। सौप्तिक पर्व में सांख्य सिद्धान्त (2–134) की व्याख्या की।

परब्रह्म द्वन्द्वातीत है, निष्क्रिय एवं क्रिया सहित है। एक साथ रूप रहित तथा रूप सहित है–

निरुपम गुण राशी निर्गुणत्त्व प्रकाशी।
भरित भुवन कार्या भव्य नैष्कर्म्य धुर्या
विरत निरत भाव्या विश्व लोकैक सेव्या।
स्फुरित बहुशरीरा शुद्ध नैरूप्य सारा ॥[16]

इस प्रकार हृदय प्रधान हो परिणत ज्ञान से प्रपूर्ण है। जीवन की इस उच्च मनोभूमि में पहुँचकर आपकी कामना परमात्मा की परम करुणा का पात्र बनना ही है। जन्मान्तर का दुःख मिटाकर परम सुख को प्रदान करने की विनती करते हुए अद्वैत मूर्ति का आपने ध्यान किया।

हरिहरनाथ–अद्वितीय ब्रह्म

तेलुगु में महाभारत की रचना का कारण तत्कालीन राजनैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक परिस्थितियों के परिवेश में देखने पर स्पष्ट होता है कि यह राजनीति परक काव्य है। नीतिकाव्य है, धर्मशास्त्र है, समाजशास्त्र है इत्यादि अर्थात् तत्कालीन परिस्थितियों का लेखा-जोखा है, समग्र व्याख्या है। किन्तु कोई छाया ग्रहण मात्र न होकर उसका अनुशीलन एवं परिशीलन हुआ। तत्कालीन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ निकाला गया। अन्य क्षेत्रों से प्रस्तुत अंश का सीधा सम्बन्ध नहीं है। इसलिए मुख्यतः धार्मिक क्षेत्र में आध्यात्मिक तत्त्व पर विचार विमर्श किया गया।

तिक्कनामात्य ने महाभारत में हरिहरनाथ पर कुल मिलाकर 193 पद्य लिखे। विराट पर्व की अवतारिका के षष्ट्यन्त में और सभी पद्य आश्वास की आदि और अन्त में लिखे गये। स्वर्गारोहण पर्व में एक पद्य आश्वास के अन्त में विरचित है।

हरिहरनाथ का स्वरूप-चिन्तन

तिक्कना की कल्पना में हरिहरनाथ के तीन रूप दृष्टिगत होते हैं। पहला रूप वह जिसमें पुराणों में प्रसिद्ध शिव केशव के विशिष्ट लक्षणों से युक्त एक मूर्ति हरिहरनाथ है। दूसरा स्वरूप महर्षि व्यास के हृदय में स्थित आपसे विरचित समस्त साहित्य में व्याप्त हरिहरनाथ है। तीसरा स्वरूप अद्वैत वेदान्त के ज्ञान से परिपोषित तिक्कना के जीव लक्षण सँवलित तथा उपनिषदों से प्रतिपादित परब्रह्म के रूप में हरिहरनाथ है।

प्रथम रूप में उपासना योग्य ब्रह्म जो सगुण रूप में आराधना-अर्चना के अनुकूल होता है। दूसरे रूप में हरिहरनाथ व्यास महर्षि के सिद्धान्त के अनुसार,

सभी सम्प्रदायों को अपने में समन्वित करने वाला आधारभूत तत्त्व होता है जो सगुण-निर्गुण दोनों रूपों में उपासना के योग्य होता है। तृतीय रूप में निर्गुण परब्रह्म अद्वितीय, अकल सभी तत्त्वों से परे होता है। तिक्कना के काव्य में हरिहरनाथ के वर्णन सन्दर्भ अनेक प्राप्त होते हैं। कहाँ किस रूप का वर्णन हुआ इसका निर्णय करना सरल नहीं है। भक्ति सम्प्रदाय में आध्यात्मिक चिन्तन विधान के आधार पर रूप की भावना होती है। हृदय में, मस्तिष्क में स्वरूप का चित्र बन जाता है। इसलिए स्थूल रूप में तिक्कना के काव्य सन्दर्भों के अनुसार हरिहरनाथ स्वामी का वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है।

शिव–केशव–विशिष्ट लक्षण लक्षित हरिहरनाथ

ब्रह्मादि द्वारा वन्दनीय दानव संहार करता नगशरधि निवासी श्री तथा पार्वती सहित सुविलसित होने वाले चन्द्र सूर्य की अग्नियों को नेत्रों में बसाने वाले तुलसी माला तथा अस्थिमाला से वक्षस्थल समलंकृत–होने वाले, परशुधर भासित परागधारी, श्रीवत्स तथा मोरपंख धारी इन्द्रादि सुरों के द्वारा सुपूजित होने वाला, वक्षस्थल में लक्ष्मी को शरीर के वाम भाग में गौरी को बसाये हुए हरिहरनाथ सुशोभित हैं। चक्र तथा त्रिशूलधारी हैं। वन मालिका तथा उरगहार को धरने वाले पीताम्बर को धोती के रूप में, गजचर्म को उत्तरीय के रूप में पहनने वाले श्री हरिहरनाथ हैं। गरुड़ तथा वृषभ जिसके वाहन बने हुए हैं, आप हरिहर स्वामी हैं। कौस्तुभ रत्न तथा अस्थि मालाओं से आपका वक्षस्थल सुविराजित है। गजासुर का नाश करने वाले हैं, गंगा भवानी को चरणों में धरने वाले हैं। चक्रसुदर्शन तथा त्रिशूल को उभय कर में धारण कर देवता समूह के रक्षक बने हुए हैं। गंगादेवी तथा मोरपंख को बड़े ही आनन्द के साथ सर पर धरे हुए हैं। गरुड़ तथा वृषभ के झण्डे आपसे प्रकाशित होते हैं। दर्पित समाज का गर्व मर्दन करने वाले हैं। नक्र दन्त रूपी लौकिक बाधाओं में फँसे हुए गजराज जैसे जीवों की रक्षा में दक्ष हैं। मन्मथ के जन्म के कारक तथा उसकी मृत्यु के मूलभूत कारण आप स्वयं हैं। सोम तथा मोरपंख से अभिराम हैं। सुग्सिद्ध, साध्य, खेचर, भूचर आदि प्रमुख भूत गणों के साथ सुशोभित हो रहे हैं। सर्प को तल्प बनाये हुये हैं और भुजग जो भूषण बनाये हुए हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्णों को क्रमशः निजमुख, भुज, ऊरु तथा चरणों में जन्म देने वाले हैं। तिक्कना ने इस प्रकार हरिहरनाथ के स्वरूप का वर्णन समय-समय पर किया। शिव तथा केशव दोनों के सामान्य लक्षणों को सुरासुर के रक्षण एवं शिक्षण कार्य में निरत हुए सभी गुणों को श्री हरिहरनाथ में माना। शिव केशव के स्वरूप लक्षण के चिह्नों को हरिहरनाथ के साथ रखा। इसका मूल उत्तर नरसिंह पुराण, सिंहासन द्वात्रिंशिका में देख सकते हैं। बाह्य वर्णन करने में तिक्कना की शैली विशिष्ट है। तिक्कना ने इस हरिहरनाथ को अद्वितीय ब्रह्म या

परब्रह्म के रूप में प्रस्तुत कर आन्तरिक तत्त्व दर्शन के साथ बाह्य स्वरूप के भव्य दर्शन करवाये ।

हरिहरनाथ स्वामी - अद्वितीय परब्रह्म

आत्मा, परब्रह्म, परमात्मा आदि शब्द निरतिशय रूप से ब्रह्म शब्द की वृद्धि के सूचक हैं । आत्मा शब्द में सर्वव्यापकता सिद्ध होती है । वृद्धि लक्षण व्यापकता का सूचक है । ये शब्द ब्रह्म तत्त्व को विदित नहीं करते । किन्तु सूचना मात्र देते हैं । सत्य, ज्ञान, आनन्द आदि शब्द भी इसी प्रकार ब्रह्म सूचक हैं । वास्तव में ब्रह्म निगुण, निराकर होता है । इसलिए शब्दों में विदित होने वाले लक्षण उस परब्रह्म में नहीं है । इसलिए शब्द तथा अर्थ से परे कहा जाता है । जिज्ञासा का कारण ब्रह्म नहीं भी बन सकता किन्तु ब्रह्म-जिज्ञासा होती है । समस्त वैदिक साहित्य ब्रह्म जिज्ञासा का फल है । यह नहीं, यह नहीं (नेति-नेति) कहते हुए-उसका निरासन करते हुए-ब्रह्म को ज्ञेय बनाने की चेष्टा की गई । पुनः ब्रह्म की सर्वव्यापकता का निरूपण करते हुए निर्गुण तत्त्व को प्रशस्त किया गया । निराकार निरुनाधिक ब्रह्म की उपासना असंभव जानकर ओंकारादि शब्दों तथा हृदय आदि ब्रह्म स्थान की प्राप्ति के साथ बताये गये । उपासना हेतु ब्रह्म के लिए शुद्ध, सत्त्वोपाधि की स्वीकृति की गई । इससे जगत का निर्माण आदि ब्रह्म में माना गया । सकल उपनिषद् उस सत्त्वोपाधिक ब्रह्म की व्याख्या करते हैं । हरिहरनाथ की कल्पना उपनिषदों के अनुकूल की गई । आपने अपनी ब्रह्मोपासना का निरूपण सगुण और निर्गुण से परे शुद्ध सत्त्व में किया ।

> परब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान ।
> सगुण और निर्गुण से परे तहाँ हमारो ध्यान ।। (कबीरदास)

उपनिषदों के आधार पर अद्वितीय परब्रह्म के विशेषण तथा उनकी व्याख्या तिक्कना ने अनेक प्रसंगों में की । कतिपय मुख्य तत्त्व निम्न लिखित हैं ।

1. **ओंकार वाच्य है** ।[17]–वेदान्त ने उस परब्रह्म को ओऽम् शब्द से अभिहित किया । ओमिति ब्रह्म ।[18] एत्वद्येवाक्षरं ब्रह्म ।[19] ब्रह्म की सृष्टि से पहले और बाद में भी रहने के कारण परात्पर ब्रह्म कहा जाता है । ओंकार इन दोनों स्थितियों का प्रतीक है । ओंकार ब्रह्मोपासना का श्रेष्ठ आलम्बन है ।

> एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालंम्बनं ।
> एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।।[20]

ब्रह्म प्रणव भाव से रम्य होता है । वह संकल्प मात्र से सृष्टि करता है । उसका संकल्प ही मायाशक्ति है । वही, प्रकृति है । वह ब्रह्म से अतिरिक्त नहीं है । सृष्टि की प्रक्रिया उसी से सम्पन्न होती है । वह स्त्री स्वरूपिणी है । वह ह्रींकार

प्रणव है। ब्रह्मप्रणव, देवीप्रणव नाम से प्रणव द्विधाभूत होता है। ब्रह्मप्रणव ओंकार है तो देवीप्रणव ह्रींकार है। ब्रह्म को जिस प्रकार ओंकार वाच्य बताया जाता है। उसी प्रकार देवी भागवत में श्रीदेवी ह्रींकार मन्त्र वाच्य के रूप में कही गयी।[21] ओंकार तथा ह्रींकार दोनों उस परतत्त्व में समापन्न होते हैं। सृष्टि हेतु दोनों का अवसान बनता है। सृष्टि हेतु ह्रींकार अभिव्यक्त होता है। ह्रींकार सहित हो ब्रह्म सकल ब्रह्म कहलाता है। तिक्कनामात्य सकल ब्रह्मोपासक हुए।

वेदान्त उस परब्रह्म को जगत के अन्तर बाह्य रूप में व्याप्त मानता है। त्रिभुवन शुक दृढ़ पंजर–कहकर ब्रह्म के दोनों रूपों की व्याख्या की गई।

२ **अन्नमयत्वादि विरामोन्नति वाङमननदूर**[22]–तैत्तरीयोपनिषद् में क्रमगति में ब्रह्मोपदेश देते हुए नेति-नेति (यह नहीं यह नहीं) मानता हुआ समझाने का प्रयत्न किया गया। ब्रह्म रहित पदार्थ को आत्मा और बुद्धि से हटाने का इसमें विधान है। सती, सुत, मित्रादि में संसार सुख में तादात्म्य भाव रखते हुए पुरुष अपने आपको भूला हुआ है। पहले यह सब मैं नहीं हूँ, ऐसा विचार पैदा होना चाहिए। प्रारम्भ में अन्नरस के बने हुए शरीर को आत्मा कहा गया। वही अन्नमयकोश है। पुरुष की भावना-अन्न को परब्रह्म मानने की स्थिति में है। अन्नमयकोश के अन्तर्गत प्राण है; शरीर प्राण से पूर्ण होता है। पुरुष जब प्राण को परब्रह्म मानता है तब प्राणमयकोश में विचरता है। किन्तु प्राण मन से पूर्ण होता है। जब समझने लगता है कि मन प्रबल है। तब मन को ब्रह्म मानता है। मनोमयकोश में संचार करता है। क्रमशः बुद्धि का विकास होने पर विवेक जागृत होता है। विचार शील प्राणी मेधा सम्पन्न होता है। तब विज्ञान को ब्रह्म मानता है। मन विज्ञान से पूर्ण होता है। शरीर, प्राण, मन, विज्ञान साधनमात्र होकर वह आनन्दमय कोश में विचरण करेगा। आनन्द से पूर्ण हो जायेगा। विज्ञानमय कोश आनन्द से पूर्ण होता है, अर्थात् विज्ञान, मन, प्राण, शरीर सभी में आनन्द का संचार होता है। अर्थात् आनन्द ही आत्मा है। वही आत्मा है वही परमात्मा है, वही ब्रह्म है। एकमेवसत्य वही है। अर्थात् ब्रह्म को पुरुष मानते हैं। तब उसका शरीर प्राण, मन विज्ञान सभी ब्रह्म रूप में दर्शन देते हैं।

उपासना के क्षेत्र में साधक क्रमशः प्रत्येक कोश से विकास करता हुआ अपनी चेतना को जागृत करते हुए प्रवृद्ध होता है। अर्थात् परब्रह्म, अन्न, प्राण, मन, बुद्धि और आत्मा सभी में है। इसीलिए तिक्कना ने अन्नमयत्वादि विरामोन्नत कहा। ऐसा परमात्मा वाक् और मन से परे होता है। शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। कठोपनिषद कहता है।

"नैववाचानमनसा प्रापुं शक्योन चक्षुषा"[23]

"यद्वाचानम्युदित येन वागभ्युद्यते।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।[24]

"न चक्षुषा गृह्यते नापि वाया नान्यैर्देवैस्तपसाकर्मणा वा ।

ज्ञान प्रसादेन विशुद्ध सत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ।[25]

आत्मा, वाक्, मनो नेत्रादि से प्राप्त नहीं होता ब्रह्मवाक् से प्रकट नहीं होता कठकेन श्रुतियाँ कहती हैं कि "वाक्" इन्द्रियाँ स्वयं उस ब्रह्म से प्रकाशित होता है। इसलिए ब्रह्म इन सबसे परे रहकर इनको प्रकाशित करता है इनके द्वारा जाना नहीं जा सकता। इन्द्रिय शक्तियाँ ब्रह्म तत्त्व को ग्रहण करने में असफल हो जाती हैं। उस उपनिषद मत के आधार पर तिक्कना ने ब्रह्म को वाङमनस से परे माना और श्री हरिहरनाथ को उस निर्गुण परब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित किया।

3. **"तत्त्वम्" पदार्थ रूपी है** ।[26] "तत्, त्वम्" आदि पदों के अर्थभूत परब्रह्म है। छान्दोग्योपनिषद् में श्वेतकेतु से उद्धालक ऋषि ने कहा–

"सर्वं तत्सत्यं सा आत्मा तत्त्वमसि" ।[27]

पहले उद्धालक ने कहा–

"सत्वेव सोम्येदमग्र आसीदेक मेवाद्वितीयम् ।"[28]

यह परिदृश्यमान जगत् समस्त पहले सत् का रूप माना गया। सत् पदार्थ ही सबकुछ है। वही आत्मा और वही तुम स्वयं हो तत्वंमसि महावाक्यों का यही तात्पर्य है। "प्रज्ञानं, ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म।" मैं और तुम दोनों रूपों में व्यवहृत होनेवाला एक ही तत्त्व है। वही प्रत्यगात्मा कहलाता है। त्वम् शब्द का तात्पर्य प्रत्यगात्मा से है।

परमात्मा केवल आनन्द लक्षण संयुत होता है। स्वाभाविक, सर्वाधिक रूपों में ब्रह्म रूप वही है। तत् शब्द का तात्पर्य वही परमात्मा है। असि शब्द दोनों में एकता सिद्ध करता है। सर्वज्ञ तथा सत्य स्वरूप परमात्मा के साथ प्रत्यगात्मा त्वम् के साथ एकता अखण्डता सिद्ध होती है। तब परमात्मा प्रत्यगात्मा में अन्तर समाप्त होकर अद्वैत ब्रह्म का निर्गुणतत्त्व रूप विदित होता है। उपाधि रहित तथा उपाधि सहित होना इनकी विशेषता है। पहला तत् पद वाच्य है तो दूसरा त्वम् पदवाच्य है। वास्तव में दोनों भिन्न नहीं हैं। वही हरिहर ब्रह्म है। त्वम्–प्रत्यगात्मा के रूप में तत् ही अद्वैत ब्रह्म ही पदार्थ रूप धारण कर इस लोक में उपासना योग्य रूप धारण करता है। वह हरिहरनाथ तत्त्व निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में विद्यमान है।

4. **भूमस्तुत्य निस्सीमभूमा है** ।[29]–भूम शब्द से परब्रह्म वेदान्त में व्यवहृत हुआ–

"यत्रनान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानातिसभूमा ।"[30]

अर्थात् जिस तत्त्व में अन्य साधन से देखने का, सुनने का, जानने का नहीं

है वही भूमा है, निरतिशय पूर्ण ही भूमा है – देखना, सुनना, जानना अन्य वस्तु के लिए सम्भव है, अद्वितीय वस्तु के लिए असम्भव। इसीलिए कि वह सर्वत्र व्याप्त है और असीम। इसी परमतत्त्व की व्याख्या–महाकवि तिक्कना ने हरिहरनाथ सन्दर्भ में की।

5. **कालस्वैर विहारभंजक है**[31]–सूर्य और चन्द्र काल के सूचक हैं। काल के रूप हैं। सृष्टि की आदि से उनका अस्तित्त्व है। किन्तु परमात्मा सृष्टि स्थिति लय काल में विद्यमान होता है। काल उसके अधीन होकर गतिमान होता है। काल स्वैर विहार करता है। उच्छृंखल होता है। किन्तु उसका लगाम ईश के अधीन है। अस्तु काल को परतन्त्र कहा गया और परमात्मा को काल स्वैर विहार भंजक कहा गया।

6. **सूक्ष्मतर सम्मास तथा महास्थूल मूर्ति है**।[32]

श्रुति वाक्य है–आकाश शरीरम् ब्रह्मा।[33]

तिक्कना ने श्रुति के स्वर में स्वर मिलाते हुए परमतत्त्व को अतिसूक्ष्म माना। "नित्यम् विभुम् सर्वगतम सुसूक्ष्मम् तदव्ययम् यद्भूतयोनि परिपश्यन्ति धीरा:।"[34] यह अक्षर स्वरूप ब्रह्म शाश्वत है नाना रूपों में विश्व व्याप्त है। वह अति सूक्ष्म है, जितना सूक्ष्म है उतना ही स्थूल है। "अणोरणीयान्महतो महीयाना-त्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम।" अर्थात् परमाणु से भी सूक्ष्म है। महत् परिणाम से पृथ्वी आदि से बढ़कर है। वह सब महानों से महान है।

"बृहच्च तद्धिव्यमचिन्त्य रूप तत्सूक्ष्म तरम् विभाति।"[35]

उस परब्रह्म से सूक्ष्म वस्तु भी कहीं नहीं है। वह स्वयं प्रकाशमान है। तिक्कना ने अद्वितीय परब्रह्म के स्थूल, सूक्ष्म रूपों का वर्णन श्रुतियों के आधार पर हरिहरनाथ को परब्रह्म मानकर किया।

7. **नाशोत्पत्ति रहित है परिवर्तन संक्षयदूर है**।[36]–आत्मा ज्ञान स्वरूप है। जन्म और मृत्यु से वह परे होता है।

"नजायते म्रियते वाविपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्
अजो नित्य: शाश्वतोअ पुराणोनहन्यते हन्यमाने शरीरे॥"[37]

आत्मा, अज, नित्य, शाश्वत, पुराण है। शरीर का नाश होने पर भी उसका नाश नहीं होता। किसी कारण से आत्मा का जन्म नहीं होता और उससे कोई दूसरी आत्मा का सृजन नहीं होता।

"स वस महानज आत्मा अजरो अमरो अमृतो अभयो ब्रह्मा।"[38]

ब्रह्म महान्त अजर, अमर, अमृत, अभय, होने के कारण अपरिवर्तनशील है। जिसमें परिणाम नहीं होता, उसका क्षय नहीं होता। जिसका जन्म ही नहीं होता उसका अन्त या संक्षय नहीं होता। इसी तत्त्व को तिक्कना ने अपने काव्य में अभिव्यक्त किया।

८. निर्भरानन्द देही[39] तथा विज्ञान देही है ।[40]

"आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ।"[41]

"विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् ।"[42]

विज्ञान आनन्दमय हो ब्रह्मरूप है ।

"योविज्ञाने तिष्ठन्विज्ञानादन्तरो य,
यं विज्ञानम् न वेद यस्यविज्ञानम् । शरीरम्,
यो विज्ञानमन्तरो यमयत्येषत आत्मान्तर्याभ्यमृतः ।।"[43]

जो विज्ञान में स्थित है उसके भीतर बाहर होकर भी उससे जाना नहीं जाता । जिसका शरीर ही विज्ञान है जो अन्दर से विज्ञान का नियन्त्रण कर रहा है वही अन्तर्यामी है ।

वह अमृतमय आत्मा है । वेद इस ज्ञानानन्द स्वरूप ब्रह्म की व्याख्या करते हैं । तिक्कना ने अपने काव्य के आश्वासान्त पद्यों में इन शब्दों को बार-बार दोहराया है ।

सम्भृतानन्द वर्त्म-सन्ततानन्द सान्द्र-शाश्वतानन्द मूर्ति-आनन्द रूप सुस्थिरा-नन्दभास-वैभवानन्द दीप्त-आनन्दशील-भास्वदानन्द मार्गी-निष्कलानन्दशील-इस प्रकार आनन्द शब्द की आवृत्ति कर तिक्कना ने परमतत्त्व के आनन्द रूप को व्यक्त करने का प्रयत्न किया ।

आनन्द की परिकल्पना

महाभारत का अनुवाद करते समय तिक्कना अपनी स्वतन्त्रता का परिचय देते हैं । वेदव्यास और वाल्मीकि का अनुसरण कर तिक्कना ने सारी जनता को आनन्द पहुँचाने के लिए महाभारत का अनुवाद किया था । उन्होंने महाभारत की रचना के प्रारम्भ में ही लिखा है–"मैंने अपने देश की जनता के आनन्द के लिए ही महाभारत की रचना का प्रारम्भ किया ।" आनन्द ही तिक्कना का प्रधान लक्ष्य था । हरिहरनाथ को वे आनन्द का स्वरूप मानते हैं । उनके महाभारत के प्रत्येक पर्वांत में आनन्द की मुद्रा रहती है । प्रत्येक पर्वांत के अन्तिम शब्दों में जो सम्बोधन किया गया है उससे हमें इसका पता भली-भाँति लग जाता है ।

1. विराट पर्व के अन्त में	आनन्द संस्तूयमाना
2. उद्योग पर्व के अन्त में	परमानन्द भूत्येक रूपा
3. भीष्म पर्व के अन्त में	संततानंद सांद्रा
4. द्रोण पर्व के अन्त में	शाश्वतानन्द मूर्ती
5. कर्ण पर्व के अन्त में	निर्भरानन्द देहा
6. शल्य पर्व के अन्त में	आनन्द रूपा
7. सौप्तिक पर्व के अन्त में	सुस्थिरानन्द भासा

8. स्त्री पर्व के अन्त में	आनन्द शीला
9. शांति पर्व के अन्त में	भास्वरानन्द मार्गी
10. अनुशासिक पर्वांत में	निष्कलानन्द मूर्ती
11. अश्वमेध पर्वांत में	दर्शितानन्द वर्त्मा
12. आश्रमवास पर्वांत में	सानन्द वर्मा
13. मौसल पर्वांत में	आनन्द प्रकाश स्वरूपा
14. ग्रन्थान्त में	संभृतानन्द भावा

उपर्युक्त आनन्द मुद्रा की बात पहली बार तेलुगु के प्रसिद्ध आलोचक श्री कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी ने पहचाना है। महाभारत की रचना में ही नहीं तिक्कना ने अपने निर्वचनोत्तर रामायण के मंगलाचरण में भी लिखा है। 'आनन्द सांद्रा स्थिति' श्रीहर्ष के नैषध काव्य भी आनन्द पदांकित हैं। श्रीहर्ष के शिल्प रहस्य का उपयोग तिक्कना ने कर लिया होगा। नहीं तो उसे तैत्तरीय उपनिषद् में व्यक्त 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्' ही प्रमाण होगा। इस आनन्द मुद्रा के कारण ही आपकी दार्शनिकता हमें विदित होती है। तिक्कना की यही एकमात्र आकांक्षा थी कि मानव जीवन सदा आनन्दमय रहे।

तिक्कना का काव्य निर्माण वैभव एक अखण्ड शब्द संसार की सृष्टि, भावना संसार की चेतना और विशिष्टानन्दानुभूति है। कुछ लोग उनके काव्य के बाह्य सौन्दर्य पर मुग्ध होते हैं तो कुछ लोग भीतर प्रवेश कर भाव-सौन्दर्य युक्त मधुर रसों का आस्वादन कर अपने जीवन को धन्य समझते हैं।

9. **चिन्मात्र रूप है**–जो अद्वितीय आदि अन्त रहित है। परम सूक्ष्म तथा अमल वही चिद् रूप है। वही ब्रह्म है। इस विषय में किसी प्रकार का संशय नहीं है।

"एक माद्यन्त रहितम् चिन्मात्र ममलम् सूक्षमम् तत् ब्रह्मासि न संशयः।"[44]

10. **भानु सहस्र प्रभरम्यानन्त वपुः प्रकाश है**[45]–परमात्मा ज्योति स्वरूप है। आत्मा का तेज स्वप्न की कान्ति के समान द्रष्टव्य है। अर्थात् स्वप्न में सूर्य चन्द्र तथा अग्नि नहीं होते। वाणी शान्त रहती है फिर भी कान्ति में सब कुछ दिखाई देता।

'आत्मै वास्य ज्योतिर्भवति'[46] वह आत्मज्योति है। आत्मा ही परमात्मा है। परमात्मा ज्योति स्वरूप है और उसके प्रकाश से आदित्यादि प्रकाशमान हैं।

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्, नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥"[47]

सूर्य चन्द्र आदि को प्रकाश देने वाला वह ज्योति स्वरूप परमात्मा है। वह असीम शक्ति सम्पन्न है। इसीलिए सहस्र शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रकाश जिसका

शरीर है, जिसका वस्त्र है वही परमात्मा है। तिक्कना ने इस तत्त्व के अनुसार हरिहर ब्रह्म की व्याख्या की।

11. **रसात्मक रूपी है**[48]–परमात्मा रस स्वरूपी है। कहा गया है कि "रसो वैस: रसह्येवायं लब्ध्या आनन्दी भवति।"[49] रस को प्राप्त कर प्राणी अपने जीवन में परम आनन्द को प्राप्त करता है। जिज्ञासुजन प्रीति पूर्वक, वेदान्ती लोग ज्ञान के द्वारा परम ज्ञान को प्राप्त कर आनन्द लाभ करते हैं। अर्थात् परब्रह्म को प्राप्त करते हैं। तृप्त हो जाते हैं। इस लोक में जीवन में तृप्ति प्रदान करने वाले मधुर पदार्थ रस कहलाते हैं। ब्रह्म को प्राप्त कर तृप्ति मिलती है, तब उसे रस कहा गया है। उसकी प्राप्ति के बाद और किसी की चाह नहीं रह जाती।[50] यह प्राप्ति अखण्ड तथा नित्य मानी जाती है।

अखण्डैक रसोह्यात्मा अखण्डैक रसं नित्यं अखण्डैक रसं परम्।
अखण्डैक सादन्यनास्ति नास्ति ।।[51]

अखण्ड रस से बढ़कर निश्चित रूप से और कोई रस नहीं है। इतर रस नहीं है। वही अद्वितीय ब्रह्म है जो एक रसात्मक हरिहर ब्रह्म है।

12. **'अकृतक मधुरोक्तिव्याप्त सन्दीप्तसारा है**[52]–कृतक अर्थात् जो यथार्थ नहीं है। समस्त शब्द कृत कर है। इसलिए कोई एक शब्द उस ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप को प्रकट नहीं कर सकता। कतिपय शब्द अतिप्रयास करने पर सूचना मात्र देते हैं। सूचना मात्र से ब्रह्म का अस्तित्त्व सत्य रूप में जाना जाता है। फिर वह शब्द जो अपने में सब कुछ भरकर है, वह अकृतक मधुरोक्ति है। कृतक मधुरोक्तियाँ सत्य, ज्ञान तथा आनन्द की सूचना देती हैं। अकृतक मधुर उक्ति में व्याप्त हो सार रूप में प्रकाशित होने वाला ब्रह्म है।

13. **बान्धव शात्रवा कलितभावभवा है**[53]–बन्धुता, शत्रुता इन दो भावनाओं के मूल भाव में परमात्मा अवस्थित है। शत्रुता, मित्रता, प्रियता, अप्रियता, सांसारिक भाव बन्धन हैं। द्वैतभाव में शत्रुता, अप्रियता, अमित्रता अर्थात् वैर तथा भय है। साधर्म्य में समभाव में अर्थात् अद्वैत स्थिति में समस्त परमात्मा है। अज्ञान के वशीभूत होकर जीवात्मा शत्रुता की भावना का अनुभव करता है। अद्वितीय में शत्रुता व भय नहीं है। एक उपाधि भेद से दूसरा भावभेद से द्वैत स्थिति भासित होती है। भेदभाव में द्वैत स्थिति का अनुभव करने वाला परम स्थिति को प्राप्त कर अन्तर को मिटा देता है। उपाधि भेद होते हुए भी भाव भेद मिट जाता है। परमात्मा के साथ एकात्मा हो जाता है। तब भय आदि अन्तर की भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

"यदाह्येचैष एतस्मिन्नुदर मन्तरम् कुरुते। अथतस्य भयम् भवति।
तत्वैव भयंविदुषे: अमन्वानस्य ।।"[54]

जब जीवात्मा परमात्मा से स्वल्प रूप में भेद की कल्पना कर दिया हो जीवात्मा ने तभी जीव के मन में उभय तत्त्व का ज्ञान जो प्राप्त करेगा तब वह भय दूर होगा। इस प्रकार अपनी आत्मा ही कभी शत्रु कभी मित्र भावना की कल्पना कर लेता है।

"बन्धुरात्मात्म न स्तन्यये ना त्तैवात्म नाजित:
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।"[55]

भगवद्गीता में कहा गया है कि जो अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त कर लेता है वह आत्मा ही उसका बन्धु है। जो अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त नहीं करता तब उसकी आत्मा विरोधी जैसा द्रोह कार्य में प्रवर्तित होता है। अर्थात् इन्द्रियों में प्रकृति, अज्ञान के कारण भेद बुद्धि शत्रुता भयात्मक है। इन्द्रियों से निवृत्ति, अभेद बुद्धि मित्रता बन्धु भाव है। इस प्रकार आत्मा एक स्थिति में शत्रु है तो दूसरी स्थिति में मित्र है। जीवात्मा धर्म मार्ग पर चलता है। तो समस्त प्रकृति मित्र भावना से उसकी उन्नति में सहायता करती है। तब वह ज्योति की ओर निरापद हो बढ़ता है। अन्यथा अधर्म मार्ग में जाकर तमस की ओर बढ़कर भेद बुद्धि से शत्रुता को बढ़ावा देकर समस्त प्रकृति में वह घातक सिद्ध होता है और अज्ञान पथ में चलकर अँधेरों में खोकर जीवन में भटक जाता है। किन्तु परब्रह्म की दृष्टि में शत्रु मित्र दोनों भाव सम हैं। दोनों रूपों में वह स्थित होकर जीवात्मा को प्रशिक्षण देता है। इसीलिए परब्रह्म भावातीत है अभेद अद्वितीय है।

14. **तार्किक वच: कलनानभिगम्य है**[56]–तर्कशास्त्र की दृष्टि से मीमांसाकार ने कहा कि ब्रह्म अगम्य है। निश्चित रूप से तर्क के द्वारा ब्रह्म जाना नहीं जा सकता। तर्क और वितर्क के द्वारा ब्रह्म अप्राप्य है। "हि अतर्क्यम् न एषा तर्कणमति रापनेया"[57] क्योंकि तर्क बुद्धि कल्पित है। मानव की बुद्धि तेज होकर तर्क रूप में परिणत होती है। सत्य असत्य तर्क के द्वारा सिद्ध होता है। किन्तु तर्क के द्वारा सत्य को असत्य और असत्य को सत्य सिद्ध कर सकते हैं। तर्क के प्रमाणों के विषयों में भी एकमत नहीं है। तर्कशास्त्री कभी चार कभी छ: कभी आठ प्रमाण अपने-अपने दर्शन ग्रन्थों में मानते आये। शंकराचार्य जी के अनुसार तर्क अप्रतिष्ठित है। सत्य के पथ में तर्क कुछ सीमा तक साथ दे सकता है। किन्तु पूर्ण सत्य की प्राप्ति में तर्क असमर्थ है। अस्तु परब्रह्म तर्क वचनों से परे है। ब्रह्म अप्रमेय है।[58] इस प्रकार तिक्कना ने हरिहरब्रह्म के रूप में स्थापित किया।

15. **ईक्षणकलना कृतार्थ है**[59]–ईक्षण का अर्थ पर्यालोचन है ब्रह्म पर्यालोचन के द्वारा जाना जाता है। पर्यालोचन का तात्पर्य संकल्प है। ब्रह्म संकल्प मात्र से कृतार्थ होता है। इस जगत की सृष्टि करता है। लोकों का सृजन करना चाहा तब आत्मा ने लोकादि का सृजन किया।

"स ईक्षत लोकान्नु सृजाइति ।
स इमांल्लोकान सृजत ।।"[60]

पश्चात् बाह्याकार में विस्तृत किया ।[61] इस प्रकार तिक्कना ने हरिहरनाथ को संकल्प मात्र से सृजन करने वाला जगत कर्ता सिद्ध किया ।

16. **करणरहितमूर्ती है**–परब्रह्म का योग्य कार्य तथा कोई साधन नहीं है । ज्ञान, बल, क्रिया तथा स्वभाव के रूप में उस परमात्मा की पराशक्ति विविध रीतियों में गतिशील होती है ।[62] अस्तु परब्रह्म निर्गुण है । पराशक्ति अर्थात् माया के द्वारा समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं और ब्रह्म में आरोपित होते हैं । ब्रह्म साक्षी मात्र रह जाता है । कर्माध्यक्षस्सर्व भूताधिसाक्षी–कहते हुए श्रुति समर्थन करती है । अन्य परमात्मा की स्तुति की है ।

17. **सदसद्रूपचितात्मा है–सुकृतमय विलासयुक्त है**[63]–सत् और असत् में ब्रह्म समृद्ध है । सद्सद् रूपी है । वह ब्रह्म सुकृतमय विलास करता है ।

"असद्वाइदमग्र आसीत्, ततोवै सदजायत, तदात्मानम् ।
स्वयमकुरुत, तस्मात् सुकृत मृच्यत इतिद्वैतत्युकृतम् ।"[64]

इस नाम रूपात्मक समस्त संसार सृष्टि से पहले असत् के रूप में विद्यमान था । उस असत् से सत् ने जन्म लिया । यह असत् नाम रूपात्मक संसार में स्वयं उद्युत हुआ । इसलिए उस असत् को सुकृत कहते हैं । असत् का तात्पर्य नव्याकृत में ब्रह्म ही है । असत् का तात्पर्य नाम रूपात्मक ब्रह्म है । सत् का तात्पर्य प्रविभक्त नाम रूपात्मक जगत् है अर्थात् अव्याकृत ब्रह्म ने स्वयं व्याकृत ब्रह्म के रूप में अपने आप का सृजन किया । अर्थात् ब्रह्म स्वयं कभी सत् कभी असत् रूप में अवस्था भेद से कहा जाता है ।

18. **जगत सृजन तथा प्रलय ब्रह्म लीला की परिपाटी है**–ब्रह्म के लिए जगत् का सृजन जगत की सृष्टि स्थिति तथा प्रलय का विधान एक क्रीडा मात्र हो जाता है । "सर्वलोकानाम् सृष्टि स्थित्यन्त कृद्विभुरीशः ।"[65] सभी प्राणी जिससे पैदा होते हैं, जिसके कारण जीते हैं, और अन्त में जाकर जिसमें मिल जाते हैं, उसे ब्रह्म कहते हैं । "यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते, येनजातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्तभि संविशंति, तद्विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्मेति ।"[66] इस मन्त्र के अनुसार समस्त भूतों की उत्पत्ति, स्थिति लय कार्य ब्रह्म से सम्पन्न होता है । ये सब उस ब्रह्म के लिए अति सामान्य क्रीड़ा विशेष है, क्रीड़ा से तात्पर्य विलास है । यह विलास ब्रह्म के लिए माया जनित नहीं है । माया ब्रह्म के अतिरिक्त नहीं है । अर्थात् माया ब्रह्म की शक्ति है । माया की शक्ति के कारण जगत भासित होता है । ज्ञान प्राप्ति के बाद जगत के होते हुए भी नहीं होता है । माया शक्ति को क्रियान्वित करना या क्रियाभिमुख करना ब्रह्म के अधीन है । इस शक्ति को ब्रह्म कभी प्रवर्तित करता और कभी उपसंहार करता रहता है । ब्रह्म की केलि की यह परिपाटी है ।

19. **स्फुरित बहुशरीरी है।**[66]–ब्रह्म का शरीर नहीं होता किन्तु सभी शरीरों में वह अवस्थित होता है।

"एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा रूपम्-रूपम् प्रतिरूपो बहिश्च।"[67]

"सर्व भूतात्मा होकर परमात्मा अनेक रूपों में प्रत्येक प्राणि के रूप में भासित होता है।"

"एको देव: सर्व भूतेषु गूढ: सर्व व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।"[68]

तिक्कना ने इसी परब्रह्म का वर्णन किया।

20. **निरंजन-निष्क्रिय-निष्कल-नैर्गुण्य गण्य है।**–अंजन से तात्पर्य तमस है। ब्रह्म स्वयं तेज का रूप होता है। इसीलिए निरंजन है। निरंजन इसलिए कि क्रिया शून्य है। क्रिया शून्य होने के कारण निर्विकार होते हैं। निष्कल का तात्पर्य निरवयव है अर्थात् निर्गुण है।

"निष्कलम् निष्क्रियम् शान्तम् रिनवद्यम् निरंजनम्।"[69]

तिक्कना ने ऐसे सगुण साकार होकर भी निर्गुण के रूप में अवस्थित परब्रह्म का वर्णन किया।

21. **यज्ञात्मक स्वरूपी है।**[70]–परब्रह्म अन्तरिक्ष में व्याप्त है। अग्नि, तेज, जल, वायु आदि में है। समस्त लोकों में है। सर्व प्राणियों में है। समस्त उपनिषद् उसकी व्याख्या करते हैं। इसलिए वह यज्ञ रूपी भगवान कहा जाता है। यज्ञरूप में उसका अर्चन किया जाता है।

22. **पुरुषत्रयता विवृत स्वभाव वाला है। गुणत्रयस्फुट विशेषी है।**–वास्तव में ब्रह्म अद्वितीय, निर्गुण होकर भी अनेक रूपों में है। उसके संकल्प मात्र से सब कुछ सम्पन्न हो रहा है। तब पुरुषत्रय कहने का तात्पर्य यही होगा, कि सृष्टि, स्थिति, संहार कार्य ब्रह्म के द्वारा होता है। ये तीन कार्य-तीन गुण धर्म ब्रह्म के संकल्प में गुणत्रय या पुरुषत्रय से सम्भव होते हैं। सत्त्व, रज, तम गुणत्रय हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, पुरुषत्रय माने जाते हैं। आशय सिद्धि के लिए परब्रह्म तीन रूपों में क्रियान्वित होता है। धर्म के रूप में रुद्र, जगत के रूप में विष्णु तथा ज्ञान के रूप में ब्रह्मा व्यवहार करते हैं। ज्ञान, जगत, और धर्म ब्रह्म से अभिन्न हैं। आत्मशक्ति, पराशक्ति, प्रकृति के रूप में अनेक शब्दों में विलसित है। अनेक नाम रूपों में प्रभासित है। परमात्मा से अभिन्न होकर पुरुषत्रयता तथा गुणत्रयता से जगत, प्रकृति तथा समस्त प्राणि-कोटि की सृष्टि, स्थिति, लय, कार्य रूपी लीला में प्रभु की इच्छा या संकल्प के अनुसार यह शक्ति प्रवर्तित होती रहती है।

23. **प्रकृति-पुरुष योगी है।**[71]–"प्रकृति पुरुषात्मकम् जगत्" के अनुसार यह जगत प्रकृति तथा पुरुष के योग से सम्पन्न हुआ। अर्थात् प्रकृति से पुरुष भिन्न नहीं है, और पुरुष से प्रकृति भिन्न नहीं है। तिक्कना के अनुसार सबकुछ ब्रह्ममय है।

24. **प्रकृति विकृति प्राप्त सांख्य प्रदीप्त है।**[72]–सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति समस्त सृष्टि के मूल में है। ब्रह्म प्रकृति तथा माया शक्ति के द्वारा सब कुछ सम्पन्न कराता है। प्रकृति में त्रिगुणात्मक भाव को प्रकाशित करता है। इसीलिए स्वयं विकार रहित होता है। तिक्कना ने अपने काव्य में परब्रह्म को विकृति रहित मूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया। तिक्कना ने सांख्य दर्शन की विशिष्टताओं का अध्ययन कर अद्वैततत्त्व को निष्पन्न किया।

25. **क्रमपरिणतमूर्ति है।**[73]–निष्क्रिय एवं अनन्त ब्रह्म में कोई परिणाम नहीं होता। जिसमें परिवर्तन सम्भव है, उसका नाश होना निश्चित है। ब्रह्म अजर तथा अमर है। अस्तु ब्रह्म के लिए कोई परिणाम सिद्ध नहीं होता। तिक्कना के इस प्रकार कहने में तात्पर्य यही होगा कि परब्रह्म अपनी शक्ति से नाम रूपादि जगत का निर्माण करता है। जो सृजन कहलाता है वह ब्रह्म निर्विकार है। यह अद्वैत के अन्तर्गत विवर्तवाद कहलाता है। परब्रह्म मूर्तिमान तथा सावयव नहीं है। आत्मा निरवयव होती है जिसका कोई परिणाम नहीं होता। माया के कारण साकार में बहुनाम रूप धरते हुए परिवर्तन को पाता है। अर्थात् ब्रह्म ही प्राणिकोटि में प्रत्येक जीव में अवस्थित हो उपाधि प्राप्तकर परिवर्तन को पाता है। साकार हो त्रिगुणात्मक विकारों के अधीन होता है। परन्तु निर्गुण आत्मा एवं परब्रह्म निरवयव निराकार तथा निर्विकार होते हैं। इसीलिए परब्रह्म अपने ही अवयवों के रूप में शरीरधारी हो निर्गुण होते हुए भी क्रम से परिवर्तन पाता है।

26. **हृदयकमलवासी है।**[74]–ब्रह्म के हृदय में स्थित रहने से हृदि+अयं= हृदयम् हुआ। परमात्मा का निलय होने के कारण वह हृदय हुआ। इस प्रकार हृदय शब्दार्थ ब्रह्म निलय कहा गया। हृदय के मध्य भाग में स्थित आकाश में मनोमय अमृत स्वरूपी ज्योतिर्मय पुरुष का निवास है।

"स य एशोअन्तर्हृदय आकाशः। तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः अमृतो हिरण्मयः।"[75]

इसके आगे ऋषि कहता है कि परमात्मा सर्वान्तिर्यामी है। अंगुष्ठमात्र पुरुष के रूप में सर्वजनों के हृदय प्रदेश में अधिष्ठित हुआ है।

"अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोअन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।"[76]

वेदान्त में हृदय को गुह कहा गया है। सर्व व्यापी हो परमात्मा हृदय में स्थित कैसे होगा, ऐसा प्रश्न उठता है। तात्पर्य यह है–उपासनार्थ हृदय प्रदेश में प्रतिष्ठित है। देवताओं के लिए अनेक प्रतीक हैं। उसी प्रकार ब्रह्म का प्रतीक हृदय है। हृदय कमल में ब्रह्म का निवास योग सिद्ध है। हृदय स्थान में अनाहत चक्र है। कमल के समान हृदय में दल हैं। मूल में चक्र है। हृदय स्थान में अष्टदल कमल के बीच में रेखावलय में जीवात्मा के रूप में परमात्मा प्रवर्तित है। सबकुछ करता-धरता है। समस्त उसी परमात्मा में प्रतिष्ठित है।

"हृदिस्थाने अष्टदल पद्मम् वर्तते,

तन्मध्ये रेखा वलयम् कृत्वा जीवात्म रूपम् अणुमात्रम् वर्तते, ।
तस्मिन्त्सर्वम् प्रतिष्ठितम् भवति सर्वजीवाति, सर्वम् करोति ।।"[77]

तिक्कना से वर्णित हरिहर ब्रह्म तत्त्व रूप इसी प्रकार है ।

27. **भक्त के हृद्ग्रन्थि विभेदक है** ।[78] उपासकों के हृदय की ग्रन्थियों को खोलनेवाला परमात्मा है । उपासना का तात्पर्य मननिधि ध्यासन से है । उससे प्रत्यगात्मा स्वरूपी परमात्मा विदित होते हैं । प्रत्यगात्मा विज्ञानधनी है । उसकी कृपा से ज्ञान की प्राप्ति होने से हृदय की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं । उपनिषदों में इसकी व्याख्या की गयी है ।

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।"[79]

अज्ञान के कारण अहंकार, ममकार पैदा होते हैं । फलस्वरूप अभिमान, रागद्वेष जन्म लेते हैं । ये सब परमात्मा का निलय हृदय कमल को आवृत्त कर तमस के परदे के समान ग्रथित होते हैं । इस गाँठ को भी उद्ग्रन्थि कहते हैं । ज्ञान की प्राप्ति से ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है । तमस का आवरण हट जाता है । हृदय में स्थित दुर्भावनाएँ मिट जाती हैं । जीवात्मा प्रत्यगात्मा होकर परात्पर परमज्ञान स्वरूप में परब्रह्म को प्राप्त करता है ।

28. **मन्त्ररूप प्रकीर्तो है** ।[80]–याज्ञवल्क्य महर्षि ने अपनी पत्नी मैत्रेयी से कहा कि देखने योग्य, सुनने योग्य, मनन करने योग्य, निधिध्यासन करने योग्य वह परब्रह्म मात्र है । मनन मन्त्र रूप में किया जाता । उपनिषद् वाक्य मन्त्र हैं । ध्यान में ध्येय विषय का मन्त्र का मनन होता है । ओंकार रूप में मन्त्र का ध्यान निहित है । ओंकार मन्त्ररूप में स्थित परब्रह्म है । मनन ध्यान का आलम्बन मन्त्र है । इस प्रक्रिया को जप यज्ञ कहते हैं । तिक्कना ने मन्त्ररूप में स्थित परब्रह्म की शरण लेने का प्रबोध किया ।

29. **मुनि हृदय निलय है** ।[81]–मुनि से तात्पर्य मननशील मनीषी से है । ब्रह्म का मनन किया जाता है । मननशील जीव के हृदय में ब्रह्म का साक्षात्कार होता है । शुद्ध जल जिस प्रकार अलग होकर मिलने पर अभेद रूप से मिल जाता है । उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा का मिलन सिद्ध है ।

"यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ।।"[82]

जो व्यक्ति मननशील हो परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वही मुनि कहलाता है ।

"एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति ।"[83]

वह जान लेता है कि परमात्मा सकल जीवों के हृदय में अधिष्ठित है ।

सबके हृदय में रहने पर भी मननशील प्राणियों के मन में परब्रह्म प्रकाशित होता है।

30. **दममहित तपस्यद्‌भाव संवेद्य तत्त्वा है**।[84]–दम, तपस्या, अग्नि-होत्रादि कर्मों में स्थित परब्रह्म की प्राप्ति के काम्य कर्म हैं–वेद, वेदांग, (शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प) सत्य आयत है। अर्थात् ब्रह्म की माया इनके द्वारा विदित होती है। इन्द्रिय निग्रह से तपस्या रूपी सद्‌भावना के बल पर समदर्शन प्राप्त होता है। चित्त शुद्धि से ज्ञान का अभिमुखी हो कर्म का प्रस्तार सत्त्व की ओर बढ़ता है।

"न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यै र्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥"[85]

आत्मज्ञान के बल पर शुद्ध अंतःकरण को लेकर निरावयव स्वरूप में ब्रह्म का ध्यान जो करता है। वही परमतत्त्व को प्राप्त करता है। अर्थात् शुद्ध अंतःकरण के बिना देवताओं (इंद्रियों) के द्वारा तपस्या के बल पर अग्नि होत्रादि कर्म के कारण उस परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। तिक्कना के अनुसार शमदम आदि शुष्क सम्पदा की जय अर्थात् इन्द्रियों पर विजय पाना ही दम माना गया है। फलस्वरूप परब्रह्म संवेद्य हो जाता है।

31. **देव पितृपथ प्रवर्तक है**–प्रश्नोपनिषद के अनुसार परब्रह्म को काल स्वरूप कहा गया है। अहोरात्र द्वारा काल बनता है अर्थात् सूर्यचन्द्र प्रजापति आदि-काल स्वरूप हैं। प्रजापति ही ब्रह्म कहा गया।

"संवत्सरो वै प्रजापति स्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च।"[86]

संवत्सर प्रजापति स्वरूप है। उस प्रजापति के दक्षिणायण, उत्तरायण दो पथ हैं परब्रह्म के ये दो संचार मार्ग हैं। उत्तरायण देवपथ है, दक्षिणायण पितृपथ है। आदित्य रूपी परब्रह्म इन मार्गों में प्रवर्तित होता है। अपने शरीर में इड़ा, पिंगला दो नाड़ियाँ हैं, जो नासिकारन्ध्र पर्यन्त व्याप्त हैं। परमात्मा जीवात्मा के रूप में प्राणवायु बनकर गुदा स्थान से नासिका पर्यन्त संचार करता है। इस संचार मार्ग में द्वय ज्ञड़ा, पिंगला नाड़ियाँ हैं। इड़ा पितृयान है तो पिंगला देवयान है। इड़ा वाम नासिका और पिंगला दक्षिणनासिका है। वायु रूप में सर्वत्र व्याप्त ब्रह्मसूत्र ब्रह्म के रूप में बृहदारण्योपनिषद् में कहा गया। "वायवै तत्सूत्रं।"[87] अस्तु शरीर में प्राण वायु के रूप में संचार करने वाला जीवात्मा ही परमात्मा है जो देवपितृपथ में सदा प्रवर्तमान है।

32. **नित्यानित्य विवेक वैभव सम्पन्न है। समुन्निद्रान्तरंग स्फुट प्रत्यक्ष है**।[88] नित्यानित्य के विवेक वैभव से जो प्रशस्त होता है, उसके अंतरंग में वह परब्रह्म प्रत्यक्ष होता है। उन्निद्र का तात्पर्य निद्रा से जागना है। निद्रा में अज्ञानी रह जाता। नित्यानित्य विवेक से जगकर ज्ञानी हो जाता है। नित्यानित्य अर्थात् अशाश्वत, शाश्वत तत्त्वों में – दारापुत्र में व्यस्त जीवात्मा विनिद्र है। परन्तु शरीरोपाधि के कारण अज्ञान निद्राग्रस्त है। अशाश्वत तत्त्वों में फँसा हुआ है। अपने आप को

पहचान कर ज्ञान को प्रकाशित कर ज्ञानी हो जाता है। यही विवेक माना गया। इस लोक में पुण्य कर्म का फल प्राप्त होता है। किन्तु उसके व्यय होने से फिर यथा-स्थिति को प्राप्त हो जाता है। शमदमादि बाह्य, अन्तर इन्द्रिय निग्रह से विवेक को जगाने पर परमज्ञान को प्राप्त करता है। सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है। तब प्रकाश रूपी परमात्मा प्रत्यक्ष हो जाता है। तिक्कना के हरिहरब्रह्म का सूत्र व ब्रह्म यही है।

33. **हंसनादैक वेद्य है।**[89] **हंस भावैक गम्य है।**[90]–हंसनाद का तात्पर्य प्रणव नाद ओंकार से है, जो मूल रूप में प्राण वायु है। स्वप्रकाश चिदानन्द स्वरूपी स्वयं ज्योति स्वरूप परब्रह्म है। हकार, सकार परमात्मा और प्रत्यगात्मा के प्रतीक हैं। मध्यबिन्दु अनेक रीतियों के दोनों का सम्बन्ध सूचित करती है। जीवात्मा परमात्मा तथा प्रकृति पुरुष में एकता का सूचक है। हंस शब्द के द्वारा जो जाना जाता वह परब्रह्म है।

ध्यान में भावना होती है। भावना का आलम्बन होता है। निरालम्बन स्वरूप परमात्मा हंस शब्द के द्वारा सूचित होता है। प्रणय ओंकार मन्त्ररूप में स्थित है जो ध्यान का आलम्बन है। भावना के द्वारा ध्यान मग्न हो तुरीय अवस्था में मधुमती भूमिका को प्राप्तकर भावातीत स्थिति को जीव पहुँचता है। तब आलम्बन रूपी भाव व मन्त्र छूट कर निरालम्बन रूपी भावातीत स्थिति में परमानन्द को प्राप्त करता है। यही भावैक गम्य है। इसी स्थिति में तब द्वंद्वातीत स्थिति को पाता है और स्वस्वरूप को जानकर परमात्मा में लीन हो जाता है। इसी को मोक्ष कहा गया।

> "प्राणापामयोरैक्यं कृत्वासर्वं विश्वमात्मस्वरूपेण
> लक्ष्यै धारयति, तदातुरीयातीतेवस्था तदसर्वेषां
> आनन्द स्वरूपोभवति, द्वंद्वातीतोभवति, या वद्देहधारणा,
> वर्तते तावत्तिष्ठति, पश्चात्परमात्म स्वरूपेण प्राप्तिर्भवति,
> इत्यनेन प्रकारेण मोक्षोभवति इदमेवात्म दर्शनोपायं भवति।"[91]

परमात्मा को हंसनादैक वेद्य तथा हंसभावैक गम्य कहा जाता है। योग साधना में उच्छ्वास, निश्वास में भी हंस कहा जाता है। रेचन हकार है तो पूरन सकार है। जीव अप्रयत्न अनायास सहज उच्छ्वास निश्वास के द्वारा निरन्तर हंस मन्त्र का जप करते रहता है। कुम्भन को बिन्दु सूचित करती है। प्राणवायु स्वरूप जीव परमात्मा का जप करना स्वयं सिद्ध है। अर्थात् देह में वायु रूप में परमात्मा का संचार सदा होता है। इसी भावातीत परब्रह्म[92] का वर्णन तिक्कना ने किया।

34. **पश्चिमनाड़ी सरण में है**–परमात्मा इस शरीर में पश्चिम नाड़ी मार्ग में संचार करता है। शरीर में स्थित दशक में मुख्य रूप से इड़ा-पिंगला शुषुम्ना मानी जाती हैं। शुषुम्ना गुदा स्थान से मूलाधार चक्र द्वारा सहस्रार्थक रीढ़ की हड्डी के अनुसार व्याप्त होती है। उसके वाम पार्श्व में इड़ा नाड़ी तथा दक्षिण पार्श्व में पिंगला नाड़ी चलती है। दोनों नासिकारन्ध्र तक व्याप्त होती हैं। प्राणवायु के रूप में परमात्मा

नासिका रन्ध्र के द्वारा गमनागमन करते रहते हैं। शुषुम्ना के पूर्व दिशा में पिंगला नाड़ी जिसे पूर्ण नाड़ी कहते हैं। अर्थात् इड़ा नाड़ी पश्चिम नाड़ी कहलाती है। इसे चन्द्र नाड़ी भी कहते हैं।

परमात्मा वायुरूप में इड़ा नाड़ी (पश्चिम नाड़ी) से प्रवेशकर फिर पूर्व नाड़ी से पिंगला नाड़ी से निकल जाते हैं। इसीलिए परमात्मा को पश्चिम नाड़ी सरण कहा गया। इड़ा नाड़ी चन्द्रनाड़ी होने के नाते अमृत तत्त्व की कल्पना की गई। परमात्मा का शरीर में प्रवेश होना ही श्रेष्ठ माना जाता है। इसीलिए वह शरीर के अन्तर में घुल मिलकर सभी तन्त्रों को क्रियान्वित करता है। इस प्रकार तिक्कना ने योग शास्त्र के अनुसार अमृत स्वरूप, आनन्दात्मा, ज्योतिपुंज, वायु स्वरूप, परमतत्त्व का निलय इस शरीर को मानकर इसके द्वारा पवित्राचरण करवाने पर बल दिया है।

हरिहरनाथ—सृष्टि और दृष्टि

तिक्कना के अनुसार ओंकार आलम्बन से अद्वैतब्रह्म की उपासना सिद्ध है। लोक व्यवहार की दृष्टि से किसी मूर्ति का आलम्बन स्वीकार किया गया। ओंकार शब्द निराकार है। सामान्य जन के लिए वह सरल है। इसीलिए परब्रह्म की उपासना के लिए उसी का आधार होना अपेक्षित है। किंचित् समय के लिए तिक्कना ने उस अद्वितीय परब्रह्म का लौकिक रूप शिवकेशव माना जो विशिष्ट लक्षण-लक्षित है। शिवकेशव में तारतम्य मानना भी आपने निषिद्ध माना। शिवकेशव अथवा किसी मूर्ति के द्वारा ओंकारोपासना का ब्रह्म की साधना करना जीव की परमावधि है। उनके गुणों का वर्णन तथा अर्थवत्ता को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि वह किसी विशेष रूप का वर्णन नहीं केवल नाम रूप रहित निरपेक्ष तत्त्व का वर्णन है। देखिए–

"निरुपम गुणराशी। निर्गुणत्त्व प्रकाशी।
भरित भुवनकार्या। भव्यनैष्कर्म धर्या।
विरत निरतिभाव्या। विश्वलोकैक सेव्या।
स्फुरित बहुशरीरा। शुद्धनैरूप्यसारा॥"

तिक्कना ने अपने परब्रह्म का निरूपण भक्ति योग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, योग शास्त्र, तन्त्रशास्त्र इत्यादि के द्वारा पुष्ट किया है। सभी योग मार्ग, साधन तत्त्वों का साध्य एकमात्र परब्रह्म परमेश्वर है। इसी प्रकार शिवकेशव तत्त्व भी साधन है, साध्य नहीं। साध्य एकमेवाअद्वितीयम् है। दार्शनिकों के तत्त्वों का तिक्कना ने काव्यगत तथा भावगत कर सामान्य जन को अनुभव गम्य आस्वाद योग्य बनाया। तिक्कना इसी कारण कवि मनीषी तथा तत्त्वदर्शी के रूप में प्रकट होते हैं। तिक्कना ने दार्शनिक तत्त्वों को अधिकाधिक रूप में रसमय बनाकर लोकोपकार किया।

ब्रह्मसूत्रों द्वारा संकेतित हो उपनिषदों द्वारा रूपायित हो, भागवत, महाभारत इत्यादि के उपाख्यानों द्वारा भावैकगम्य हो श्री हरिहरनाथ ऋषिवर, मुनि-

जन तथा कविवरों के मनोफलकों पर प्रतिष्ठित विश्ववेद्य हुआ। कवि मनीषियों ने सामान्य जन के लिए इस रूप को भाव गम्य बनाकर सुलभ किया, कीर्तन योग्य कर दिया।

संदर्भ सूची

1. महाभारत–विराट पर्व
2. श्री कोराड रामकृष्णय्या का लेख (श्री तिक्कन गारि विराट पर्वमु से) आन्ध्र महाभारतोपन्यासमुलु–आन्ध्र सारस्वत परिषद्, तिलक रोड, हैदराबाद (1981)
3. महाभारत–विराट पर्व, आश्वास 1, पद्य 32
4. वही–पद्य 33
5. मुण्डकोपनिषद्–द्वितीय मुण्डक, प्रथम खण्ड-2
6. आन्ध्र महाभारत
7. मुण्डकोपनिषद्–2-2-11
8. ईशावास्योपनिषद्–1
9. तेलुगु महाभारत–कर्ण पर्व आश्वास 2. पद्य 400
10. ईशावास्योपनिषद–5
11. महाभारत–विराट पर्व
12. आन्ध्र महाभारत–उद्योग पर्वमु, 2-333
13. वही–विराट पर्वमु 5-407
14. वही–5-405
15. वही–उद्योग पर्वमु, 4-428
16. वही–द्रोण पर्वमु, 3-310
17. वही–विराट पर्व आश्वास 1. पद्य 32
18. तैत्तरीय उपनिषद्–शिक्षावल्ली–8-1
19. कठोपनिषद–1-2-16
20. वही–1-2-17
21. श्रीदेवीगीत–1-26
22. आन्ध्र महाभारत–विराट पर्व, आश्वास 1. पद्य 334
23. कठोपनिषद्–6-12
24. केनोपनिषद्–1-4. (तैत्तरीयोपनिषद् आनन्दवल्ली नवम अनुवाक)
25. मुण्डकोपनिषद्–3-1-8
26. आन्ध्र महाभारत–अनुशानिसक पर्व, अध्याय 3. पद्य 346
27. छान्दोग्य उपनिषद्–6-16
28. वही–6-2
29. महाभारत आश्रम पर्व–आश्वास 2. पद्य 176
30. छान्दोग्य उपनिषद्–7-24-1

31. आन्ध्र महाभारत–मौसल पर्व, वचन 224
32. वही–विराट पर्व, आश्वास 4, पद्य 275
33. तैत्तरीय उपननिषद्–शिक्षावल्ली, षष्ठ अनुवाक 2
34. मुण्डकोपनिषद्–1-6
35. वही–3-7
36. आन्ध्र महाभारत–सौप्तिक पर्व आश्वास 2, पद्य 1
37. कठोपनिषद्–2-18
38. बृहदारण्यक उपनिषद् 4-4-25
39. आन्ध्र महाभारत–कर्ण पर्व, आश्वास तृतीय, पद्य 401
40. वही–महा प्रस्थानिकम्, पद्य 70
41. मुण्डकोपनिषद्–2-2-7
42. तैत्तरीय उपनिषद्–2-5-1, (भृगुवल्ली, पंचम अनुवाक)
43. बृहदारण्यक उपनिषद्–3-7-22 (तृतीय अध्याय, सातवाँ ब्राह्मण, श्लोक 22)
44. अन्नपूर्णोपनिषद्–अध्याय 5, हरिहरनाथ तत्त्वमु-प्रो. रामकोटि शास्त्री, पृ. 101 से उद्धृत
45. महाभारत–कर्ण पर्व, आश्वास 2. पद्य 1
46. बृहदारण्यकोपनिषद्–4-3-6
47. श्वेताश्वतर उपनिषद्–6-14 और कठोपनिषद्–5-15 और मुण्डकोपनिषद्–2-2-10
48. आन्ध्र महाभारत–कर्ण पर्व, आश्वास 1, पद्य 320
49. तैत्तरीयोपनिषद्–ब्रह्मानन्दवली, सप्तम अनुवाक, छ.
50. यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति अमृतो भवति तृप्तो भवति–नारद भक्ति सूत्र, 4
51. तेजोबिन्दु उपनिषद्–2, 6, 8, 9
52. आन्ध्र महाभारत–स्वर्ग पर्व 97
53. वही–विराट पर्व, आश्वास 1, पद्य 333
54. तैत्तरीयोपनिषद्–आनन्दवली, 7. छ.
55. भगवद्गीता–6-6
56. आन्ध्र महाभारत–शान्ति पर्व, आश्वास 4, पद्य 455
57. कठोपनिषद्–2-8-9 (द्वितीय वल्ली)
58. बृहदारण्योपनिषद् 4-4-20
59. महाभागवतम्–अश्व, आश्वास 1, पद्य 231
60. ऐतरेय उपनिषद्–1-1, 2
61. तदैक्षत बहुस्याम् प्रजायेयेतितत्तेजोअसृजत–छान्दोग्य उपनिषद् 6-2-3
62. नतस्यकार्यम् करणंच विद्यते•••परास्य शक्तिर्विविधेव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाच ॥ श्वेताश्वरतर उपनिषद् 6, 8
63. आन्ध्र महाभारत–सौप्तिक पर्व, आश्वास 2, पद्य 136

64. तैत्तरीयोपनिषद्–ब्रह्मानन्दवल्ली, सप्तम अनुवाक
65. वही–भृगवल्ली-1
66. आन्ध्र महाभारत–द्रोण पर्व, आश्वास 3, पद्य 310
67. कठोपनिषद्–5-9-10
68. श्वेताश्वतर उपनिषद–6-11
69. वही–6-19
70. आन्ध्र महाभारत–विराट पर्व, आश्वास 3, पद्य 238
71. वही–शान्ति पर्व, आश्वास 1, पद्य 400
72. वही–सौप्तिक पर्व, आश्वास 2, पद्य 136
73. वही–विराट पर्व, आश्वास 1, पद्य 335
74. वही–उद्योग पर्व, आश्वास 1, पद्य 385
75. तैत्तरीयोपनिषद्–शिक्षावल्ली–6
76. कठोपनिषद्–6-17
77. ध्यान बिन्दूपनिषद्–94
78. आन्ध्र महाभारत–विराट पर्व, आश्वास 1, पद्य 333
79. मुण्डकोपनिषद्–2-2-8
80. आन्ध्र महाभारत–द्रोण पर्व, आश्वास 2, पद्य 383
81. वही–आश्रम पर्व, आश्वास 1, पद्य 185
82. कठोपनिषद्–4-15
83. बृहदारण्यक उपनिषद्–4-4-22
84. आन्ध्र महाभारत–शान्ति पर्व, आश्वास 2, पद्य 449
85. मुण्डकोपनिषद् 3-1-8
86. प्रश्नोपनिषद्–1-9
87. बृहदारण्यकोपनिषद्–3-7-2
88. आन्ध्र महाभारत–उद्योग पर्व, आश्वास 2, पद्य 322
89. वही–भीष्म पर्व, आश्वास 2, पद्य 410
90. वही–कर्ण पर्व, आश्वास 1, पद्य 322
91. ध्यानबिन्दूपनिषद्–94
92. Science of being and art of living. महर्षि महेश योगी

सप्तम् अध्याय

उपसंहार

आन्ध्र भाषा में अवतरित महाभारत नर नारायण की महिमा को प्रकट करने वाला महाकाव्य है। मूल में नारायणम् नमस्कृत्य । (भगवान् वासुदेवो अत्र कीर्त्यते अत्र सनातनः) आदि वाक्य इसके प्रमाण में कहे जा सकते हैं। इस भारत का कर्ता साक्षात् नारायण के अंशज कृष्णद्वैपायन हैं। इसी का अनुवाद तिक्कना ने तेलुगु भाषा में किया। आप महेश्वर के चरण-कमलों में ध्यान स्थिर करने वाले हुए। चित्त को शशांक-शेखर को अर्पित कर स्थिर चित्तात्मा हुए। किन्तु तिक्कना का शैवभाव वीरशैव नहीं कहा जाता। अद्वैत वेदान्त ज्ञान समन्वित है। आप में वेदान्त मार्ग निष्ठा प्रपूर्ण है।

महाभारत पंचवेद कहलाता है। लोकहित की निष्ठा में धर्माद्वैत स्थिति में भारत नामक आगम की रचना हुई। व्यास महर्षि की प्रशंसा में कविवर तिक्कना ने महाभारत की रचना का प्रारम्भ करते हुए स्पष्ट किया है। आपके अनुसार यह लिखित आम्नाय है। इसमें धर्माद्वैत स्थिति है। अर्थात् उन दिनों तक वेद समस्त अपौरुषेय एवं अलेख्य रहे। तब तक विविध धर्मों में अद्वैत स्थिति साध्य नहीं हुयी। वेदों में कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के बीच अपार अन्तर है। वेद व्यास के काल तक ये दोनों पृथक हुए। पूर्व मीमांसा तथा उत्तर मीमांसा के बीच मैत्री बन पायी। वह स्थिति वेद धर्म के लिए वैधी भावना बनी रही। उस स्थिति में व्यास ने धर्माद्वैत का प्रतिपादन करते हुए भारत की रचना की।

इस प्रकार धर्माद्वैत स्थिति का तात्पर्य कर्म, ज्ञान मार्ग में अद्वैतभाव की स्थापना है। ये दो मार्ग परस्पर विरोधी लगते हैं। इन दोनों में अद्वैत भाव की स्थापना किस प्रकार सम्भव होगा ? कर्म ज्ञान में परिणत कब होगा ? इन प्रश्नों का समाधान करने हेतु भारत ने जन्म लिया। भारत रचना में नायक जो कर्मवीर हुए भी ज्ञान पथगामी हुआ। महाभारत की रचना सर्पयज्ञ से प्रारम्भ होकर स्वर्गारोहण से समाप्त हुआ। सर्पयज्ञ कर्मफल सम्बन्धी है। धर्मराज के स्वर्गारोहण से ज्ञान-साधना की सुस्थिति की कल्पना हुई। भारत की सभी कथाओं, सभी उपाख्यानों का पयवसान इसी प्रकार होता है। स्वकर्म भ्रष्ट हो अर्जुन कर्ममार्ग से विरत हुआ था। भगवान श्रीकृष्ण से गीता-प्रबोध के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर कर्मनिष्ठ हुआ। इस काव्य में अनेक महर्षियों के वाद-संवाद, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, यज्ञ, योग मार्ग के

प्रबोध करने वाले अनेक मिल जाते। कथा सूत्र में यह सब सहज रूप में संयोजित हुए और कथा के परमार्थ को प्रकट किये। कथा का परमार्थ आदि व्याख्यान, महाभारत रचना में अन्त में जोड़ दिए गए। किन्तु अनेकों की दृष्टि में पुराण में अनेक प्रयोजनकारी तत्त्व छिपे हुए हैं। महाभारत के प्रयोजन स्पष्ट करते हुए सकल धर्म विदित करना उसका लक्ष्य है। कविराज नन्नया ने कहा कि धर्म तत्वज्ञ इसे धर्म शास्त्र मानते हैं। महाभारत में धर्म की सरल व्याख्या हुई। तिक्कना ने अपने निर्वचनोत्तर रामायण की कथा द्वारा कर्म, ज्ञान दोनों मार्ग में एकता की स्थापना की ओर धर्म अभिमुख होकर कृति, पति की प्रशंसा में धर्माद्वैत मूर्ति कहकर राजा को सम्बोधित किया।

धर्म शब्द की व्याख्या अनेक प्रकार से हुई। 'ध' धातु जन्य होने के कारण 'धारण' करता अभिप्रेत होता है। धर्मश्च, अद्वैतम्च, धर्माद्वैतम् कहने पर अभिप्राय यही है कि लोक में आचरणशील ऐहिम व्यापार धर्म होगा और वेदान्त शास्त्र साधना अद्वैत कहलायेगा। इस प्रकार धर्म और अद्वैत दोनों में अभेदता की कल्पना कर सकते हैं।

लोक में सत्य और अहिंसा दोनों धर्म माने जाते हैं। कई बार दोनों में विरोध आभासित होता है। तब उन दोनों में किसका आश्रय लेना चाहिए। इस पर सूक्ष्म बुद्धि से विचार करने की आवश्यकता है। क्योंकि इन दोनों का पर्यवसान धर्म में ही होता है। कई उपाख्यानों के द्वारा इस विषय की व्याख्या हुई। कर्णपर्व में सत्य व्रतधारी एक ब्राह्मण की कथा द्वारा और अश्वमेध पर्व में श्राद्ध कर्म करने वाले जमदग्नि की अक्रोधता द्वारा इन धर्मों के बीच संघर्ष की सूचना मिलती है। ऐसे धर्म संकट के समय में हमें कैसे व्यवहार करना चाहिए। इसका निर्देश किया गया। इस प्रकार विचार करने पर धर्माद्वैत में दो धर्म स्पष्ट होते हैं। नित्य धर्म और आपद्धर्म। संघर्ष के समय में इन दोनों के बीच समन्वय करने की आवश्यकता है।

तिक्कना द्वारा प्रस्तावित हरिहराभेद और धर्माद्वैत एक ही है, ऐसा कई विद्वानों का मत है। इस वर्ग के विद्वानों के मत में शैव या वैष्णव दो धर्मों में अभेदता सिद्ध है। किन्तु तिक्कना द्वारा प्रतिपादित वेदान्त पथ शैव तथा वैष्णवों को छोड़कर कहीं आगे निकल जाता है। आपका अद्वैत आपके सम्भावित मूर्तियों में अभेदता है। शैव तथा वैष्णव दोनों मतों में भेद नहीं है। अर्थात् शिव, केशव में अभेदता है और कई मतमतान्तरों म अभेदता की साधना तिक्कना द्वारा निर्दिष्ट हो जाता है।

तिक्कना का हरिहरनाथ तत्त्व सगुण साकार होते हुए शिवकेशवात्मक, निराकार, निर्गुण स्वरूपी है, जो उपनिषदों में प्रतिपादित परमात्मा है। वह ओंकारवादी है। सगुणात्मक तथा साकार हो आराधना के योग्य बन जाती है तो

'श्रीयनगौरिना बरगु' पद्य में वर्णित स्वतत्त्व है ।[1] जब निर्गुण ओंकारवाची हो ह्रींकार वाच्य होता है जिसे तिक्कना ने षष्ट्यन्त पद्यों में व्यक्त किया ।

"ओंकार वाच्युनकुन व
हंकार निरूढ़ भावनासाध्युनकुन्
ह्रींकारमय मनोज्ञा
लंकारोल्लास नित्य लालित्युनकुन् ॥"[2]

तिक्कनामात्य ने एक प्रसंग में कहा कि अनन्य सामान्य कारण स्वरूप परमधर्म रूपायित हुआ । इतिहास इसका साक्षी है कि आन्ध्रों के जीवन में परमधर्म के विधान का प्रणयन हुआ । काल और परिस्थिति को ध्यान में रखकर भारतीय कवि विशेष रूप से आन्ध्रकविजन को नन्नया, तिक्कना, एर्रना ने आन्ध्र राजाओं के शासन काल में तेलुगु भाषी प्रदेश में,अवस्थित वैदिकधर्म की सम्पदा को दक्षिण, पश्चिम देशों में जिस प्रकार धर्मान्धता ने आबद्ध किया था, उसी प्रकार शैव, वैष्णव की वीरता ने दबा दिया था, धर्माद्वैत ने उस प्रकार के दमन से समाज को बचा लिया और धर्माद्वैत पथ में भेद रहित भक्ति के साथ अद्वैततत्त्व ने अपनी भाव गरिमा से आन्ध्र जनता तथा आन्ध्र साहित्य का मार्गदर्शन करते हुए भारतीय तथा आन्ध्र के राष्ट्रीय पथ को प्रशस्त किया । आप कवित्रय के द्वारा अनन्य सामान्य कारण स्वरूप में परमधर्म के विधान को प्रस्थापित करना आन्ध्रों का अहोभाग्य है ।[3]

सन्दर्भ सूची

1. आन्ध्र साहित्य चरित्र–पिंगल लक्ष्मीकांतम्, पृ. 210
2. आन्ध्र महाभारत–विराट पर्व, आश्वास पद्य 32
3. आन्ध्र महाभारतोपन्यासमुलु–श्री तिक्कनगारि विराट पर्वमु, श्री कोराड़ रामकृष्णय्या पृ. 107, (आन्ध्र सारस्वत परिषद, तिलकरोड़, हैदराबाद 1981)

सर्वधर्म समन्वय

कविवर तिक्कना ने क्रान्तदर्शी हो तत्कालीन सभी सम्प्रदायों को ध्यान में रखते हुए समाज में सन्तुलन लाकर समरसता की स्थापना के लिए, श्री हरिहरोपासना का प्रतिपादन किया था । विचार करने पर स्पष्ट विदित होता है कि सभी सम्प्रदायों के मूल में मानव के मस्तिष्क में एकता की खोज की जिज्ञासा है । तिक्कना ने शैव वैष्णव की वैमनस्यता का समाधान स्वरूप श्री हरिहर तत्त्व को जनता के सम्मुख रखा था । परन्तु आपका दार्शनिक लक्ष्य या धार्मिक सिद्धि इसके आगे है । हरिहर इस दर्शन का प्रतीकात्मक तत्त्व है । पहले विचार किया गया जैसा पंचदेवोपासना तथा श्री हरिहरोपासना के द्वारा एकता की सिद्धि ही लक्ष्य है, जो सभी सम्प्रदायों का अन्तिम लक्ष्य माना जा सकता है । अद्वैतसिद्धि एक दर्शन विशेष हो गया है । परन्तु धर्माद्वैत तत्त्व, सभी दर्शनों, सम्प्रदायों, पन्थ, मतों के मूल में स्थित

अद्वैततत्त्व की ओर लक्षित करता है जिसे सम्प्रदाय विशेष की विशिष्टताओं के बावजूद अपने सम्प्रदाय विशेष का अनुसरण करते हुए भी अन्य सम्प्रदायों के प्रति समादर भाव बनाये रखे। यह केवल औपचारिकता के लिए नहीं, तात्त्विक दृष्टि से एकता के तत्त्वों का निरूपण करते हैं तो प्रत्येक सिद्धान्त में सत्य का साक्षात्कार होगा। इसे स्वीकार करें कि जिस प्रकार अपने सम्प्रदाय में है उसी प्रकार अन्य सम्प्रदायों में सम्भव होगा। इस साम्प्रदायिक संकुचितताओं, क्षुद्रताओं, सीमाओं से मुक्त होकर (एकमेवऽद्वितीयम्) तत्त्व को पहचानने की मानसिक तथा बौद्धिक स्थिति को धर्माद्वैत स्थिति कहा गया। इसी तत्त्व का प्रणयन महाभारत की रचना में श्रीकृष्णद्वैपायन नामक महर्षि व्यास लोकहित के लिए वेदों के पूर्णज्ञान को जो अलेख्य है, उसे सरल बनाकर जनता के सम्मुख रखा।

"कृष्णद्वैपायनुर्डथि लोकहितनिष्ठम् बूनि कार्विचे धर्माद्वैतस्थिति भारताख्य।"
—महाभारत विराटपर्व

तिक्कना के समय में भारत वर्ष में शैव-वैष्णव जैन, बौद्ध, नाथ, इस्लामी तथा इसाई मतों का बोलबाला था। सभी लोग अपने-अपने सम्प्रदाय विशेष को श्रेष्ठ सिद्ध करने और दूसरे की निन्दा करने पर तुले हुए थे। यद्यपि हर सम्प्रदाय में यह कहा गया है कि परनिन्दा बुरी चीज़ है। अपने सिद्धान्त को अनोखा मानना ही एकांगी दृष्टिकोण है। क्योंकि सभी सिद्धांत उस अनन्त सत्य की एक-एक पहलू की व्याख्या करते हैं। कोई सिद्धांत अपने में परिपूर्ण नहीं है। क्योंकि कोई न कोई कमी उसमें रह जाती है कारण सम्प्रदाय देशकाल परिस्थितियों की उपज होती है। उन परिस्थितियों में आबद्ध होकर अनन्त सत्य को अपने में ढाल लेता है। तब वह निरपेक्ष सत्य और काल की सीमा में परिस्थितियों के अधीन हो सापेक्ष होकर दर्शन देता है। इसलिए सत्य निरपेक्ष भी है सापेक्ष भी है। परिस्थितियों से परे सीमाओं, परिधियों की परिधि होकर वह निरपेक्ष है। किन्तु व्यक्ति के लिए, किसी सीमित समाज के लिए परिस्थितियों की माँग के अनुसार वह सापेक्ष हो स्थूल होता है। सूक्ष्म ब्रह्म अब्जल्यूट सत्य समय सापेक्षता के कारण स्थूल रूप धारण करता है। राम, कृष्ण, ईसा, मुहम्मद इसी क्रम में हरिहर भगवान भी सगुण ब्रह्म हो गये। सगुण ब्रह्म की व्याख्या करते हैं। तब वह सम्प्रदाय विशेष से जाने जाते हैं।

सम्प्रदायों के अन्तर्गत राम और कृष्ण को परब्रह्म कहा गया है। यह दूसरी पहेली है। सम्प्रदाय विशेष की विशाल परिधि में अन्य सम्प्रदायों के सभी गुणों को समन्वित कर लेने की क्षमता आ जाती है। तब वह सम्प्रदाय से आगे बढ़कर धर्म कहलाता है। इसलिए शैवमत, वैष्णव मत, ईसाई मत जब कहा जाता है तब सीमित अर्थ में लेना चाहिए। इसकी अपेक्षा शैव धर्म, वैष्णव धर्म, इस्लाम धर्म जब कहा जाता है, तब उसका तात्पर्य यही है कि शैवधर्म, इतना विशाल हो गया कि उसमें

सभी सम्प्रदाय समाहित हो सके। वैष्णव धर्म इतना उदार हो गया कि उसमें समस्त जगत के लोग वैष्णव माने जायेंगे। ईसाई धर्म इतना विस्तृत हो जायेगा कि जिसकी गोद में समस्त विश्व के लोग सुख शांति का जीवन बिता सकें। धर्म शब्द का अर्थ महती है और सम्प्रदाय सीमित किन्तु एक दूसरे में आबद्ध हैं। परमाणु में ब्रह्माण्ड का तत्त्व जैसा सूक्ष्म रूप में छिपा है। किन्तु परमाणु ब्रह्माण्ड के सभी तत्त्वों के रहते हुए भी ब्रह्माण्ड नहीं होता। क्योंकि परमाणु की देशकाल परिस्थिति सापेक्षता में उसकी अपनी सीमाएँ हैं। उसी प्रकार व्यक्ति में परमात्मा के सभी लक्षण मौजूद हैं। परन्तु वह परमात्मा का अंश मात्र है। सम्प्रदाय भी कभी सम्प्रदाय के अर्थ में कभी धर्म के अर्थ में व्यवहृत होने पर भी पूर्णसत्य के दर्शन कोई नहीं दे सकता। यद्यपि सभी दर्शन सब रास्ते उसी तक पहुँचते हैं। सभी तत्त्व उसी की खोज करते हैं। अनेक दिशाओं से निकलकर एकमुखी होकर एक केन्द्र की तरफ बढ़ने वाली रेखाओं के समान हैं। इसके समर्थन में निम्न वाक्य उद्धृत किये जाते हैं।

अपरिचयाद् अवज्ञः

1. व्यक्ति का यह प्रयास रहा है, मेरा सिद्धांत, सम्प्रदाय व धर्म श्रेष्ठ अपूर्व और बेमिसाल माना जाये। इस प्रयत्न में वह न अपने सिद्धांत को ठीक समझ पाता है न परधर्म को, फलस्वरूप वह धर्मान्ध बन जाता है।
2. अहंकार को जीतने के लिए आदमी को बड़े-बड़े और कड़े तजरबों में से निकलना पड़ता है जो धर्म जितना पुराना है उसके इतिहास में उतने प्रयोग हैं।
3. मज़हबों के बजूद को मिटा देने की कोशिश भी फजूल है। अर्थात् दूसरे तत्त्व चिन्तन में भी आँशिक सत्य के दर्शन हो सकते हैं।
4. मेरा राष्ट्र, मेरी कौम, मेरा दीन, मेरा धर्म, इन पट्टियों को उतारकर उसकी जगह इन्हें मानवता, इन्सानियत की ऐनकें लगानी हैं। तब वह सब धर्मों में समभाव रखने में योग्य हो जाता है।
5. आजकल, आमतौर पर 11 मजहब दुनियाँ के प्रचलित मज़हबों में गिने जाते हैं। पूरब से पच्छिम को चलते हुए 11 तत्त्व चिन्तन प्रसिद्ध हैं– 1. जापान का शिन्तो मत, 2. चीन का ताओ मत जिसे लाओत्सी मत भी कहते हैं, 3. चीन का कनफ्यूशियन मत, 4. हिन्दुस्तान का वैदिक मत, 5. बौद्ध मत, 6. जैन मत, 7. सिक्ख मत, 8. ज़रयुस्त्री यानी पारसी मत, 9. यहूदी मत, 10. ईसाई मत और 11. इसलाम।

सत्य एक है—रास्ते अनेक हैं

1. उपनिषदों में बार-बार आता है– "एकम् एव अद्वितीयम्।"
2. एक और सूफी ने और ज़ियादा साफ शब्दों में कहा है–

"मुसलमान और ईसाई और यहूदी भले और बुरे; सबका मुँह उसी एक अल्लाह की तरफ है।"

3 मुहम्मद साहब ने एक हदीस में कहा है–
"जितने इन्सान हैं उतने ही अल्लाह तक पहुँचने के रास्ते हैं।"

4. कुरान में साफ कहा गया है—"हम सब अल्लाह से आए हैं और सब अल्लाह ही की तरफ जा रहे हैं।"

5. संस्कृत में पुष्पदन्ताचार्य विरचित शिव-महिम्न स्तोत्रम् में स्पष्ट किया गया है–
"त्रयी सांख्य योगः पशुमतिमतं प्रभिन्ने प्रस्थाने पत्थ्यमितिच नृण्मायेको गम्यत्वमसि पयसामर्णव इव।"–

–शिवमहिम्न स्तोत्रम्- पुष्पदन्ताचार्य

"जिस तरह बहुत सी नदियाँ तरह-तरह से घूम-घूम कर आखिर सब समुद्र में जा गिरती हैं उसी तरह सब आदमी अपने-अपने स्वभाव के अनुसार अलग-अलग रास्तों से चल कर भी उसी एक ईश्वर तक पहुँचते हैं, किसी का रास्ता सीधा और किसी का पेंचदार। किसी का सरल और किसी का कठिन।"

6. गीता में भी श्रीकृष्ण ने साफ कहा है —"जो लोग श्रद्धा यानी ईमान और वफादारी के साथ दूसरे देवताओं की पूजा करते हैं। वह भी अनजाने में और वेतरीके उन सब रूपों के पीछे असल में मेरी ही पूजा करते हैं।"

7. कुरान में लिखा है कि—"सब अच्छे नाम उसी के नाम हैं।"

8. विष्णु सहस्रनाम शिव सहस्रनाम या देवी सहस्रनाम का तात्पर्य यही है कि सब नाम उसके अंशनाम हैं।

9. ओ अर्जुन ! मुझसे ऊपर या बाहर और कोई चीज नहीं है, यह सब मुझमें इस तरह पिरोए हुए हैं जिस तरह सूत्र में माला के दाने। (सूत्रे मणि गणा इव) जितने "तामस" भाव हैं वह सब मुझसे ही हैं। मैं उनमें नहीं हूँ, वह मुझमें हैं। सुख दुःख, होना या न होना, भय, निर्भयता, नेकनामी, बदनामी, तप और दान सब मुझसे ही पैदा हुए हैं। आदमी की याददाश्त, समझ और नासमझी सब मुझ से ही हैं।

अपने आपको पहचानो

1. कुरान की एक आयत है– "जो अल्लाह को भूल जाता है, वह अपने को भूल जाता है।"
2. चीनी महात्मा कन्फूशियस का कहना है—"अनजान आदमी दूसरों को ढूँढ़ता है, जानकार अपने को खोजता है।"
3. मुहम्मद साहब की एक हदीस है—"जो खुदा को जान जाता है, उसका बोलना बन्द हो जाता है।"

4. उपनिषद में साफ कहा गया है– "यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते, ततो न विचिकित्सते।" यानी जो सब जानदारों को अपने अन्दर देखता है और सबके अन्दर अपने को देखता है, वह फिर धोका नहीं खा सकता और न किसी से द्वेष या दुश्मनी रख सकता है।
5. "यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धोभवति, तृप्तो भवति, आत्मारामो भवति अमृतो भवति।"

   –नारद भक्तिसूत्र.
6. मनुस्मृति में लिखा है–'जो तुम पर क्रोध करे उस पर तुम क्रोध न करो और जो तुमसे कड़ाई से बोले उसके साथ तुम मिठाई से बात करो।"
7. महाभारत में लिखा है—"क्रोध को गुस्सा न करके यानी मेहरबानी करके जीतो, बदी को नेकी से जीतो, ओछेपन को दान से जीतो और झूठ को सच से जीतो।"

धर्म के लक्षण

1. हिन्दू धर्म में मनु को सबसे पहला राह दिखाने वाला माना जाता है। मनु ने जिसे आदमी का "सामासिक धर्म" बताया है वह वही है जिसे योगशास्त्र में "पाँच यम" कहकर बयान किया गया है। उसी को बुद्ध ने "पंचशील" कहा है। यही पाँच असूल मूसा की दस आज्ञाओं में हैं। इन्हीं को इजरत ईसा ने दोहराया। यही हमें कुरान में मिलते हैं। मनुस्मृति में लिखा है—

   अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
   एतं सामासिक धर्मं चातुर्वर्ण्यें अब्रवीन् मनुः ॥
2. पंतजलि ने अपने योग सूत्रों में ऐसे खोजियों के लिए पाँच यम और पाँच नियम गिनाए हैं। लिखा है कि—

   "अहिंसा सत्यमस्तेयब्रह्मचर्या परिग्रहः।"–यमाः
   "शौच-संतोष तपः स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानानि।" – नियमाः
3. हिन्दू धर्म में इस रास्ते को योग, इसलाम में सलूक और ईसाई धर्म में "कम्यू-नियन विद गॉड" कहा गया है।
4. वेदों में जिन्हें ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य कहा गया है। अरबी में उन्हीं को "उलुलइल्म" "उलुलअम्र" और "ज़र्राअ" कहा गया है।

सदाचार - आचरण की पवित्रता

1. हितोपदेश में लिखा है–"आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः।" यानी–जो सब प्राणियों को अपनी ही तरह देखता है वही पण्डित।
2. उपनिषद् में लिखा है–

   "यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानु पश्यति।
   सर्वभूतेषु चात्मानम् ततो न विजुगुप्सते ॥"

3. हजरत ईसा ने कहा है—"बुराई से टक्कर न लो, अगर कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर चाँटा मारे तो बायाँ गाल भी उसके सामने कर दो, जो तुम्हें बद्दुआ दे उसे तुम आशीर्वाद दो, अपने दुश्मनों से प्रेम करो, जो तुम्हें तकलीफ पहुँचाएँ उनके लिए भलाई की दुआ करो।"
4. बुद्ध भगवान ने कहा है—"नफरत को मुहब्बत से जीतो।"
5. कुरान में लिखा है—"इदफ़अ विल्लति हियअहसन।" (23–96)

उपर्युक्त विवेचन तथा उदाहरणों से विदित होता है कि परब्रह्म की अभिव्यक्ति के अनेक रूप हैं, पर वह है सूक्ष्म में अद्वितीय, अनन्त, निर्विकल्प तथा निराकार। इस बाह्य अभिव्यक्ति के कारण विविधता, विकार, विकल्प दृष्टिगत होते हैं, जो भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के रूप में व्यवहृत हैं। इस विभिन्नता में अभिन्नता, अनेकता में एकता, बहुरूपता में एकरूपता के दर्शन करना ही धर्माद्वैत कहलाता है। बाह्य रूप में रमते हुए आनन्द मग्न होना और सूक्ष्मरूप में तादात्म्यता पाना ही साधना है। पहले में यति, गति, लय हैं, और दूसरे म परिणति सिद्धि। पहले में जीव की संवेदना है, तो दूसरे में खोजाना है।

इसी तत्त्व को अनेक रीतियों में, सैद्धान्तिक चर्चा में हिन्दी और तेलुगु काव्य सन्दर्भ में व्याख्या करने की चेष्टा की गई है।

सर्वधर्म समभाव

भारतीय ऋषियों ने धर्म के दस लक्षण माने, जो विश्व के सभी धर्मों में प्राय: एक समान पाये जाते हैं।

> धृतिः क्षमा दमोअस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः
> धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

—मनुस्मृति

विश्व के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में तत्कालीन परिस्थिति विशेष में धर्म व्यक्ति और समाज के जीवन में प्रगति तथा समृद्धि लाने के लिए स्थापित हुए। "यतो अभ्युदय निश्रेयसा सिद्धि स धर्मः" के अनुसार धर्म जीवन में अभ्युदय लाने के लिए व्यक्ति और समाज को प्रेरित तथा प्रोत्साहित करता है। "चोदना लक्षणों धर्मः" परिभाषा का तात्पर्य यही है कि वह जीवन को गतिशील बनाता है।

परिस्थिति, परिवेश, जीवन-विधान, गुरु तथा भाषा विशेष के कारण किंचित् अन्तर पाये जाने पर भी समस्त धर्मों के मूल सूत्रों में एकमत सिद्ध होता है। जिस प्रकार वैदिक धर्म में – – तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मृत्योर्मा अमृतंग मय॥ कहा गया है। ईसाई मत का पवित्र ग्रंथ बाइबल में Lead They Kindly Light उपर्युक्त सूत्र की दुहाई देता है। पवित्र खुरान् शरीफ़ में नूर (सूर्य) की प्रशंसा की गई है। हर धर्म

में ज्योति, प्रकाश ज्ञान के प्रतीक माने गये हैं। ईरानी लोग आर्यों के समान "अग्नि पूजक" हैं।

भारतीय दर्शन में भगवान सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान की कल्पना है, जो अक्षर ब्रह्म, अध्यात्मिक, आधि दैविक परब्रह्म, आधि भौतिक जगत् ब्रह्म, सगुण (व्यक्त) निर्गुण (अव्यक्त) रूपों में माना गया है। शिव, विष्णु, दुर्गा, गणेश, सूर्य इत्यादि देवताओं को स्वीकारते हुए सबके मूल में एक परम सत्ता को माना गया है। "सर्व देव नमस्कारम् केशवम् प्रति गच्छति" की भावना में अनेकता में एकता को स्वीकार किया गया है। वह द्वैत, त्रैत तथा अनेक होकर भी एक है। ईसाई तथा इस्लाम धर्म में निर्गुण ब्रह्म को महत्त्वपूर्ण माना गया है। परन्तु मन्दिर, मसजिद, गिरिजा घर जाकर सामूहिक प्रार्थना करने के पीछे स्थान विशष से जुड़ने के कारण, विशेष प्रतीकों के साथ पूज्य बुद्धि, श्रद्धा का भाव अपनाने के कारण सगुण साकार की उपासना करने की मानवीय सहज इच्छा की पूर्ति हो जाती है। यहाँ परोक्ष रूप में सगुण की उपासना ग्राह्य है।

भारतीय दर्शन में जिस प्रकार आत्मा की कल्पना की गई है, उसी प्रकार ईसाई मत में 'सौल' और इस्लाम में रूह की कल्पना की गई है। जीवात्मा के वर्गीकरण में, मोक्ष प्राप्ति की दशाओं में भिन्न मत पाये जाने पर भी परम सत्त्व के साथ तादात्म्यता प्राप्त करने में सर्वधर्म एक मत रखते हैं।

भारतीय दर्शन में माया की कल्पना की गई है। इसी प्रकार ईसाई मत और इस्लाम धर्म में शैतान की कल्पना की गई। यह बात दूसरी है कि विद्या माया जीव को उन्नति की ओर और अविद्या माया अवनति की ओर ले जाती है। शैतान का कार्य ईश्वरीय पथ में बाधा उपस्थित करने मात्र से है, जो भी हो सभी धर्मों में माया व शैतान से सावधान रहने को कहा गया है।

अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत के अनुरूप ईसाई तत्त्व चिन्तकों ने ईसाई चिन्तन को "पूर्णाद्वैत" नाम दिया।

ईसाई मत में प्रेम, करुणा, दया, अहिंसा आदि का महत्त्व है, जिन श्रेष्ठ गुणों का प्रचार महात्मा गौतम बुद्ध ने बहुत पहले किया था। कई विद्वानों की मान्यता है कि महाप्रभु ईसा को देवी प्रेरणा महात्मा गौतम से मिली थी। यहाँ तक कहा जाता है कि प्रक्कता ईसा मसीह ने प्रसिद्ध प्राचीन बौद्ध विश्व विद्यालय तक्षशिला में आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण की थी। बात कल्पित ही क्यों न हो, सुखद कल्पना है। भावक्षेत्र, तथा वैचारिक धरातल पर दोनों धर्मों में समभाव को प्रकट करने का सुन्दर उपाय है।

ईसाई मत में मॉक तथा नन् योगी संन्यासियों की निर्मिति बौद्ध धर्म की शैली में भिक्षु तथा भिक्षुणियों के अनुरूप ही है। शिक्षा तथा वैद्य-क्षेत्र में सेवा भाव, कार्य प्रणाली दोनों में एक समान देखने को मिल जाती है, तब भी और आज भी।

श्रीकृष्ण तथा ईसा के जन्म तथा बाल्य कालीन परिस्थितियों में साम्य ही साम्य है। गोचर भूमि भारत में गोपालन से जीवन यापन करने वालों के बीच गोपालक के रूप में श्रीकृष्ण पैदा हुए। पालिस्तीन में भेड़ चराने वाले भोले भाले जीवों के बीच ईसा का जन्म हुआ। श्रीकृष्ण के पिता ने राजा कंस से आतंकित हो, शिशु को ले जाकर गाँव में छिपाया। उसी प्रकार ईसा के माता-पिता ने क्रूर राजा से भयभीत हो अपने शिशु को भेड़ों में छिपाया था।

प्रभु ईसामसीह के प्रति ईसाई संन्यासियों में जो अटूट प्रेम है, वह भी श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के मन की विरह पीड़ा के समान है। श्रीकृष्ण प्रेम के देवता हैं। इसी प्रकार महाप्रभु ईसा ने कहा था—"प्रेम ही ईश्वर है।"

ईरान के फारसी मत में वैदिक धर्म में हवन की भाँति अग्नि पूजा विहित है। इनकी देवता "अहुर मज़्दा" है, जो 'असुर मर्द्धनी' का तद्भव रूप है। भारत में पाँचवीं, छठी शती में शाक्तेय मत प्रबल था, जिसका दूसरे रूप में पश्चिमी देशों में प्रचार हुआ। "अनन्तर काल" में कई निर्गुण आदि तत्त्व समाविष्ट हुए। दोनों धर्मों में शक्ति की उपासना द्वारा बलोपासना, अस्त्र-शस्त्र पूजन सार्वदेशिक सिद्ध होता है।

संस्कृत तथा फारसी के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन से विदित होता है कि दोनों में एक रूपता है। सप्ताह में 'स' का 'ह' होकर 'हफता' जिस प्रकार होता है, उसी प्रकार 'असुर' शब्द 'अहुर' हो जाता है। इसी प्रकार मातृ, पितृ, भ्रातृ शब्द मातर, पितर, बिरादर शब्द तद्भव रूप में दर्शन देते हैं।

हज के यात्रियों की वेश भूषा तथा नियमावली जैन मुनियों, बौद्ध भिक्षुओं के अनुरूप होती है। मक्का पहुँचने के बाद एक शिला का चुम्बन करना होता है। कहा जाता है कि वह शिला मात्र शवलिंग है। इससे विदित होता है कि अरब प्रान्त में शक्ति तथा शैवमत का प्रचार हुआ था। यदि यह सत्य है तो ईसाई, इस्लाम तथा हिन्दू धर्म में एकता के अनेक सूत्र प्राप्त हो जायेंगे।

सभी धर्म व सम्प्रदाय के लोग व्रत, तीर्थाटन में विश्वास रखते हैं। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सब लोग व्रत, उपवास, रोजा रखते हैं। कोई अयोध्या, काशी, मथुरा, पुरी जाता है तो कोई मक्का और मदीना। भारत में ईसाई मतानुयायियों ने मरियम् के मेले उत्सव शुरू किये हैं। विशेषता इस बात की है कि हिन्दू लोग शेख सलीम चिश्ती, ख्वाजा मोहिनोदीन चिश्ती, विजगीर शरीफ, अन्नारम शरीफ आदि के दर्शन करने जाते हैं। मिन्नते माँगते हैं। भारत का व्यक्ति उदार चरित वाला है कि किसी भेदाभाव के सभी सन्तों, फकीरों, मन्दिरों, गिरिजाघरों के दर्शन करता है।

मध्य युग में दक्षिण भारत में हरिहर भगवान की कल्पना की गई, जिसको पौराणिक आधार प्रदान कर काव्य में उतार लाने वाले तेलुगु के महाकवि तिक्कना हुए। अनन्तर काल में दक्षिण में हरिहर सम्प्रदाय ही चल पड़ा, जो देशभर में व्याप्त हुआ। कर्णाटक में प्रसिद्ध हरिहर क्षेत्र है। भारत में अन्यान्य प्रान्तों में

अनेक हरिहर की मूर्तियाँ प्राप्त हुईं। पटना में स्थित हरिहर प्रसिद्ध पुण्यक्षेत्र है। इससे स्पष्ट होता है कि श्री हरिहरोपासना समस्त भारत में व्याप्त हुई थी। आज "अय्यप्पा स्वामी" के नाम से शबरिमलै में विख्यात होने वाला भगवान हरिहर सुत कहलाता है। हरिहर भावना के मूल में शैव-वैष्णव भेद-भाव को मिटाकर वैमनस्य को समाप्त कर समन्वय स्थापित करना था। मध्य युग में ये दोनों मत टकराव में पड़कर धर्मान्ध होने चले थे। भारत के सन्त, महात्मा समम-समय पर समन्वय के प्रयास करते हुए इस समाज को संकटों से बचाये थे। ऐसे ही प्रयास ने पहले पंचदेवोपासना (पंचायतन) चलाई गई थी, जिसमें प्रतिनिधि स्वरूप कोई भी पाँच देवताओं की पूजा आराधना की जाती थी। मुख्यत: शिव, विष्णु, दुर्गा, गणेश, सूर्य व अग्नि प्रनिनिधि के रूप में पूजे जाते थे।

उदार पुरुषों के प्रयास ने नास्तिक धर्म कहकर बौद्ध धर्म को न्यून भाव से उपेक्षा करने वालों को समझाकर गौतम बुद्ध को दशावतारों में परिगणित करवाया था। इसी प्रकार मेरे मत में ईसाई, इस्लाम तत्त्व जो आस्तिक चिन्तन के परिणाम स्वरूप हैं, कालक्रम में हिन्दू धर्म में स्वीकृत हो सकते हैं। क्योंकि भारत में ईसाई, तथा इस्लाम का वह रूप नहीं रहा, जो पश्चिम देशों में है। बहुत कुछ अंशों में उनका भारतीयकरण हो गया है, जो सुखद परिस्थिति का द्योतक है।

अनेक समान भावनाओं के कारण और वास्तव में भारतीय जनता ने धर्मान्तरण के नाम उपासना पद्धति बदली है, न कि जीवन शैली व जीवन मूल्य व जाति लक्षण। सर्व धर्म समभाव के कारण धर्मान्तरण भारत को टकराव की ओर न ले जाकर समता, समभाव, समन्वय की ओर ले जाने वाला तत्त्व पनपेगा, फल. स्वरूप राष्ट्रीय भावना, देश प्रेम सुदृढ़ होगा। हरिहरोपासना हरि और हर तक सीमित नहीं है। वह सर्वधर्म समन्वय का प्रतीक मात्र है। यह भाव पल्लवित तथा पुष्पित होगा तो सभी धर्मों में अद्वैत तत्त्व विकसित होगा। कवि तिक्कना के शब्दों में वह व्यक्ति "धर्माद्वैत" स्थिति को प्राप्त करेगा। अर्थात् अपने धर्म में अटल रहते हुए अन्य धर्मों के प्रति उदार बना रहेगा। इस धर्म सापेक्षता की शिक्षा देने के लिए डॉ. राधाकृष्णन तथा डॉ. कोठरी ने अपने शिक्षा आयोग में उदार धर्म (Liberal Religion) की शिक्षा प्रदान करने का निर्देश किया। सभी धर्मों में विद्यमान समभावों का समन्वित रूप विश्व धर्म, उदार धर्म कहलायेगा।

इस प्रकार विदित होता है कि सर्वधर्म शिक्षा द्वारा धर्म सापेक्षता साध्य करें तो धर्म निरपेक्षता स्वयं सिद्ध होगी सर्वधर्म समभाव ही सही धर्म माना जायेगा।